CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ISSN-2348-3660

कलाकसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका

5.5

कालिदास प्रसंग–द्वितीय

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SHYAM ADVERTISERS & SHREE SHYAM OFFSET

A Complete Printing Solutions

- HOARDING
- UNIPOLE
- POLE BOARD
- BUS SHELTER
- HIGH MASS
- INDICATOR BOARD
- STANDY
- GLOW SIGN
- CANOPY
- VAN BRANDING
- EXHIBITION

- BROUCHER
- COVER DESIGN
- DANGLER
- MAGZINE
- POSTER
- STICKER
- HANDBILL
- VISITING CARD
- DIARY
- CALENDER
- HANDBILL

We Provide best Quality in Printing Crieteria.

122/A, SOUTH MALAKA
(NEAR RAMBAGH RAILWAY CROSSING)
NEAR KANJI HOUSE ALLAHABAD
PIN - 211 003 (U.P.)

CONTACT : 9721 400 800
E-mail - shyamadvertisers@rediffmail.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

GSTIN : 09AAAAU1265GU2Q

U.P. UPBHOKTA SAHKARI SANGH LTD.

(An U.P. Govt. Apex Co-operative Institution)

Head Office : "UPBHOKTA BHAWAN", Wala Qadar Road, Lucknow.
Website : www.upupbhoktasangh.com (Branch) email ID : upsslkobrn@yahoo.com
(35 Branches all over Uttar Pradesh)
Regional Branch Office : UPBHOKTA BHAWAN, Wala Quader Road, LUCKNOW-226 001

संघ का व्यवसाय विस्तारीकरण कार्यक्रम

- [illegible] ट्रेडिंग कार्पोरेशन नई दिल्ली एवं मिनरल्स [illegible] मेटल्स ट्रेडिंग कार्पोरेशन नई दिल्ली में [illegible] हेतु नोडल एजेन्सी नामित होकर दलहन, तिलहन, मेंथाल आदि की आपूर्ति करना।
- कोयले की प्रदेश एजेन्सी बनकर कोयले की आपूर्ति करना।
- दलहन, तिलहन, मेंथाल आदि की आपूर्ति करना।
- संघ के कार्यालय राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा एवं दिल्ली में स्थापित कर व्यावसाय वृद्धि करना।
- प्रदेशों में दलहन/तिलहन की नोडल क्रय एजेन्सी/बनकर सीधे कृषकों से दलहन/तिलहन क्रय का कार्य करना।
- भारतीय रिजर्व बैंक से नान बैकिंग एजेन्सों का लाइसेन्स प्राप्त कर नान बैकिंग व्यवसाय का किया जाना।
- उत्तर प्रदेश में संघ विभिन्न जनपदों में 58000 मै0 टन क्षमता के गोदाम पूर्व से स्थापित है जिनके अतिरिक्त नावार्ड से सहायता प्राप्त कर लगभग 5.00 लाख मै0 टन की गोदाम क्षमता निर्मित कर खाद्यान्न भण्डारण एजेन्सी के रूप में कार्य करना।
- उत्तर प्रदेश में संघ विभिन्न जनपदों में इफको/कृभकों के खाद, यूरिया, एन0पी0के0, डी0ए0पी0 की फुटकर बिक्री केन्द्र संचालित है एवं लगभग 50–60 करोड़ का खाद बिक्री किया जाता है। इफको/कृभकों के भण्डारण एजेन्ट के रूप में कार्य किया जाना प्रस्तावित है।
- विभिन्न प्रदेशों में सस्ते मूल्य की जेनरिक दवाओं के बिक्री केन्द्र खोलकर सस्ते मूल्य पर गरीब एवं दुर्बल वर्गों को दवाईयाँ उपलब्ध करवाना इत्यादि।

जनपदीय कार्यालय :
सीतापुर, लखीमपुर खीरी, इटावा, फर्रूखाबाद, जौनपुर, मैनपुरी, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, बदायूँ, प्रतापगढ़, देवरिया, उरई, बांदा, बिजनौर, रामपुर, कानपुर, लखनऊ, औरैया

सहकारी गैस सर्विस :
लखनऊ, बख्शी का तालाब, जौनपुर, निघासन, सीतापुर, औरैया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1 राष्ट्र कर बाजार

उपभोक्ता बन्धु !!!

जी.एस.टी. में अपने अधिकार पहचानें

कोई भी सामान खरीदें या सेवा प्राप्त करें, अपना बिल जरूर लें।

रू. 200 से अधिक की बिक्री अथवा सर्विस का बिल/टैक्स इन्वायस देना जरूरी है।

आपके द्वारा प्रत्येक खरीद/सेवा प्राप्ति पर दिया गया टैक्स सरकारी खजाने में जाता है और प्रदेश व देश के विकास तथा कल्याण योजनाओं में काम आता है।

आपके द्वारा बिल नहीं लेने पर विक्रेता अथवा सर्विस प्रोवाईडर कर (Tax) की धनराशि अपने पास रख सकता है और अनुचित रूप से पूँजी इकट्ठा (Unjust enrichment) कर सकता है।

जीएसटी व्यवस्था में पूरे देश में वस्तुओं की दरें एक समान होंगी। अतः उपभोक्ताओं को कोई भी खरीदारी के लिये अपना प्रदेश ही सर्वोत्तम स्थान होगा।

उ0प्र0 के सम्मानित उपभोक्ता, आप जब भी दूसरे प्रदेश से कोई माल खरीदें, बिल पर अपने नाम के साथ अपने प्रदेश का नाम अवश्य अंकित करवायें। इससे आपके द्वारा दिया गया टैक्स हमारे प्रदेश को मिलेगा, जो प्रदेश की उन्नति में सहायक होगा।

जी.एस.टी. के अन्तर्गत कौन टैक्स चार्ज कर सकता है ?

जी.एस.टी. में रजिस्टर्ड डीलर/व्यापारी/रेस्टोरेण्ट/अन्य वाणिज्यिक फर्म द्वारा ही टैक्स चार्ज किया जा सकता है। समाधान योजना अपनाने वाले वाले तथा अपंजीकृत व्यापारी किसी वस्तु की बिक्री पर अलग से जीएसटी वसूलने हेतु अधिकृत नहीं है।

रजिस्टर्ड डीलर को कैसे पहचानें ?

रजिस्टर्ड डीलर द्वारा अपने बिल/टैक्स इन्वाइस में 16 अंकों का जीएसटी नंबर (GSTIN) प्रिन्ट किया जाना अनिवार्य है।

कैसे जानें कि जी.एस.टी. नंबर सही है?

इसे वेरिफाई करने के लिए https://services.gst.gov.in पर जांच कर सकते हैं।

फर्जी जीएसटी नंबर पाये जाने पर कहाँ शिकायत करें?

helpdesk@gst.gov.in
ctheiplinelu@up.nic.in

0120-4888999 | 0522-3312600
011-23370115 | 0522-2721944

@askGST_Goi
@FinMinIndia

विभिन्न वस्तुओं पर जी.एस.टी.की दरें जी.एस.टी. से पूर्व प्रचलित अनेक करों की दरों के कुल योग (Total tax incidence) से कम अथवा बराबर है, कुछ गिनी-चुनी विलासिता की वस्तुएं ही इसका अपवाद हैं।

अतः जी.एस.टी. के कारण दैनिक उपभोग की वस्तुओं के मूल्यों में कोई वृद्धि नहीं हुई है। अधिकांश वस्तुओं पर कर का भार कम होने के कारण इनके मूल्यों में कमी आनी चाहिये।

एमआरपी अधिकतम मूल्य है जिसमें जी.एस.टी. एवं सभी प्रकार के टैक्स व प्राफिट शामिल है। टैक्स एमआरपी पर नहीं बल्कि बिक्री मूल्य पर ही देय है।

एंटी प्राफिटियरिंग मैकेनिज्म (Anti- Profiteering Mechanism) भी जीएसटी में बनाया गया है जिसके अन्तर्गत कर दरों में कमी अथवा आई.टी.सी. के लाभ को मूल्य में कमी के रूप में ग्राहक तक पहुँचाना होगा, अन्यथा डीलर्स के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है।

ईमानदारी से टैक्स देने वाले डीलर्स की रैंकिंग की व्यवस्था भी जीएसटी में है।

जागरूक एवं संवेदनशील उपभोक्ता बनकर देश सेवा करें।

आम उपभोग की वस्तुओं की कर की दरें जानने के लिए **GST Rate Finder** मोबाइल ऐप डाउनलोड कर सकते हैं।

यह ऐप Google play पर उपलब्ध है।

इस ऐप के माध्यम से आप टैक्स दरों अथवा कमोडिटी के नाम पर सर्च कर सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:-

वाणिज्य कर विभाग, उत्तर प्रदेश

वेबसाइट www.comtax.up.nic.in | ई-मेल ctheiplinelu@up.nic.in | comtaxupgst | @ComtaxU | हेल्पलाइन 0522-3312600, 2721944 | कंट्रोल रूम 0522-2721153

सबका साथ - सबका विकास

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलावसुधा
प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका
■ वर्ष : 17 ■ अंक : 2 अक्टूबर–दिसम्बर 2017
ISSN-2348-3660

सिलसिला.....

1.	कहना–सुनना		3
2.	जय कालिदास ! जय कालिदास !!	■ अरविन्द मिश्र	5
3.	क्रान्तिदर्शी कवि कालिदास	■ गोविन्द मिश्र	7
4.	कालिदास की रचनाएँ	■ डॉ. वीरेन्द्र वर्मा	9
5.	कालिदास की राष्ट्रीय वाणी	■ प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय	11
6.	कालिदास–साहित्य में सौंदर्यबोध	■ प्रो. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	13
7.	कालिदास सरस्वती के प्रकाश हैं	■ ठाकुर प्रसाद सिंह	15
8.	विश्वायन : प्रकृति चेतना कालिदास और शेक्सपीयर	■ डॉ. अनुराधा बैनर्जी	17
9.	कालिदास कथासार : तद्जन्य चिन्तन तरंगे	■ डॉ. कौशलेन्द्र पाण्डेय	19
10.	महाकवि कालिदास की प्रत्यभिज्ञा 'उद्यमोभैरवः'	■ डॉ. गौतम चटर्जी	23
11.	कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा–'काकु' के सन्दर्भ में	■ डॉ. स्वरवन्दना शर्मा	26
12.	मेघदूत में-विज्ञान	■ रामदहिन मिश्र	28
13.	कालिदास के ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में प्रयुक्त विभिन्न सुभाषित	■ डा. उषा बनर्जी	30
14.	द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'	■ डॉ. शान्ता चटर्जी	36
15.	रंग–प्रयोग की दृष्टि से 'विक्रमोर्वशीयम्' का चतुर्थ अंक	■ प्रो. कृष्णकान्त शर्मा	38
16.	कालिदास के नाटकों में प्रकृति निरूपण	■ डॉ. सुनीता यादव	40
17.	कालिदास एवं तुलसीदास कृत शिव–पार्वती–वन्दना : एक तुलनात्मक विमर्श	■ डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'	44
18.	कालिदास के नाटकों में स्त्री पात्र	■ श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर	46
19.	कालिदास	■ प्रो. धर्मेन्द्र शास्त्री	48
20.	महाकवि कालिदास के नाटकों की वर्तमान संदर्भ में मंचीय उपयोगिता	■ यशवंत उदयमान निकोसे	51
21.	'अभिज्ञान शाकुंतल' पर एक पाश्चात्य मत	■ प्रो. नन्ददुलारे बाजपेयी	55
22.	कालिदास की आत्मकथा	■ जयशंकर द्विवेदी	58
23.	मेघदूत के दुर्लभ चित्र	■ मोहनलाल महतो 'वियोगी'	72
24.	कालिदास और वात्स्यायन	■ डा. सूर्यनारायण व्यास	74
25.	भारतीय कवियों की परंपरा के प्राण–कालिदास	■ डॉ. भगवत शरण उपाध्याय	77
26.	कालिदास नाट्य सारिणी	■ डा. भानुशंकर मेहता	80
27.	कवि कालिदास	■ कमलापति मिश्र	82

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

28. 'रघुवंश'
कालिदास–रचित "रघुवंश"–महाकाव्य का रेडियो–रूपान्तर ■ रूपान्तरकार–कमलापति मिश्र 85

29. कालिदास ■ कमलापति मिश्र 91

30. हू इज कैलीडासा ■ अशोक जी 95

31. शकुन्तला ■ प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' 98

32. महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक
"अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास अलंकार ■ डा. उषा बनर्जी 110

33. कालिदास की कोयल ■ सुरेन्द्र अग्निहोत्री 115

34. कालिदास और रवीन्द्रनाथ (विचित्र सम्भाषण) ■ प्रथम नाथ विशी 118

35. कालिदास के प्रति ■ रवीन्द्रनाथ ठाकुर 122

36. कालिदास ■ नागार्जुन 123

37. कालिदास के प्रति ■ ठाकुर प्रसाद सिंह 124

38. कालिदास–समारोह का वह प्रसंग नहीं भूलता ■ महादेवी वर्मा 124

39. कालिदास ■ रामधारी सिंह दिनकर 125

40. शकुन्तला की विदा ■ राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त 126

41. कालिदास की कृतियों में संगीत : एक अध्ययन ■ डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' 127

42. दैनंदिन संस्कृत संभाषण : कालिदास के आलोक में ■ डॉ. स्वरवन्दना शर्मा 131

43. प्रतिक्रिया : ■ डा. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' 133

■ शरद पांडेय 'शशांक' 134

■ डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित 135

प्रधान सम्पादक
शाखा बंद्योपाध्याय

सम्पादक
डॉ. उषा बनर्जी

संपादकीय सहयोग
संतोष 'निर्मल'

सामग्री संकलन परामर्श
अरविन्द मिश्र
नलिनी मिश्र
कला प्रयोक्ता
कुमार अनुपम
विधि परामर्शी
रमेश चन्द्र पाण्डेय
अजीत श्रीवास्तव

व्यवस्था सहयोगी
सन्तोषी जोशी
देवाशीष
शुभाशीष
अपूर्व मोहन
पर्ण शिशिर
ऋचा
उत्कर्ष मोहन
हरिपाल
वीरेन्द्र

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका के किसी भी अंश का मंचन प्रकाशन अथवा प्रसारण करने से पूर्व सम्पादक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

पत्रिका से जुड़े सभी व्यक्ति कला सेवा हेतु अवैतनिक एवं अव्यवसायिक हैं।

न्याय क्षेत्र लखनऊ

पत्रिका का मूल्य 50/

सम्पादकीय ठिकाना : *कला वसुधा* 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – 226 029
दूरभाष : 0522–2440435 ई–मेल : kalavasudha01@gmail.com
मो0 : 8852557608, 9889835202

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक डॉ. उषा बनर्जी द्वारा शिवम् आर्ट्स 512/569, दूसरी गली, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग लखनऊ – 226 029 से प्रकाशित।

प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे 'कला वसुधा' और सम्पादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहना–सुनना

सहृदय कलावगाहक वृन्द !

स्निग्ध वंदन

'कला–वसुधा' के पूर्व अंक में महाकवि एवं नाटककार कालिदास को श्रद्धा कुसुम अर्पित कर चुके हैं। उसी की अग्रिम कड़ी में यह अंक भी कालिदास प्रसंग के द्वितीय सोपान (अनंतिम) के रूप में प्रकाशित हो रहा है। माँ काली एवं माँ सरस्वती के प्रिय आत्मज महा कवि कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा पर यह अंक प्रकाश डाल रहा है। कालिदास के साहित्य को पढ़ते ही हमारे चारों ओर प्रकृति मुस्कुराने लगती है। उनके आभा मंडल के स्पन्दन से उपजे स्फुरण से हम एक नये लोक में पहुँच जाते हैं। उनकी संवेदनपूर्ण अभिव्यक्ति और मनोवैज्ञानिक स्पर्श से परिपूर्ण उक्तियाँ तथा अलंकरण हमें जीवन के सार्वभौम सत्यों का हर कदम पर अनुभव कराते हुए जीवन यात्रा को सरस एवं सोद्देश्यपूर्ण बना देते हैं। उनके साहित्य अवगाहन के स्पर्श मात्र से कविता, कल्पना एवं कलान्वेषण हृदय में स्वतः स्फुरित होने लगता है। अतः यहाँ महाकवि के चरण कमलों में अपनी तोतली वाणी से कुछ पंक्तियाँ श्रद्धा सुमन के रूप में अर्पित कर रही हूँ यथा–

(1)

सरस सुभग सौरभ–बिखेरती,
भैरव बेला आई.....
ऋषभ अधखुला शिव नैनों सा,
सृष्टि जाग मुस्काई.....

उज्ज्वल रश्मि पुंज बने तुम,
प्रेम स्वरों की गूँज बने तुम,
ज्ञानमयी अरुणोदय हो तुम,
रश्मि सुधा भर लाई..भैरव बेला आई

कर्म योगी की हो मिसाल तुम,
प्रेम योग के अग्रदूत तुम,
हे प्रिय कवि अभिनन्दन तेरा,
कमल पंक्ति मुसकाई.भैरव बेला आई..

(2)

हुलसित सुरभित सुप्रकाशित,
प्रात आयी है पथिक!
कुछ ठहर जा स्वर स्पन्दित
श्वास आयी है पथिक!

नव नवोदित स्वरोन्मेषित
राग भर लाई पथिक!
ललित प्रमुदित रागप्रिय के,
फिर गुनगुनाई है पथिक!

वो उषा की सलज्ज रश्मि,
चहूँ दिस फैली है पथिक!
पक्षियों की पंक्ति रेखा,
चहचहाई है पथिक!

अरुण ने अनुरक्त की है,
सब दिशायें ऐ पथिक
बाल रवि वो झाँकता सा,
दिशा प्राची में पथिक!

कल किलोलित जल तरंगें,
नृत्य करती सी पथिक!
कुंद जूही बेला महके,
मुस्कुराते से पथिक!

फिर सलज्ज उषा बधू ने,
निज पद अंगुष्ठ से,
हैं अनेकों चित्र खींचे
बादलों में हे पथिक!

कली के ये अधखुले से,
अधर स्पन्दित है पथिक!
ओस बिन्दु वो जा गिरी है
उनपे देखो ऐ पथिक!

(3)

नर्मदा के घाटों पर,
उषा के ये सलज्ज बिम्ब,
ज्यों प्रतिबिम्बित हुए है,
लहरों के नीर में,
सूरज का कोमल मन,
प्रकट हुआ प्राची में,
चहूँ दिस जाग उठी,
वो देखो सूरजमुखी..

उस प्रेमिल सतरंगी
बिम्ब प्रतिबिम्ब को,
देखने को आतुर हो
उमग उठी सूरजमुखी,
आनन्दित, आल्हादित,
प्रफुल्लित, अभिलाषित,
वो कुछ लहराती
इठलाती सी सूरजमुखी।

प्रतीक्षा करती सी ज्ञान के प्रकाश की,
प्रेम के हुलास और स्वरों के विमास की,
इतराती बलखाती, हवा के झोंको में,
वसुधा के कानों में फुसफुसाई सूरजमुखी।

कवि तेरी कल्पना के हांथों में हांथ लिये,
साथ तेरे चल पड़े उत्सुकता के रथ चढ़े,
प्रेमिल और ज्ञानमय भावमय पियरंग की
हर पल प्रतीक्षा करती पीतवर्णी सूरजमुखी

उनके मानस सानिध्य और उष्मा की
कवित्व के प्रकाश और भाव के विमर्श की
हृदय की गहराई से लेखनी में उतरकर
कला वसुधा प्रांगण में आयी सूरजमुखी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(4)

एक स्निग्ध स्मरण सा,
एक प्रेमिल संस्मरण सा,
साथ है हमारा ऐ पथिक!

शायद ये जीवन ही है,
एक राज मार्ग सा.....
जिसके नीचे कोमल स्निग्ध,
भाव भरी मिट्टी की सुगन्ध,
दबी जा रही है पल–प्रतिपल,
और हम कहे जा रहे हैं कि,
ये पथ विकास का पर्याय है।

उन्नति का शिखर और,
सुसंस्कृति का समवाय है,
क्या सच में है ऐसा?
हो के तुम दूर क्यों दुःखाते हो मन को,
वापस आकर क्या सम्भालोगे हमको?
या भुला दोगे औरों से मिलकर
दबा दोगे प्रेम की सौंधी मिट्टी की सुगन्ध
छोड़ दोगे क्या? राजमार्ग के पाँव तले
सिसकते रहने को,
बोलो ! कुछ तो बोलो?

(5)

उज्जयनी के रसिक तुम, देव पूजि महाकाल।
महाकाव्य नाटक रचे, उपमा बनी है रसाल।
काव्य के अलंकार बिखरे सब कविता में,
वाणी की शक्तियाँ करे सब चाकरी है,
काली के पूत तुम सपूत चहुँ दिसि छाये,
देश और विदेश की प्रतिभा कूँ मनआये
सावन की बूँद से, कुसुमाकर के कुसुम से
कला वसुधा आँगन की शोभा बढ़ावते..

इस प्रकार पंचपुष्प अंजली द्वारा कालिदास जी की अर्चना के उपरान्त इस पत्रिका के अग्रिम पृष्ठों में विभिन्न विद्वानों के कालिदास जी के प्रति

विविध विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं। वैसे "कला वसुधा" प्रदर्शनकारी कलाओं से सरोकार रखती पत्रिका है। उसमें महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व क्यों वर्णित है? यह एक सहज प्रश्न उठता है। किन्तु वो महान कवि के साथ एक महान नाटककार भी थे और कोई भी नाट्य मंचित हुए बिना पूर्ण नहीं होता है। अतः वे प्रदर्शन कला के कार्य क्षेत्र से अछूते नहीं है। इसीलिये उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर ये प्रसंग प्रकाशित किये गये हैं। 'कालिदास जी अनन्त प्रतिभा के धनी थे किन्तु यहाँ उसके कुछ पहलू ही प्रस्तुत किये जा रहे हैं। उनके व्यक्तित्व के जो पहलू अछूते रह गये हैं उन्हें हम "कला–वसुधा" के अन्य प्रसंगों में आगे प्रस्तुत करते रहेंगे।

उनकी प्रतिभा, जिसे चाहे प्रतिभिज्ञा कहे या बिजली की कौंध या भक्त जिसे ईश्वर कृपा कहते हैं, वही कृपा कालिदास पर बरसी और खूब बरसी। जिसका सम्पूर्णता में कोई एक व्यक्ति आंकलन नहीं कर पाया है। उसके विभिन्न पक्षों को आज विभिन्न तरीकों से निहार कर गूंगे के स्वाद की तरह आस्वादन करके अधूरी सी अभिव्यक्ति कर पाये हैं। काश, हम भी उतने ही पूर्ण हो, कृपापात्र हों, जितनी अद्भुत उस महाकवि की प्रतिभा थी जिसके कारण वे 'कालिदास' बने।

इस अंक में प्रकाशित सभी सम्मानित रचनाकारों के प्रति 'कला वसुधा' परिवार सादर आभारी है।

जै महा काल, जै कालिदास
धन्यवाद।

उषा बनर्जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जय कालिदास ! जय कालिदास !!

अरविन्द मिश्र

माँ–भारती के मन्दिर को जिन्होंने अक्षय, शाश्वत और सुरभित सुमनों से सजाया है, उन सबमें कालिदास का नाम अग्रगण्य है। कवि के रूप में उन्होंने विविध रसों के जो परिपक्व पक्ष प्रस्तुत किये, वे अनुपम हैं और नाटककार के रूप में उन्होंने शायद ही जीवन का कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका उद्घाटन न किया हो। उनकी दृष्टि इतनी व्यापक और प्रभावपूर्ण रही है कि युगों–युगों तक जन–जीवन में अपनी सत्ता बचाये रह सकेगी। देववाणी के अमर साधक के रूप में उन्होंने जिस साधना–पीठ की सीमा का अंकन किया है, वह विश्व के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अपनी आभा का तेज बिखेरती रहेगी।

युगीन दायित्व के निर्वाह में जो सफलता कालिदास ने अर्जित कर ली है, वह अन्य विश्व–कवियों को नहीं मिली। उनका हृदय इतना विशाल और सहज शक्ति–संपन्न है कि चाहे अलंकार–विधान का क्षेत्र हो, चाहे रस–व्यंजना की केलिशाला–सर्वत्र वे एक ही ऊँचाई पर बने रहते हैं।

श्री रामचरित उपाध्याय ने सरल–सरस काव्य–आनन्द, श्रेष्ठ उपमाओं, वीर और श्रृंगारी उक्तियों का पूर्ण चित्रण करते हुए कालिदास का स्तवन किया है–

'जितनी ही हैं सरल सरस उनकी कविताएँ,
कालिदास! हैं प्रथित विश्व में वर उपमाएँ।
श्रृंगारी वीरोक्ति आप ही की मिलती है,
खिले कमल के साथ मनो कोई खिलती है।
जो सुधा–सलिल के कान से भी न तृप्ति सम्प्राप्त है,
वह तृप्ति आपकी उक्ति के प्रत्यक्षर में व्याप्त है।'

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कालिदास की साहित्य–सेवाओं का उल्लेख करते हुए उनकी वंदना कर रहे हैं–

'चिरकाल रसाल ही रहा,
जिस भावज्ञ कवींद्र का कहा,
जय हो उस कालिदास की,
कविता–केलि–कला विलास की!
अभिनव कला के सूत्रधार भी,
आदि से ही आर्य हैं,
प्रकटे भरत मुनि से यहाँ,
इस शास्त्र के आचार्य हैं।
संसार में अब भी,
हमारी है अपूर्व शकुन्तला,
है अन्य नाटक कौन उसका,
साम्य कर सकता भला।'

श्री गोपालशरण सिंह एक ओर वाल्मीकि और व्यास के पास उन्नत सिर किये खड़े कालिदास को काव्य–पुष्कर का जलज घोषित करते हैं, तो दूसरी ओर विश्व की प्रतिभा के उत्कर्ष–

'जहाँ हैं वाल्मीक कविश्रेष्ठ,
जहाँ हैं मुनिवर वेदव्यास,
वहीं ऊँचा करके निज शीश,
खड़े हो तुम भी उनके पास।
सदा जो रहता है उत्फुल्ल,
काव्य–सर के हो तुम जलजात,
विश्व की प्रतिभा के उत्कर्ष,
हुए तुम कालिदास विख्यात !'

श्री अनूप शर्मा ने कालिदास और उनकी प्रकृति प्रियता का चित्रांकन किया है–

'प्रतिदिन प्रात का पवन चौर ढालता है,
मंजु देव–लोक का गुफा–गृह सँवारा है।
नृत्य करती हैं छहों ऋतुएँ तुम्हारे यहाँ,
होता कीर–कोकिल–मिलिंद–गान प्यारा है।
पाद–पीठ–लुंठित मुकुट कवि–नाटकों के,
देख–देख मिलता मुझे भी तो सहारा है।
संग में विराजते कृताभिषेक शारदा के,
विश्व–बीच एकछत्र शासन तुम्हारा है।'

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' प्रश्नात्मक शैली में कालिदास की व्यष्टि–समष्टि–समन्वित काव्य–प्रतिभा का स्तवन कर रहे हैं–

'किसका विरह नहीं बजता अलकावासिन के मन में ?
किसके अश्रु नहीं उड़ते हैं बनकर मेघ गगन में ?
किसके मन की खिली चाँदनी परी न बन जाती है ?
वनकन्या वन, लता–ओट छिप किसे न ललचाती है ?
कंपित रुधिर थिरकता किसका नहीं रणित नूपुर में ?
मिलन–कल्पना से न दौड़ जाती विद्युत् किस उर में ?
गीत लिखे होंगे कविगुरु, तुमने तो अपने मन के !
झंकृत क्यों होते हैं स्वर इनमें त्रिकाल–त्रिभुवन के ?'

डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन' कालिदास को वह आदित्य समझते हैं, नवग्रह सदा जिसकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं–

'तुम विक्रम के नवरत्नों में थे,
यह इतिहास पुराना,
पर अपने सच्चे राजा को,
अब जग ने पहचाना,
तुम थे वह आदित्य
नवग्रह जिसके देते फेरे !
तुमसे लज्जित शत् विक्रम के सिंहासन !
ओ, उज्जयिनी के वाक्–जयी जगवंदन !!'

श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद' के शब्दों में कालिदास मानवता के शिल्पी, सजग कलाकार, चिरंतन भावांकन में सक्षम, जाग्रत और जन-जन में रसोल्लास बनकर प्रकट हुए हैं–

'हे कलामूर्ति, हे कलाकार,
मानव-आत्मा के हे शिल्पी,
कर पूर्ण चिरंतन भावांकन,
तुमने जब अंतिम लिया श्वास,
उस महामरण क्षण के जितने,
अनुगामी क्षण अब तक आये,
उन सबमें तुम जीवित-जाग्रत,
जन-जन में बनकर रसोल्लास !'

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' कालिदास के समस्त गुणों को न केवल महनीय घोषित करते हैं, बल्कि कालिदास का सत्य और यथार्थ स्तवन भी करते हैं–

'किसी कुमारी के आलिंगन–सी कवि कला तुम्हारी !
कर देती संचार तड़ित का ओ सुर–लोक विहारी !
तरल नाटकों के मोती का सार तुम्हारी वाणी !
कोटि–कोटि प्यासे हृदयों की तृप्ति बनी कल्याणी !
महादेश के ज्योति–पुंज तुम सपनों के वरदानी !
नाम तुम्हारा सुनते ही उठता मस्तक–अभिमानी !
तुम भारत की मुक्ति और वैभव के युग के दाता !
तुम कमलों से भरे महासागर–से सुख–निर्माता !'

विश्व–साहित्य में अपने काव्य–बल से सर्वोच्च बनने वाले कालिदास के प्रति श्री उदयशंकर भट्ट का प्रणाम उचित ही है–

'विश्व भारती कल्प-लता के,
अमर सुमन-मकरंद अमंद,
युग-युगांतर का तिमिर चीरकर,
हुए प्रकाशित जिनके छंद,
नग-अधिराज शिखर गौरव से,
जिनके गाते गीत ललाम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि कुल–गुरु उन विश्ववाक्, श्री कालिदास को सतत् प्रणाम!'

'नागार्जुन' जी की दृष्टि में 'मेघदूत' में यक्ष के रूप में कालिदास का ही व्यक्तित्व मुखरित हुआ है–

'परपीड़ा से पूर–पूर हो,
थक–थककर औ' चूर–चूर हो,
अमल–धवल गिरि के शिखरों पर,
प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे?
कालिदास, सच–सच बतलाना!'

डॉ. देवराज लिखते हैं कि कालिदास उच्च धरातल पर खड़े होकर विश्व–मानव और प्रकृति के ऐक्य की घोषणा करने वाले कविवर हैं–

'तुम हिमालय की खड़े हिमराशि पर कविवर,
भूमि–नभ की गहन, सुषुमा के नमन भरते,
विश्व–मानव और प्रकृति के एक होने की,
धीरे स्वर में दिव्य–मंजुल घोषणा करते!'

श्री आनन्द झा का कथन है कि कालिदास भारत के भव्य–भाल, साहित्य के साधक हँस, दिशाओं को अपने यश से उज्जवल करने वाले और नूतन वसंत लाने वाले थे–

'जय भारत–भव्य–भाल,
जय सारस्वत–पंकज मराल!
निज यश वश श्वेतीकृत–दिगंत,
सुमनासुमनोभर नव–वसंत!
जय कविता, नवदयिता विलास,
जय कालिदास! जय कालिदास!!'

श्री ठाकुर प्रसाद सिंह प्राकृतिक वातावरण, रस स्निग्ध–क्षेत्र और साहित्यिक उपकरणों की भूमिका में कालिदास का स्मरण कर रहे हैं–

'कुसुम, फिर पल्लव आये
नये उठी घन भ्रमरों की गुंजार,
चित्रकों से कुरबक सज उठे
वन–श्री की शोभा के भार।
कुसुम सुरभित बन कोकिल
बधू–बधू के अगम अटपटे बोल,
किसलयी अधरों पर मुसकान मदिर
वंशीस्वर घर–वन भरें।
मधुर है रुप स्वयं ही कान्त,
सभी स्वर मण्डन तेरा करें।
प्रभा की तरल ज्योति के
स्रोत धरा के आगन–गृह–वन भरें।।'

'कवि के रूप में कालिदास ने विविध रसों के जो परिपक्व पक्ष प्रस्तुत किये, वे अनुपम हैं और नाटककार के रूप में उन्होंने शायद ही जीवन का कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका उद्घाटन न किया हो। उनकी दृष्टि इतनी व्यापक और प्रभावपूर्ण रही है कि युगों–युगों तक जन–जीवन में अपनी सत्ता बचाये रह सकेगी। देववाणी के अमर साधक के रूप में उन्होंने जिस साधना–पीठ की सीमा का अंकन किया है, वह विश्व के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक अपनी आभा का तेज बिखेरती रहेगी।

युगीन दायित्व के निर्वाह में जो सफलता कालिदास ने अर्जित कर ली है, वह अन्य विश्व–कवियों को नहीं मिली। उनका हृदय इतना विशाल और सहज शक्ति–संपन्न है कि चाहे अलंकार–विधान का क्षेत्र हो, चाहे रस–व्यंजना की केलिशाला– सर्वत्र वे एक ही ऊँचाई पर बने रहते हैं।'

श्री बाबूलाल श्रीवास्वतव 'सुधांशु' ने कालिदास को समग्र काव्य शास्त्रीय परंपरा की विरासत को शक्तिमत्ता के साथ सँजाये हुए ध्वनि और शुचिता की संगमस्थली पर अधीष्ठित वीणा–वादिनी का वरद् पुत्र उद्घोषित किया है–

'वक्रोक्ति–रीति–गुण–संकुल,
ध्वनि–युत कविता की साधना सृष्टि।
दे सके तुम्हीं अनुभूति–रंजना को
सुमुर्त्त–व्यंजना–दृष्टि।।
'उत्पेक्षा' को उदिृष्टि उदय,
'उपमा' को निरुपम सिद्ध रुप।
सायुध 'समास' को शक्ति, कला को
कलित–कलेवर शुचि अनूप।।
कल्याणी वाणी से निःसृत कृतकृत्य देव!
यति, गति, विराम।
वीणा–वादिनि के वरद पुत्र!
शत–शत प्रणाम।।'

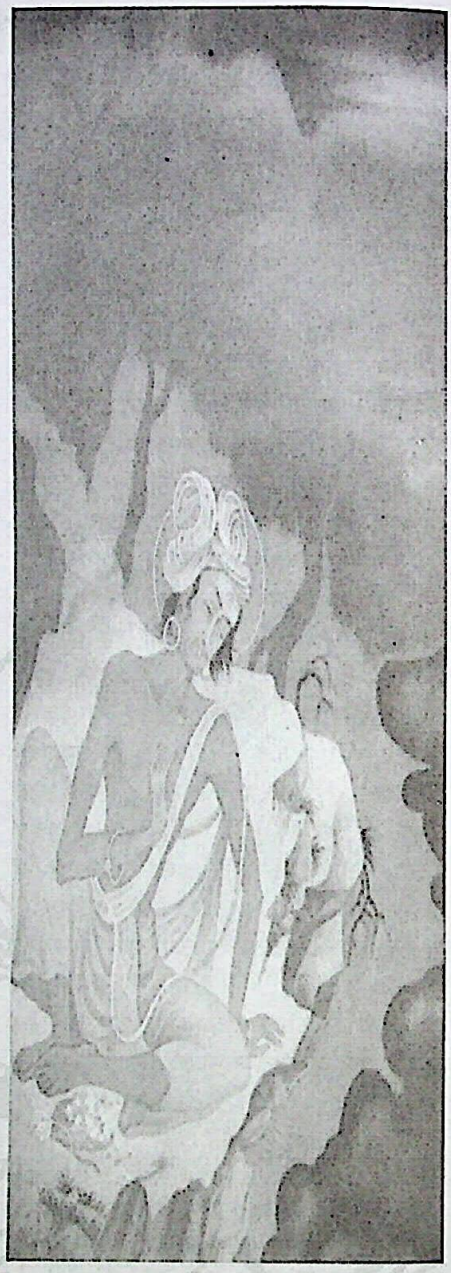

विरही यक्ष–'मेघदूत'–चित्रकार ए०के० हालदार

कालिदास जैसे मूर्द्धन्य कलाकार पर जितनी भी भाव–मणियाँ अर्पित की जायँ, कम ही होगीं। आधुनिक हिन्दी–कवियों ने कालिदास को जिस श्रद्धा और भक्ति के साथ स्मरण किया है, वह केवल स्मृति का विषय न हो करके जीवन का संगीत बन गया है।

●

संपर्क : सरोजनी निवास, एम 1/63,
सेक्टर–बी, अलीगंज, लखनऊ–226 024

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रान्तिदर्शी कवि कालिदास

गोविन्द मिश्र

गुप्त काल की रोमांटिक भाव धारा में निमग्न अधिसंख्य कवियों ने सौन्दर्यानुभूति की सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव रश्मियों को अपनी काव्यकला का मुख्य वर्ण्य स्वीकार किया है। कवियों, नाटककारों का मन अपने आश्रयदाताओं की कामुक वृत्तियों के उद्दीपन में ही अधिक रमा है। इस युग की प्रवृत्ति के पोषण में परिष्कृत रागात्मिका वृत्ति परक उदात्त सौन्दर्यानुभूति से रससिक्त रचना मेघदूत इसी युग में संभव हो सकी। कालिदास की इस कृति को यदि विश्व की सर्वश्रेष्ठ काव्य कृति कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। मेघदूत सुसंस्कृत सामन्त युग की परिमार्जित–साहित्यिक कृतियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होता है।

कालिदास उज्जयिनी सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्नों में थे अस्तु अपने आश्रयदाता और दरबार के सामन्तों की लालसा के अनुपालन में श्रृंगार रस को प्रधानता तो दी है किन्तु अपने सामाजिक दायित्वों का भी निर्वाह बहुत ही चतुराई के साथ किया है। फलतः उन्होंने रघुवंश में राजाओं के आदर्श रूप का निरूपण किया है। कतिपय विद्वानों ने रघुवंश को 'राष्ट्रीय महाकाव्य' का उच्चतम पद प्रदान किया है। अतः रघुवंश महाकाव्य में भारतीय संस्कृति का सम्यक् आख्यान किया गया है। कवि ने आदर्श राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है–

"यथाविधिहुताग्नीनां यथा कायार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदंडानां यथा काल प्रबोधिनाम्।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्यायमितमाषिणाम्।
यशसे विजिगुषानां प्रजायैग्रहमेधिनाम्।।"

रघुवंशीय राजा विधि विधान पूर्वक अग्निहोम करने वाले, याचकों को यथेष्ठ दान देने वाले, अपराध के अनुसार ही दंड देने वाले तथा समयानुसार सावधान रहने वाले होते थे। वे सत्पात्रों को दान देने के लिए ही धन एकत्र करते थे, सत्य बोलने के लिए ही वे कम बोलते थे, यश के लिए ही वे दिग्विजय करते थे तथा सन्तान प्राप्ति के लिए ही वे गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले होते थे।

कवि समकालीन ही नहीं सर्वकालीन नृपों को यह सदुपदेश देना चाहता था कि आप लोग भी ऐसे राजा बनो। जब कि वास्तविकता यह है–'कालिदास के समकालीन और परवर्ती कवियों की सारी संस्कृति और कला सामन्तवर्गीय समाज के मनोविनोद और आराधना में खर्च होती रही। वे या तो पौराणिक आख्यानों के आधार पर रचे गए काव्यों और नाटकों द्वारा वीरत्व के नाम पर अनावश्यक नरसंहार करने वाले भूमि के लुटेरे क्षत्रिय राजाओं का गुणगान करते रहे, या घोर श्रृंगारिक रचनाओं, विलास और राग–रंग के चित्रों–द्वारा एक अनोखे अफ़ियूनी नशे में जनता को गर्क करने की चेष्टा करते रहे–इस उद्देश्य से कि समाज और संसार की यथार्थ परिस्थितियों की भयावहता की ओर उनका ध्यान न जाने पावे और सामन्तवर्गीय महाप्रभुओं की ज्यादतियों के विरुद्ध विद्रोह की कोई भावना उनके मन में न जगने पावें।'

कालिदास ने इस दुष्प्रवृत्ति से असम्पृक्त रहने की भरसक चेष्टा की। वे 'एक दीर्घ सामन्तवादी परम्परा के युग में पैदा होकर, पूर्णतः सामन्तवादी संस्कृति से पोषित होकर और सामन्तवर्गीय समाज के बीच में जीवन बिताने पर भी अपनी विराट् प्रतिभा और स्वस्थ मस्तिष्क के फलस्वरूप अपने को उस घोर दूषित और दास मनोवृत्ति के वातावरण से बहुत कुछ अलग रखा'।

यह कथन शायद अतिशयोक्तिपूर्ण लगे कि उनके साहित्य में इस प्रवृत्ति का अत्यन्ताभाव है किन्तु कवि के मन में उस कुप्रवृत्ति के प्रति विद्रोह की भावना सर्वत्र विद्यमान रही है।

मैं यह कहना नहीं चाहता कि उस काल के शेष अन्यान्य साहित्यकर्मियों के मन में सामाजिक दायित्व की भावना का उदय ही नहीं हुआ था किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि वे सामन्तवर्गीय पतनोन्मुख वर्ग के विरुद्ध कलम उठाने का साहस न जुटा सके। संभावना यह भी बनती है कि ये सामन्तवर्ग के समर्थक और उनकी दूषित मनोवृत्तियों के हिमायती अपनी वासनाजन्य मनोवृत्तियों को 'काव्यशास्त्र विनोद' की काल्पनिक दुनियाँ में मस्त रखना ही कवि कर्म की इतिश्री मानने लगे हो। ब्रह्मानन्द सहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण की फेण्टेसी इन कवियों के मन मस्तिष्क में बद्धमूल हो गई हो। कालान्तर में संस्कृत साहित्य में यह पतनोन्मुखी भावना श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितं और बाणभट्ट की कादम्बरी में स्पष्ट देखी जा सकती है।

कालिदास के विश्वविश्रुत नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलं में धीरोदात्त नायक के चरित्र की ध्वन्यात्मक तरीके से जो व्याजनिन्दा हुई है वह संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। नाटक के प्रारम्भ में ही हस्तिनापुर नरेश दुष्यन्त जब महर्षि कण्व के आश्रम के निकट कृष्णसार मृग पर शर संधान करते हैं तो नेपथ्य से मानो कवि की वाणी गूँजती है–

'भो भो राजन् आश्रयमृगोऽयम्
न हन्तव्यो न हन्तव्यः'।

यहाँ कवि राजा को आगाह करता है कि यह एक पवित्र स्थल है यहाँ अपनी हिंसक व कामुक प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखना। किन्तु दुष्यन्त वैसा नहीं कर सके। वे आश्रम बालाओं, शकुन्तला और उनकी सखियों की एकान्त वार्ताओं व चेष्टाओं को वृक्ष की ओट से सुनते व देखते रहे तथा बड़ी ही कपटपूर्ण चतुराई से उनके समक्ष जा खड़े हुए। कवि ने इस अप्रिय व अनैतिक कार्य व्यापार को नाटकीयता के रंग में रंगकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि सामान्य पाठकों या नाटक दर्शकों को कवि की सूक्ष्म बुद्धि का मर्म ज्ञात न हो सका। वे राजा की वाक्पटुता पर मुग्ध होते रहे।

किन्तु इस घटना पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि एक श्रेष्ठ व्यक्ति का आश्रम बालाओं को छिपकर देखना तथा उनकी अन्तरंग वार्ता को सुनना कहाँ तक नैतिक है।

इसके पश्चात शकुन्तला के अनाघ्रात सौन्दर्य पर मुग्ध होकर महर्षि कण्व की अनुपस्थिति में गन्धर्व विवाह रचा लेना तथा उसे छोड़कर राजधानी वापस चले जाना क्या किसी सम्राट के लिए औचित्य की सीमा में कहा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतना ही नहीं जब शकुन्तला गर्भवती हो जाती है और आश्रमवासी उसे हस्तिनापुर लेकर जाते हैं तो राजा उसे पहचानने से इनकार कर देता है। कवि ने दुर्वासा के शाप का प्रसंग राजा के चरित्र की रक्षा के लिए नाटक में डाला है, किन्तु यहाँ पर भी राजा की कामुकता का प्रकाशन कर ही दिया है। एक ओर राजा शकुन्तला को न पहचानने की बात करता है तो दूसरी ओर उसकी लिप्सा यह भी सोचने पर विवश करती है 'यह सुन्दरी भले ही किसी अन्य की पत्नी है पर यदि इसे रख लूँ तो इसके सौन्दर्य का भोग करके आनन्द प्राप्त कर सकता हूँ। दुष्यन्त का यह मनोभाव भी उसे एक लंपट व्यक्ति ही सिद्ध करता है।'

महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान में जहाँ से नाटक का इतिवृत्त लिया गया है, स्पष्ट कहा गया है कि राजा ने पहचानते हुए भी अपनी पत्नी और उसके शक्तिशाली भाइयों के भय के कारण शकुन्तला को पहचानने से इनकार कर दिया था।

दुर्वासा के शाप का पारदर्शी पर्दा राजा के कामुक क्रियाकलापों को आच्छादित करने के लिए नहीं वरन् इसलिए डाला गया था कि नाटक का मंचन राज दरबारों में संभव हो सके। यदि कवि ने ऐसा न किया होता तो सामन्तों की भृकुटियाँ तन जातीं और कवि को इसका खमियाजा भुगतना पड़ सकता था।

महाकवि एक सुसंस्कृत प्रबुद्ध व्यक्ति है अतः उसके कहने का ढंग सुसंस्कृत ही रहा है। कालिदास की यह विशेष टेकनीक ही है कि उन्होंने अभिजात्य वर्ग की काली करतूतों की पोल बड़ी ही शालीनता के साथ खोली है। वे जनता को यह समझाना चाहते थे कि अभिजात्य वर्ग है तो धूर्त और लंपट किन्तु वह दूध का धोया दिखने का प्रयत्न करता रहता है।

इसके अलावा राजा जब अपनी ब्याहता गर्भवती पत्नी को पहचानने से इनकार कर देता है तो शकुन्तला शास्त्रोक्त शिष्टता और आचार संहिता को तिलांजलि देकर अपने पति को 'आर्यपुत्र' संबोधित न कर 'अनार्य' संबोधन करती है। तत्कालीन समाज और युग में यह एक बड़ी क्रान्तिकारी घटना है। मेनका और विश्वामित्र से उत्पन्न महर्षि काश्यप के गुरुकुल में पोषिता नारी अपने पति को अनार्य कहकर तिरष्कृत करे यह कालिदास की शकुन्तला ही कर सकती है।

कवि समकालीन ही नहीं सर्वकालीन नृपों को यह सदुपदेश देना चाहता था कि आप लोग भी ऐसे राजा बनो। जबकि वास्तविकता यह है–कालिदास के समकालीन और परवर्ती कवियों की सारी संस्कृति और कला सामन्तवर्गीय समाज के मनोविनोद और आराधना में खर्च होती रही। वे या तो पौराणिक आख्यानों के आधार पर रचे गए काव्यों और नाटकों द्वारा वीरत्व के नाम पर अनावश्यक नरसंहार करने वाले भूमि के लुटेरे क्षत्रिय राजाओं का गुणगान करते रहे, या घोर श्रृंगारिक रचनाओं विलास और राग–रंग के चित्रों–द्वारा एक अनोखे अफ़ियूनी नशे में जनता को गर्क करने की चेष्टा करते रहे–इस उद्देश्य से कि समाज और संसार की यथार्थ परिस्थितियों की भयानकता की ओर उनका ध्यान न जाने पावे और सामन्तवर्गीय महाप्रभुओं की ज्यादतियों के विरुद्ध विद्रोह की कोई भावना उनके मन में न जगने पावें।

कालिदास ने इस दुष्प्रवृत्ति से असम्पृक्त रहने की भरसक चेष्टा की। वे 'एक दीर्घ सामन्तवादी परम्परा के युग में पैदा होकर, पूर्णतः सामन्तवादी संस्कृति से पोषित होकर और सामन्त वर्गीय समाज के बीच में जीवन बिताने पर भी अपनी विराट् प्रतिभा और स्वस्थ मस्तिष्क के फलस्वरूप अपने को उस घोर दूषित और दास मनोवृत्ति के वातावरण से बहुत कुछ अलग रखा।

"अभिज्ञानशाकुन्तलम् में निपट मूर्ख, गोबर बुद्धि, हस्तिउदर और पेटू विदूषक 'माढव्य' को राजा का प्रिय सहचर बनाकर अपने युग के सामन्तों का जैसा परिहास कालिदास ने किया है वह अनन्य है।" जिस राजा का मित्र इतना मूर्ख होगा भला उससे किसी अच्छे कार्य की उम्मीद कैसे की जा सकेगी।

कवि के आदर्श नृपति दिलीप, रघु, अज, दशरथ और श्रीराम हैं। दुष्यन्त तो कालिदास के समकालीन राजाओं का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है।

कवि ने शकुन्तला की ढिठाई को क्षमा नहीं किया है। पिता की अनुपस्थिति में एक अज्ञात व्यक्ति से प्रेम और विवाह करने के कारण उसे वर्षों तक परित्यक्ता का जीवन बिताना पड़ा है। अपनी धूर्तता का दंड राजा दुष्यन्त को भी विरह और सन्तान हीनता के भय के कारण वर्षों तक भोगना पड़ा है।

नाटक में घूसखोर यद्यपि राज्य कर्मचारी भी समकालीन शासन व्यवस्था की सूचना देने में सक्षम हैं। गरीब मछली वाले पर अंगूठी की चोरी का आरोप लगा पुलिस उसे पकड़ती है और मारती–पीटती है तथा गालियाँ देती है। किन्तु जब राजा मछली वाले को पुरस्कार देता है तो पुलिस वाले उससे मित्रता करके शराब पिलाने का प्रस्ताव करते हैं। यह प्रसंग भी नाटक में सामन्तशाही के कारनामों को उजागर करने के लिए ही रखा गया है जबकि इसका कथा विस्तार से कोई संबंध नहीं है।

इन्हीं कारणों से कालिदास की प्रतिभा का स्पर्श कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। मेघदूत का विलासी यक्ष भी कर्तव्योपेक्षा का दण्ड भोगता है। मेघदूत में भी कवि के समकालीन समाज का चित्रण बखूबी किया गया है। कवि के समकालीन सामन्त प्रभुओं ने कवि की रचनाओं को अपनी ब्याज स्तुति समझकर कवि को सम्मानित किया किन्तु कवि ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह भलीभांति किया, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है।

लौकिक संस्कृत के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, महाभारत और अठारह पुराणों के निर्माता वेदव्यास की कृतियों से अपना वर्ण्य विषय लेकर कवि ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से अपने काव्यों व नाटकों का कलेवर गढ़ा तो है किन्तु उनका पिष्टपेषण नहीं किया है। अतः वाल्मीकि, व्यास और कालिदास की कवियत्री सर्वथा लोकहितकारिणी रही है। साहित्य में निहित समाज के हित की मूल भावना केवल पांडित्य प्रदर्शन के मोह में कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकी है। अतएव यह कहना समीचीन होगा–

कालिदाससमोकश्चित न भूतो न भविष्यति।

संपर्क : बिहारी जी का मंदिर परिसर,
बख्शी का तालाब, लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास की रचनाएँ

डॉ. वीरेन्द्र वर्मा

कवि–कुल–गुरु महाकवि कालिदास का जन्म कब हुआ, वे किस प्रदेश के रहने वाले थे, किस राजा के दरबार से उनका संबंध था, इन सब बातों के विषय में आज भी विद्वानों के बीच मतभेद है; किन्तु उनके रचित प्रसिद्ध ग्रन्थों के विषय में इस तरह का कोई भी मतभेद नहीं है।

कालिदास के सात ग्रन्थ प्रसिद्ध है–तीन नाटक, दो महाकाव्य और दो गीतिकाव्य। इस महाकवि ने संस्कृत–साहित्य की प्रत्येक धारा पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। नाटक–साहित्य में कालिदासकृत 'शकुन्तला' का नाम किसने नहीं सुना है? इसका अनुवाद प्रत्येक भारतीय तथा यूरोपीय भाषा में हो चुका है।

शकुन्तला के अतिरिक्त कालिदास के दो और अन्य नाटक प्रसिद्ध हैं–'विक्रमोर्वशीय' और 'मालविकाग्निमित्र'। संस्कृत के महाकाव्यों में कालिदास कृत 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संस्कृत साहित्य का अध्ययन प्रायः विद्यार्थीगण 'रघुवंश' से ही आरम्भ करते हैं। संस्कृत गीतिकाव्य के क्षेत्र में कालिदास कृत 'मेघदूत' अत्यन्त लोकप्रिय है। कालिदास के ग्रन्थों में शकुन्तला नाटक तथा रघुवंश महाकाव्य के बाद 'मेघदूत' को स्थान दिया जाता है। हमारे महाकवि का प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऋतुसंहार' भी है। यह एक छोटा–सा खंडकाव्य है, और जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इसमें ऋतुओं का वर्णन है। कालिदास के समस्त नाटकों में विशेष तथा शकुन्तला में–हमें वे असाधारण गुण मिलते हैं, जिनके कारण कालिदास संसार के बड़े–बड़े नाटककारों की टक्कर लेते हैं। 'शकुन्तला' की कथा का आधार महाभारत के दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रसिद्ध आख्यान है। किंतु कालिदास की कल्पना–शक्ति और सजीव शैली ने इस निर्जीव आख्यान में जैसे नयी जान डाल दी है। राजा दुष्यन्त जंगल में एक हिरन का पीछा करते–करते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते हैं और वहाँ ऋषि–द्वारा पाली हुई शकुन्तला की असाधारण सुन्दरता को देखकर उससे प्रेम करने लगते हैं और उससे गंधर्व

शकुन्तला के अतिरिक्त कालिदास के दो और अन्य नाटक प्रसिद्ध हैं–'विक्रमोर्वशीय' और 'मालविकाग्निमित्र'। संस्कृत के महाकाव्यों में कालिदास कृत 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संस्कृत साहित्य का अध्ययन प्रायः विद्यार्थीगण 'रघुवंश' से ही आरम्भ करते हैं। संस्कृत गीतिकाव्य के क्षेत्र में कालिदास कृत 'मेघदूत' अत्यन्त लोकप्रिय है। कालिदास के ग्रन्थों में शकुन्तला नाटक तथा रघुवंश महाकाव्य के बाद 'मेघदूत' को स्थान दिया जाता है। हमारे महाकवि का प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऋतुसंहार' भी है। यह एक छोटा–सा खंडकाव्य है, और जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इसमें ऋतुओं का वर्णन है। कालिदास के समस्त नाटकों में विशेष तथा शकुन्तला में–हमें वे असाधारण गुण मिलते हैं, जिनके कारण कालिदास संसार के बड़े–बड़े नाटककारों की टक्कर लेते हैं। 'शकुन्तला' की कथा का आधार महाभारत के. दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रसिद्ध आख्यान है। किंतु कालिदास की कल्पना–शक्ति और सजीव शैली ने इस निर्जीव आख्यान में जैसे नयी जान डाल दी है। राजा दुष्यन्त जंगल में एक हिरन का पीछा करते–करते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते हैं और वहाँ ऋषि–द्वारा पाली हुई शकुन्तला की असाधारण सुन्दरता को देखकर उससे प्रेम करने लगते हैं और उससे गंधर्व विवाह कर लेते हैं। विवाह के बाद चिन्ह के रूप में अपनी अँगूठी देकर वे अपनी राजधानी को लौट जाते हैं। इस बीच में क्रोधी दुर्वासा ऋषि कण्व के आश्रम में आते हैं। शकुन्तला राजा दुष्यन्त के विरह में बैठी थी; इसलिये ऋषि का उचित स्वागत नहीं कर पाती है। क्रोधी ऋषि शकुन्तला को शाप देते हैं कि तेरा पति तब तक तुझे नहीं पहचानेगा जब तक अपनी दी हुई अँगूठी को वह नहीं देखेगा। आश्रम में लौटने पर ऋषि कण्व शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास भेजते हैं। मार्ग में अँगूठी शकुन्तला के हाथ से नदी में गिर जाती है।

विवाह कर लेते हैं। विवाह के बाद चिन्ह के रूप में अपनी अँगूठी देकर वे अपनी राजधानी को लौट जाते हैं। इस बीच में क्रोधी दुर्वासा ऋषि कण्व के आश्रम में आते हैं। शकुन्तला राजा दुष्यन्त के विरह में बैठी थी; इसलिये ऋषि का उचित स्वागत नहीं कर पाती है। क्रोधी ऋषि शकुन्तला को शाप देते हैं कि तेरा पति तब तक तुझे नहीं पहचानेगा जब तक अपनी दी हुई अँगूठी को वह नहीं देखेगा। आश्रम में लौटने पर ऋषि कण्व शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास भेजते हैं। मार्ग में अँगूठी शकुन्तला के हाथ से नदी में गिर जाती है। ऋषि के शाप के कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तला को नहीं पहचान पाते हैं। निराश होकर शकुन्तला अपनी माता मेनका के पास चली जाती है और वहाँ ही उसके पुत्र भरत का जन्म होता है। कुछ दिनों बाद एक मछुए के पास से वह अँगूठी मिलती है। उसे देखते ही दुष्यन्त को सब पुरानी बातें याद आ जाती हैं। वे शकुन्तला की खोज में निकलते हैं और उसे तथा अपने पुत्र भरत को पाकर सुख से रहने लगते हैं। संक्षेप में यह शकुन्तला नाटक की कथा है। कालिदास का द्वारा प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीय' अर्थात् पराक्रम के जीती हुई उर्वशी है। इसमें राजा पुरुरवा का उर्वशी नाम की अप्सरा के प्रति प्रेम का वर्णन है। पुत्र के होने तक राजा इन्द्र उर्वशी को अपने मित्र राजा पुरुरवा के साथ रहने की आज्ञा दे देते हैं। अंत में राजा पुरुरवा की सेवाओं के बदले में वे उर्वशी को सदा के लिये राजा को भेंट कर देते हैं। विक्रमोर्वशीय की कथा का मूल रूप वेदों में मिलता है। महाभारत तथा पुराणों में इस कथा का अधिक विस्तार हुआ था।

कालिदास का अंतिम प्रसिद्ध नाटक 'मालविक्राग्निमित्र' है। इसमें महलों के प्रेम और ईर्ष्या की कथा है। इस नाटक के नायक राजा अग्निमित्र का नाम इतिहास–पुराण में मिलता है। शुंग वंश के शासक लगभग दूसरी शताब्दी पूर्व ईसवी में मालवा (विदिशा) में, जिसे आजकल भिलसा कहते हैं, राज्य करते थे। इस नाटक में अग्निमित्र और उनकी रानी की एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दासी मालविका के प्रेम का वर्णन है। अंत में यह पता चलता है कि मालविका वास्तव में एक राजकुमारी है और तब अग्निमित्र और मालविका का विवाह हो जाता है।

जिस तरह कालिदास के नाटकों में 'शकुंतला' बहुत प्रसिद्ध है, उसी तरह महाकाव्यों में 'रघुवंश' की विशेष ख्याति है। इस महाकाव्य में कवि का मुख्य उद्देश्य महाराज रामचन्द्र तथा इनके वंश का वर्णन करना है। 'रघुवंश' के आरम्भ के नौ सर्गों में रामचन्द्रजी के पूर्वजों का वर्णन है, जिनमें महाराज दिलीप तथा महाराज रघु मुख्य थे। महाराज रामचन्द्रजी का वर्णन 10 से 15 सर्गों तक किया गया है।

इस वंश का मूल आधार संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि की रामायण है। अंतिम चार सर्गों में रामचन्द्रजी के बाद होने वाले उनके वंशजों का वर्णन है। इस वंश का आधार विष्णु–पुराण मालूम होता है। रघुवंश की लगभग 20 टीकाएँ मिलती हैं, जिनमें संस्कृत काव्यों के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की संजीवनी टीका सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। इन टीकाओं की संख्या से ही रघुवंश की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

कालिदास कृत दूसरे महाकाव्य 'कुमारसंभव' का विषय महादेव और पार्वती के पुत्र कुमार अर्थात् स्वामी कार्तिकेय के जन्म का वर्णन है। इस महाकाव्य में 17 सर्ग हैं। आरंभ के 7 सर्गों में महादेव और पार्वती के प्रेम तथा विवाह का वर्णन है। इसके उपरांत कुमार का जन्म होता है। ग्रंथ के अंतिम भाग में कुमार के द्वारा तारकासुर–वध का वर्णन है। इसी उद्देश्य के लिये वास्तव में कुमार का जन्म हुआ था।

जैसा उधर बतलाया जा चुका है, तीन नाटकों और दो महाकाव्यों के अतिरिक्त महाकवि कालिदास कृत दो खंडकाव्य भी मिलते हैं। इनमें 'मेघदूत' बहुत ही लोकप्रिय है। मेघदूत में केवल 115 श्लोक हैं। इसकी कथा बहुत ही सरल है।

यक्षों के राजा कुबेर अपने एक सेवक यक्ष को देश–निकाले का दंड देते हैं। कुबेर की राजधानी अलकापुरी हिमालय में कैलाश पर थी। यक्ष मध्यभारत में रामगिरि पर रहने लगता है।

वर्षा–ऋतु के आरंभ में जब बादल दक्षिण

कालिदास कृत दूसरे महाकाव्य 'कुमारसंभव' का विषय महादेव और पार्वती के पुत्र कुमार अर्थात् स्वामी कार्तिकेय के जन्म का वर्णन है। इस महाकाव्य में 17 सर्ग हैं। आरंभ के 7 सर्गों में महादेव और पार्वती के प्रेम तथा विवाह का वर्णन है। इसके उपरांत कुमार का जन्म होता है। ग्रंथ के अंतिम भाग में कुमार के द्वारा तारकासुर–वध का वर्णन है। इसी उद्देश्य के लिये वास्तव में कुमार का जन्म हुआ था। जैसा उधर बतलाया जा चुका है, तीन नाटकों और दो महाकाव्यों के अतिरिक्त महाकवि कालिदास कृत दो खंडकाव्य भी मिलते हैं। इनमें 'मेघदूत' बहुत ही लोकप्रिय है। मेघदूत में केवल 115 श्लोक हैं। इसकी कथा बहुत ही सरल है।

यक्षों के राजा कुबेर अपने एक सेवक यक्ष को देश–निकाले का दंड देते हैं। कुबेर की राजधानी अलकापुरी हिमालय में कैलाश पर थी। यक्ष मध्यभारत में रामगिरि पर रहने लगता है।

वर्षा–ऋतु के आरंभ में जब बादल दक्षिण से उत्तर की ओर जाते हैं, तो यक्ष को अपनी स्त्री का स्मरण आता है और वह बादल या मेघ को दूत मानकर उसके द्वारा अपना समाचार अपनी स्त्री को भेजता है। मेघदूत के पहले आधे भाग में रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन है। शेष भाग में यक्ष के द्वारा विरह के कारण व्याकुल यक्षिणी का मार्मिक चित्रण किया गया है।

कालिदास का दूसरा खण्डकाव्य 'ऋतुसंहार' है। इसमें 153 श्लोक हैं, जो छः सर्गों में है। 'ऋतुसंहार' में छः ऋतुओं का अत्यंत सुंदर और आकर्षक वर्णन है।

कालिदास के प्रसिद्ध ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है। किंतु इससे इन ग्रंथों के सौंदर्य का अनुमान नहीं हो सकता है। इसका अनुभव तो मूल ग्रंथों के पढ़ने से ही किया जा सकता है। अनुवादों में भी मूलग्रंथ का आनंद बहुत कम मात्रा में मिल पाता है।

कालिदास के लगभग समस्त ग्रंथों का विषय प्रेम है। प्रेम में संयोग और वियोग, दोनों ही अवस्थाओं का वर्णन बहुत ही सफलता और स्वाभाविकता के साथ किया गया है। शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का–जैसे वीररस, करुणरस, शांतरस, हास्यरस आदि का भी वर्णन कालिदास के ग्रंथों में मिलता है; किन्तु थोड़ी मात्रा में।

इस महाकवि की रचनाओं की एक बहुत बड़ी विशेषता प्रकृति के चित्रण के रूप में हमें मिलती है। कालिदास प्रकृति के अनन्य भक्त और उपासक थे। इनके प्रत्येक ग्रंथ में प्रकृति का वर्णन बहुत सूक्ष्म दृष्टि से और सहृदयता के साथ किया गया है।

हमारे महाकवि ने अपने ग्रंथों के विषय प्रायः भारत के प्राचीन इतिहास–ग्रंथों से लिये हैं, जिनमें वाल्मीकि रामायण तथा व्यासकृत महाभारत मुख्य है; कहीं–कहीं पुराणों से भी सहायता ली है। किंतु अपनी प्रतिभा और कल्पना से कवि ने इन प्राचीन शुष्क कथाओं को बिलकुल नवीन और मौलिक रूप दे दिया है।

कालिदास के समस्त ग्रंथ साहित्यिक संस्कृत में हैं। केवल नाटकों में अपढ़ पुरुषों और स्त्रियों के मुख से उस समय की देशभाषाएँ, जो प्राकृत कहलाती थीं, बुलवायी गयी हैं। सच तो यह है कि मँजे हुए रूप में जैसी संस्कृत भाषा कालिदास के ग्रंथों में मिलती है, वैसी न उनके पहले के ग्रंथों में मिलती है, न बाद के ग्रंथों में। कालिदास की संस्कृत न उतनी स्वाभाविक है, जैसी रामायण–महाभारत की भाषा है, और न वैसी बनावटी, जैसी बाद के संस्कृत काव्यों में मिलती हैं।

महाकवि कालिदास प्राचीन भारत के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। संसार के सबसे बड़े आधे दर्जन कवियों में कालिदास का स्थान सबसे ऊपर नहीं तो काफी ऊँचा अवश्य रहेगा। ऐसे ही कवियों की वाणी के बारे में कहा गया है कि वह अमर है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास की राष्ट्रीय वाणी

प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय

भारतवर्ष एक अखण्ड राष्ट्र है। इस विशाल विस्तृत देश के नाना प्रांतों में भाषा तथा स्थानीय वेश–भूषा की इतनी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है कि बाह्यदृष्टि से देखने वालों को विश्वास नहीं होता कि देश में समरसता का साम्राज्य है, अखण्डता का बोलबाला है। परन्तु बाहरी आवरण को हटाकर निरखने वालों की दृष्टि में इसकी सांस्कृतिक एकता तथा अभिन्नता का परिचय पद–पद पर मिलता है। कालिदास भारतीय संस्कृति के हृदय थे। उनकी कविता में हमारी सभ्यता झलकती है; उनके नाटकों में हमारी संस्कृति विश्व के रंग–मंच पर अपना भव्य रूप दिखलाती है। उनकी वाणी राष्ट्रीय भाव तथा भावना से ओतप्रोत है। इतिहास साक्षी है, इसी महाकवि ने आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले, जब भारत पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आया, तब इस देश के सरस हृदय, कोमल वाणी तथा उदात्त भावना का प्रथम परिचय पाश्चात्य संसार को दिया। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण सम्पन्न कर सकते हैं।

कालिदास ने अखण्ड भारतीय राष्ट्र की स्तुति की है। अभिज्ञान शाकुंतल की नांदी में कविवर ने शंकर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। कुमार संभव (6।26) में भी इन्हीं मूर्तियों का विस्तार कर जगत् के रक्षण–कार्य का स्पष्ट संकेत है। अष्टमूर्ति शंकर की उपासना कालिदास को नितांत प्रिय थी। इसमें एक रहस्य है। महादेव की आठ मूर्तियाँ ये हैं–सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अतः इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करने वाले इस जगत् के चेतन नियामक की सत्ता में किसी को भी संदेह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे। 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'–इन शब्दों में वैदिक कवि ने निरीश्वरवादी बौद्धों को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य–मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्यमान् को शोभा नहीं देता। इतना ही नहीं, इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है। शिव की इन मूर्तियों के तीर्थ इस देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। चंद्रमूर्ति की प्रतिष्ठा दो तीर्थों में हैं–एक है भारत के पश्चिम में काठियावाड़ का सोमनाथ–मंदिर और दूसरा है भारत के पूरब में बंगाल का चंद्रनाथ क्षेत्र। सोमनाथ का प्रसिद्ध तीर्थ प्रभासक्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का मंदिर चटगाँव से लगभग चालीस मील उत्तर–पूर्व में एक पर्वत पर स्थित है। नेपाल के पशुपतिनाथ यजमान मूर्ति के तीर्थ हैं। यही कारण है कि पशुपतिनाथ लिंग रूप में नहीं हैं; बल्कि मानुषी विग्रह के रूप में विराजमान् हैं। पंच तत्त्वों की सूचक मूर्तियों के क्षेत्र दक्षिण–भारत में विद्यमान हैं। क्षिति लिंग शिवकांची में एकाप्रेश्वरनाथ के रूप में हैं। जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव–मंदिर में मिलता है। तेजोलिंग अरुणाचल पर है, वायुलिंग कालहस्तीश्वर के नाम से विख्यात है, जो दक्षिण के तिरूपति बालाजी के कुछ ही उत्तर में है। आकाशलिंग चिदम्बरं के मंदिर में हैं। 'चिदम्बर' का अर्थ ही है 'चिराकाश'। इसी से मूल–मंदिर में कोई मूर्ति नहीं है। आकाश स्वयं मूर्तिहीन ठहरा।

इस प्रकार भगवान् चंद्रमौलीश्वर की ये आठों मूर्तियाँ भारत के सबसे उत्तरीय भाग नेपाल से लेकर दक्षिण चिदम्बरम् तक तथा काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक फैली हुई हैं और इनकी उपासना का अर्थ है समग्र भारतवर्ष की आध्यात्मिक एकता की उपासना। महाकवि ने राष्ट्रीय एकता की ओर नांदी श्लोक में गूढ़ रूप से संकेत किया है।

राष्ट्र का मंगल किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? क्षात्रबल तथा ब्रह्मतेज के परस्पर सहयोग से ही किसी देश का वास्तव में कल्याण हो सकता है। ब्राह्मण देश के मस्तिष्क हैं, उन्हीं के विचार तथा मार्ग पर समग्र देश आगे बढ़ता है। क्षत्रिय राष्ट्र के विजयी बाहु हैं, जिनकी

कालिदास ने अखण्ड भारतीय राष्ट्र की स्तुति की है। अभिज्ञान शाकुंतल की नांदी में कविवर ने शंकर की अष्टमूर्तियों का उल्लेख किया है। कुमार संभव (6।26) में भी इन्हीं मूर्तियों का विस्तार कर जगत् के रक्षण–कार्य का स्पष्ट संकेत है। अष्टमूर्ति शंकर की उपासना कालिदास को नितांत प्रिय थी। इसमें एक रहस्य है। महादेव की आठ मूर्तियाँ ये हैं–सूर्य, चन्द्र, यजमान, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। ये समस्त मूर्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अतः इन प्रत्यक्ष मूर्तियों को धारण करने वाले इस जगत् के चेतन नियामक की सत्ता में किसी को भी संदेह करने का अवकाश नहीं है। कालिदास वैदिक धर्म तथा संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे। 'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः'–इन शब्दों में वैदिक कवि ने निरीश्वरवादी बौद्धों को कड़ी चुनौती दी है। भगवान् की प्रत्यक्ष दृश्य–मूर्तियों में अविश्वास रखना किसी भी चक्षुष्यमान् को शोभा नहीं देता। इतना ही नहीं, इस श्लोक में भारत की एकता तथा अखण्डता की ओर भी संकेत किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संरक्षकता में राष्ट्र पनपता है। मस्तिष्क और बाहु के इस परस्पर सम्पर्क तथा साहाय्य का माहात्म्य वैदिक ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है। सम्राट् त्रैवृष्ण त्र्यरुण और महर्षि वृश जान के आख्यान का यही रहस्य है। कालिदास ने इस तत्त्व का स्पष्टीकरण बड़े सुंदर शब्दों में किया है:–

स बभूव दुरासदः परैर्गुरूणाथर्वविदा कृतक्रियः।
पवनाग्निसमागमो द्वयं सहितं ब्रह्म यदस्त्रतेजसा।।

–रघु०8।4

अथर्ववेद के जानने वाले गुरु (वशिष्ट) के द्वारा संस्कार कर दिये जाने पर वह (अज) शत्रुओं के लिये और भी दुर्द्धर्ष हो गया। ठीक ही है, शस्त्र–तेज से युक्त ब्रह्म तेज आग–हवा के संयोग के समान प्रदीप्त हो उठता है।

भारतीय राजाओं का जीवन परोपकार की एक दीर्घ परम्परा होता है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा हैं कि उसका धन ही केवल दूसरों के उपकार के लिए न था, प्रत्युत उसके समस्त सद्गुण दूसरों का कल्याण–सम्पादन करते थे; उसका बल पीड़ित के भय तथा दुःख का निवारण करता था तथा उसका शास्त्राध्ययन विद्वानों के सत्कार और आदर करने में लगाया गया था–

बलमार्तभ्योपशान्तये विदुषां साकृतये बहुश्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रपोजना।।

–रघु० 8।3।

उस प्रतापशाली राजा (अज) का बल दुःखियों के दुख को हटाने के लिये, ज्ञान विद्वानों के सत्कार के लिये था। यहां तक कि उसका धन ही नहीं, किंतु उसके गुण भी दूसरों के उपकार के लिये थे।

राजा की सार्थकता प्रजापालन से है। 'राजा प्रकृति–रञ्जनात्'–हमारी राजनीति का आदर्श वाक्य है। प्रकृति का अनुरंजन ही हमारे शासकों का प्रधान लक्ष्य होता था और प्रजा का कर्त्तव्य था राजा की भक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा। समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होती है। भारत का वास्तव में कल्याण दो ही वस्तुओं से हो सकता है–त्याग से और तपोवन से। जिस दिन त्याग का महत्त्व कम हो जायेगा तथा तपोवन के प्रति हमारी आस्था नष्ट

'राजा की सार्थकता प्रजापालन से है। 'राजा प्रकृति–रञ्जनात्'–हमारी राजनीति का आदर्श वाक्य है। प्रकृति का अनुरंजन ही हमारे शासकों का प्रधान लक्ष्य होता था और प्रजा का कर्त्तव्य था राजा की भक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा। समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होती है। भारत का वास्तव में कल्याण दो ही वस्तुओं से हो सकता है–त्याग से और तपोवन से। जिस दिन त्याग का महत्त्व कम हो जायेगा तथा तपोवन के प्रति हमारी आस्था नष्ट हो जायगी, उसी दिन न हम भारतीय रहेंगे और न हमारी सभ्यता भारतीय रहेगी। आर्य संस्कृति की मूल प्रतिष्ठा इन्हीं दो पीठों पर है। भारतीय राष्ट्र के संरक्षक रघु के जन्म का कारण नगर से बहुत दूर, वसिष्ठ के पावन आश्रम में निवास तथा गोचारण है। रघु का उदय गोमाता के वरदान का उज्ज्वल प्रभाव है। इसी प्रकार दुष्यंत–पुत्र भरत का जन्म और पोषण हेमकूट पर्वत पर मारीचाश्रम में होता है। भारतीय राष्ट्र के संचालक पावन तपोवन और पवित्र त्याग के वायुमण्डल में पले हैं और बचे हुए हैं। हमारे राजाओं ने जिस दिन कालिदास के इस सन्देश को भुला दिया, उसी दिन उनका अधःपतन आरम्भ हो गया।'

हो जायगी, उसी दिन न हम भारतीय रहेंगे और न हमारी सभ्यता भारतीय रहेगी। आर्य संस्कृति की मूल प्रतिष्ठा इन्हीं दो पीठों पर है। भारतीय राष्ट्र के संरक्षक रघु के जन्म का कारण नगर से बहुत दूर, वसिष्ठ के पावन आश्रम में निवास तथा गोचारण है। रघु का उदय गोमाता के वरदान का उज्ज्वल प्रभाव है। इसी प्रकार दुष्यंत–पुत्र भरत का जन्म और पोषण हेमकूट पर्वत पर मारीचाश्रम में होता है। भारतीय राष्ट्र के संचालक पावन तपोवन और पवित्र त्याग के वायुमण्डल में पले हैं और बचे हुए हैं। हमारे राजाओं ने जिस दिन कालिदास के इस सन्देश को भुला दिया, उसी दिन उनका अधःपतन आरम्भ हो गया।

रघु की तेजस्विता तथा अग्निवर्ण की स्त्रैणता का कितना सजीव चित्र कालिदास ने खींचा है। रघु था त्याग का उज्ज्वल अवतार और अग्निवर्ण था स्वार्थ–परायणता की सजीव मूर्ति। रघु की वीरता तथा उदारता भारतीय नरेश का आदर्श और रघु हिंदू राजा का प्रतीक है, तो अग्निवर्ण पतित–पातकी भूपालों का प्रतिनिधि है। राजभक्तं प्रजा प्रातःकाल अपने राजा का मुख देखकर 'सुप्रभावतं' मनाने आती थी; परन्तु अग्निवर्ण मंत्रियों के लाखों सिफारिश रहने पर कभी दर्शन देता था खिड़की से लटकाकर अपने पैर का। प्रजा राजा का मुख देखने के लिये आती थी पर पैर का दर्शन पाकर लौटती थी। वाह री विडम्बना!

गौरवाद्यदपि जातु मंत्रिणां दर्शनं
प्रकृतिकांक्षितं ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना
केवलेन चरणेन कल्पितम्।

(रघु० 19।7)

मंत्रियों के बहुत कहने–सुनने पर प्रजा की इच्छापूर्ति के लिये उस (अग्निवर्ण) ने दर्शन तो दिया, पर वह भी झरोखे से अपने पैरों को नीचे लटकाकर।

अग्निवर्ण पार्थिव भोगविलास का दास था। उसे फल भी अच्छा ही मिला–राष्ट्र तथा देश का सत्यानाश। अग्निवर्ण के दुश्चरित्र का कुफल कवि ने बड़े ही प्रभावशाली शब्दों में अभिव्यक्त किया है। इस चित्र को देखकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कालिदास ने राष्ट्र के मंगल की भावना बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रकट की है–

प्रवर्ततां! प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
ममामि च क्षपयतु नील लोहितः
पुनर्भवं परिगत शक्तिरात्मभूः।।

राजा प्रजाओं के उपकार में लगें, वेद की पवित्रवाणी का महत्व बढ़े और स्वयंभूत शिवा–युक्त भगवान् नीलकंठ हमें मुक्त करें।

आशा है, हम कालिदास की राष्ट्रीय वाणी का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर स्वराष्ट्र, स्वदेश तथा स्वधर्म की अभ्युन्नति में दत्तचित्त होंगे। आज भी हम यदि इस महाकवि के इस दिव्य संदेश को सुनकर कार्य में लाने का प्रयत्न करेंगे, तो हमारा अभ्युदय अवश्यम्भावी है। भारत का वास्तविक कल्याण इसी में है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास–साहित्य में सौंदर्यबोध

प्रो. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन–काल में महाकवि कालिदास ने जन्म ग्रहण किया था। (?) वह युग बौद्ध एवं हिन्दू–धर्म का संघर्ष–युग था। उस समय बौद्ध धर्म सहिष्णु हो रहा था और ब्राह्मण–धर्म का क्रमशः सुनिश्चित रूप में उत्थान हो रहा था। बौद्ध धर्म प्रधानतः वैराग्यमूलक धर्म बन गया था। उसमें मानव–प्रवृत्तियों के अपदमन पर विशेष जोर दिया जाता था। मनुष्य के सौंदर्य–बोध एवं उसके हृदय की सुकुमार वृत्तियों के लिये उसमें कोई स्थान नहीं रह गया था। इसलिये स्वभावतः ही बौद्ध धर्म के वैराग्यमूलक कठोर विधि–निषेधों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और मनुष्य के जीवन–दर्शन में सौंदर्य–पक्ष की प्रधानता हुई। जीवन के इस सौंदर्य–पक्ष को लेकर ही उस समय के साहित्य, संस्कृति एवं कला में एक नवयुग का आरम्भ हुआ। इस नवयुग में मानवेतर प्रकृति के सौंदर्य–बोध ने मानव–मन को इतना विस्मय–विमुग्ध किया कि उसका प्रभाव मानव–जीवन पर भी पड़े बिना नहीं रहा। जीवन में एक प्रकार की स्वच्छन्दता, सरलता एवं उज्ज्वलता आ गयी, जिससे जीवन रसोल्लास से परिपूर्ण होकर मधुमय बन गया।

कालिदास के काव्यों में हम इस सौंदर्य–बोध की ही प्रधानता पाते हैं। उनकी विराट् प्रतिभा की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि किसी वस्तु के वर्णन में उन्होंने उसके समस्त कदर्य रूप का वर्णन करके केवल उसके सौंदर्य को अपने काव्य में प्रतिफलित किया है। जहाँ अन्य अनेक कवियों ने किसी दृश्य–विशेष के यथातथ्य वर्णन में केवल अपने मस्तिष्क का परिचय दिया है, जिससे कला की दृष्टि से उनके काव्य का महत्व बहुत कुछ हीन हो गया है, वहाँ कालिदास ने मानवीय या प्राकृतिक सौंदर्य के वर्णन में सूक्ष्म रस–बोध का परिचय दिया है। नारी का सौंदर्य–वर्णन करने में कवि के श्लीलता–बोध पर कहीं भी आघात नहीं पहुँचा है। हिमालय के सौंदर्य–वर्णन में कवि ने जिस उच्च रसबोध एवं संयत्र भाव का परिचय दिया है, वही रसबोध और संयम भाव उसके नारी–रूप–वर्णन में भी पाया जाता है।

कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा का वैशिष्टय हम उनके बहिःप्रकृति के सौंदर्य–वर्णन में पाते हैं। प्रकृति की शोभाश्री, प्रकृति की कमनीयता एवं मधुरता ने कवि–मन को जितना मुग्ध किया है, उतना और किसी वस्तु ने नहीं; ऐसा मालूम पड़ता है, मानों कवि ने प्रकृति के अन्तःपुर में प्रवेश करके उसके साथ प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर लिया है और प्रकृति के अपरूप सौंदर्य का छककर रसपान किया है। कवि मन–प्राण से बाह्य सौंदर्य का उपासक है। यह सौंदर्य ही उसके लिये शाश्वत आनंद का उत्स है। बाह्य सौंदर्य में उसका कल्पना–विलास निखर उठता है। अपनी कोमल कल्पना द्वारा वह जिस अनवद्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, उसकी मोहकता एवं कमनीयता का वर्णन करते हुए वह अघाता नहीं। यह परिदृश्यमान जगत् और उसके नदी–नद, वन–प्रांतर, गिरि–गह्वर, पर्वत एवं तरंग–क्षुब्ध सागर चिरकाल से मानव मन को आकर्षित एवं विस्मय–विमुग्ध करते आ रहे हैं; किंतु कालिदास के काव्य में इनका सौंदर्य एक सम्पूर्ण अभिनव रूप में परिस्फुटित हुआ है। हिमालय–वर्णन को ले लीजिए। जहाँ हिमालय का विराट रूप, उसकी उच्चता, उसकी दुर्द्धर्षता एवं श्वापद संकुल उग्रता ने मनुष्य के मन में भीति का संचार किया है, वहाँ हिमालय के सौंदर्य ने कालिदास के काव्य में एक दूसरा ही रूप ग्रहण किया है। हिमालय के तुषार–पात में दिग्बधुओं की चरण–रेखा एवं केशरी–पदस्खलित मुक्ता–दल ने हिमालय को इस प्रकार कमनीय बना दिया है, मानों वह एक संपूर्ण अभिनव–जगत् हो। प्रकृति में जो जड़ता है, उसका आभास हम कालिदास के काव्यों में नहीं पाते। प्रकृति के स्पंदनशील प्राणों की सूक्ष्म अनुभूति उनकी प्राण वीणा के एक–एक तार को झंकृत कर देती हैं। विराट् हिमालय से लेकर एक लघुलता तक एक अखंड चैतन्य के प्रतीक रूप में उनके काव्य में प्रतिबिम्बित हुआ है। वह मानव–प्रकृति एवं मानवेतर प्रकृति में एक प्रकार का अंतर्योग, रागात्मक संबंध पाते हैं। प्रकृति की अंतरात्मा के साथ उन्होंने मृदुलालाप किया है और संपूर्ण जड़ एवं चेतन जगत् के साथ अपनी समवेदना का संधान पाया है। कालिदास की दृष्टि में प्रकृति मनुष्य के सुख–दुःख में, हर्ष–विषाद में उदासीन नहीं है; बल्कि गंभीर रूप में संवेदनशील है। मानव एवं मानवेतर प्रकृति के इस साहचर्य के फलस्वरूप दोनों के बीच प्रगाढ़ रागात्मक संबंध का परिचय हम कालिदास के साहित्य में पर्याप्त रूप में पाते हैं। बाह्य प्रकृति के सौंदर्य–वर्णन के प्रसंग में उन्होंने मानवीय भावनाओं को गुम्फित करने में अपूर्व कला–कुशलता प्रदर्शित की है। कवि हमें बताता है कि मनुष्य के जन्म–ग्रहण करने पर प्रकृति उत्सव मनाती है, हर्षोल्लास प्रकट करती है और इस प्रकार हमारी भावनाओं के प्रति अपनी सहृदयता प्रदर्शित करती है। हिमालय–दुहिता उमा के जन्म ग्रहण करते पर प्रकृति का रमणीय रूप देखिए–

प्रसन्नदिक् पांशुविविक्तवातं
शङ्खस्वनानन्तरपुष्पदृष्टिः।
शरीरिणां स्थावरजङ्मानां
सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव।

उमा का जन्म–दिन सम्पूर्ण स्थावर–जङ्गम–सृष्टि के आनंद का कारण हुआ। दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं, सुगंध समीर प्रवाहित होने लगी; आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी।

निवार्सिता सीता वाल्मीकि के आश्रम में दुःख से विह्वल होकर कातर स्वर में विलाप कर रही हैं और वन के वृक्ष एवं पशु–पक्षी उनके प्रति सम–वेदना प्रकट कर रहे हैं।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समुदुःखभावम्
अत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि।।

मयूरों ने नृत्य करना छोड़ दिया है; वृक्षों से फूल झड़ने लगे, हिरनों के मुँह से कुश के ग्रास गिर पड़े; इस प्रकार सम्पूर्ण वन ने सीता के दुःख से समदुःखी होकर अपना शोक–प्रदर्शन किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुन्तला कण्व के आश्रम से पति गृह के लिये प्रस्थान कर रही है और उसकी इस विदाई के अवसर पर सम्पूर्ण लता–कुंज अपनी अन्तर्वेदना प्रकट कर रहे हैं। उसकी सखी प्रियंवदा कहती है:–

"उद्गलितदर्भकवलाः मृगाः
परित्यक्तनर्तनाः मयूराः।
अपसृत पाण्डुपत्राः मुंञ्चन्त्यश्रुणीव लताः।।"

हरिणी के मुख से कुश–ग्रास गिर पड़ा है; मयूरी ने नृत्य करना छोड़ दिया है; लताएँ पीले पत्तों को गिराने के बहाने मानों अश्रुजल मोचन कर रही हैं।

राम सीताहरण के कारण अत्यन्त दुःखी होकर विक्षिप्त दशा में वन में भ्रमण करते हुए सीता का अनुसन्धान कर रहे हैं। वन में लताएँ उनके गंभीर शोक पर तरस खाकर वाणी–विहीन होने के कारण अपने पल्लवों को झुकाकर राम का मार्ग–प्रदर्शन करती हैं:–अदर्शयन् वक्तुमशक्तुवन्त्यः शाखाभिरावर्जित पल्लवाभिः।। कवि के लिए प्रकृति अनन्त ज्ञान का भण्डार है। वृक्ष, लता, तृण, वन, पर्वत, नदी, गर्जमान् सागर, अनन्त नीलाकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं–महान् से लेकर अति साधारण तक वे सब कवि की दृष्टि में मनुष्य के लिये नैतिक महत्व रखते हैं। उनमें जो नैतिक उपदेश प्रच्छन्न हैं, उन्हें ही कवि प्रकाश में लाकर हमारे सामने रखता है:–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः।
नवाम्बुभिः दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषः समृद्धिभिः।
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

फल के भार से वृक्ष झुक जाते हैं; आकाश के सघन मेघ नीचे लटककर जल धारा द्वारा पृथ्वी को सरस करते हैं। इसी प्रकार सज्जन पुरुष धन पाकर उद्धत नहीं होते। परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा होता है।

प्रकृति के दशा–परिवर्त्तन में कवि मानव–जीवन के उत्थान–पतन का निदर्शन पाता है:–

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां
आविष्कृतारुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्वसनोदयाभ्यां
लोकोनियम्यत इवैष दशान्तरेषु।।

एक ओर आकाश में चन्द्रमा अस्त हो रहा है और दूसरी ओर स्वर्ण–रश्मियों को विकीर्ण करता हुआ सूर्य पूर्वाकाश में उदित हो रहा है। एक का तेज क्षीण हो रहा है और साथ–ही–साथ दूसरे के तेज का उदय हो रहा है। इसी प्रकार मानव–जीवन में भी उत्थान–पतन का चक्र चलता रहता है।

एक ओर जहाँ कालिदास ने प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में अपने कल्पना–विलास का प्रचुर परिचय दिया है, वहाँ दूसरी ओर नारी–सौन्दर्य के चित्रांकन में भी हम उनकी कल्पना का वही भावोच्छ्रास पाते हैं। 'कुमारसंभव' काव्य में उन्होंने उमा के अनवद्य सौंदर्य एवं उसके अंग–प्रत्यंग की सुषमा का वर्णन करने के बाद उसका उपसंहार इस रूप में किया है:–

'सर्वोपमाद्रव्यसमुच्येन
यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा
प्रयत्नादेकस्थ–सौन्दर्यदिदृक्षषेव।।

सम्पूर्ण सौन्दर्य को एक ही स्थान में केन्द्रित देखने की इच्छा से विधाता ने प्रकृति से समस्त सुन्दर वस्तुओं को ग्रहण करके उन्हीं उपादानों से उमा के शरीर का गठन किया है।

मेघदूत में कवि ने यक्ष की प्रियतमा का सौन्दर्यांकन भी इसी रूप में किया है। देखिये:–

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुपु नदीवीचिषु भ्रू विलासान्,
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति।।"

प्रयंगुलता में तुम्हारे कोमल वपु का, मृगी में तुम्हारे नेत्रों का, चन्द्रमा में मुख की दुति का, मयूरी के पंखों में केशपाश का, नदी जल की चपल तरंगों में भ्रूविलास का आभास पाता हूं। किन्तु, एक ही स्थान में तुम्हारी शोभा–जैसी शोभा और कहीं नहीं दीख पड़ती।

इतना ही नहीं, बल्कि यक्ष की यह प्रियतमा विधाता की युवति–रचना में 'आदि' है; या तत्र स्यात् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः। कालिदास की यह यक्षप्रिया आदर्श एवं सर्वाङ्गपूर्ण सौंदर्य की जीवन्त प्रतिमूर्ति है।

इस प्रकार क्या प्राकृतिक सौंदर्य और क्या मानवीय सौंदर्य–दोनों के चित्रांकण में कालिदास ने अपनी विराट् बहुमुखी प्रतिभा का जो परिचय दिया है, उस पर हम नवयुग का प्रभाव पूर्ण रूप से पाते हैं। प्रकृति के साथ घनिष्टतम परिचय होने के फलस्वरूप कवि का मानसिक क्षितिज व्यापक, हृदय उदार एवं विशाल बन गया है। युग की संस्कृति की पूरी छाप हम कालिदास के साहित्य में पाते हैं। इस साहित्य ने केवल रसज्ञ पाठकों का मनोरंजन ही नहीं किया है, बल्कि भारतीय जाति को सांस्कृतिक आलोक प्रदान किया है। जाति की जो परम्परागत सांस्कृतिक धारा थी उसमें ही अवगाहन करके कवि ने अपनी कल्पना द्वारा सौंदर्य आहरण किये हैं। जिनसे मण्डित होकर उनका साहित्य युग–युग के लिये अमर बन गया है।●

> कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा का वैशिष्टय हम उनके बहिःप्रकृति के सौंदर्य–वर्णन में पाते हैं। प्रकृति की शोभाश्री, प्रकृति की कमनीयता एवं मधुरता ने कवि–मन को जितना मुग्ध किया है, उतना और किसी वस्तु ने नहीं; ऐसा मालूम पड़ता है, मानों कवि ने प्रकृति के अन्तःपुर में प्रवेश करके उसके साथ प्रगाढ़ परिचय प्राप्त कर लिया है और प्रकृति के अपरूप सौंदर्य का छककर रसपान किया है। कवि मन–प्राण से बाह्य सौंदर्य का उपासक है। यह सौंदर्य ही उसके लिये शाश्वत आनंद का उत्स है। बाह्य सौंदर्य में उसका कल्पना–विलास निखर उठता है। अपनी कोमल कल्पना द्वारा वह जिस अनवद्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, उसकी मोहकता एवं कमनीयता का वर्णन करते हुए वह अघाता नहीं। यह परिदृश्यमान जगत् और उसके नदी–नव, वन–प्रांतर, गिरि–गह्वर, पर्वत एवं तरंग–क्षुब्ध सागर चिरकाल से मानव मन को आकर्षित एवं विस्मय–विमुग्ध करते आ रहे हैं; किंतु कालिदास के काव्य में इनका सौंदर्य एक सम्पूर्ण अभिनव रूप में परिस्फुटित हुआ है। हिमालय–वर्णन को ले लीजिए। जहाँ हिमालय का विराट रूप, उसकी उच्चता, उसकी दुर्द्धर्षता एवं श्वापद संकुल उग्रता ने मनुष्य के मन में भीति का संचार किया है, वहाँ हिमालय के सौंदर्य ने कालिदास के काव्य में एक दूसरा ही रूप ग्रहण किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास सरस्वती के प्रकाश हैं

ठाकुर प्रसाद सिंह

विद्वानों का कहना है कि मनुष्यों में कवि श्रेष्ठ होते हैं। उसी प्रकार यह भी कहा जाता है कि कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं। आज हम उसी महाभारत कवि कालिदास की यश–चर्चा करें तो अच्छा हो।

कालिदास की जन्मतिथि के सम्बन्ध में आज तक निश्चित नहीं हो सका है। उसी प्रकार यह कहना भी सरल नहीं है कि वे किस स्थान के रहने वाले थे। हमारे देश की यह विशेषता है कि यहाँ के महापुरुषों ने अपने विषय में कम से कम लिखा है। वे जिस उद्देश्य को लेकर कार्य करते थे, उसके लिए अपने को पूर्णरूप से सौंप देते थे। महर्षि वेदव्यास, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास तथा और भी कितने ही महान् साहित्यकारों का परिचय केवल हमें उनके लिखे ग्रंथों से ही प्राप्त होता है। ये ग्रंथ भी ऐसे हैं कि ज्ञान से हमें परिचित कराते हैं, पर अपने रचनाकार के विषय में एकदम चुप्पी साध लेते हैं।

कालिदास के विषय में इसीलिए कितनी ही दन्तकथाएं तथा किवदन्तियां इस देश में प्रचलित हो गयी। कुछ लोगों का विश्वास है कि कालिदास महाराज विक्रमादित्य के राजकवि थे। विक्रमादित्य एक महान् राजा थे और उनके दरबार में संसार के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों का जमघट था। उन विद्वानों में नौ ऐसे थे जिनके समान के व्यक्ति विश्व भर में कही नहीं थे। महाकवि कालिदास भी उन्हीं नवरत्नों में से एक थे। इस बात पर विश्वास करने वाले लोगों को ऐसी कितनी ही कहानियां याद हैं, जिनमें विक्रम और कालिदास की कथा कही गयी है।

बहुत से लोग यह भी मानते हैं कि कालिदास राजा भोज के दरबार में थे। 'भोज प्रबंध' नाम की एक पुस्तक में ऐसी कितनी तो कहानियां हैं, जिसमें राजा भोज और कालिदास की बातें कही गयी हैं। उसमें तो यहाँ तक कहा गया है कि कालिदास में इतनी शक्ति थी कि वे जो कह दे वह होकर ही रहे। राजा भोज ने एक बार कहा "कालिदास! तुमने अब तक मेरी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है अब मेरी मृत्यु के विषय में कुछ कहो।" कालिदास जानते थे कि यदि उनके मुंह से मृत्यु की बात निकली तो राजा भोज न बच सकेंगे, इसीलिए वे इस तरह की कविता रचने के लिए तैयार न हुए। राजा भोज इस पर अप्रसन्न हो गये और उन्होंने कालिदास को अपने राज्य से निकाल दिया। कालिदास लाचार होकर काशी नगरी में जाकर रहने लगे। कुछ दिन बाद राजा भोज बेष बदल कर कालिदास के पास पहुँचे और उन्होंने रोते हुए कहा कि धारा नगरी के प्रतापी राजा भोज अब नहीं रहे। राजा भोज ने यह झूठ केवल इसीलिए कहा था कि कालिदास उनकी मृत्यु पर कविता रचे।

कालिदास इस समाचार से अत्यन्त दुःखी हो उठे और उन्होंने रोकर जो कविता कही उसका सारांश यह था:–

निराधार हुई धारा, वाणी आलम्बन बिना,
पंडित खंडित हो गये सभी हैं, राजा गये भोज जो।।

कालिदास का यह कहना था कि राजा भोज पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके गिरते ही कालिदास सब कुछ समझ गये और उन्होंने तुरन्त ही अपनी पहली कविता इस प्रकार बदल कर सुना दी:–

धारा आज सदाधारा, वाणी आलम्बनवती,
पंडित–पंडित हुए यदि रहे श्री भोज इस सृष्टि में।

श्री भोज उठकर खड़े हो गये और उन्होंने रोते हुए कवि कालिदास को गले से लगा लिया। यद्यपि ये कहानियां जनता द्वारा गढ़ी गयी है, पर इनसे इतना तो पता लगता ही है कि इस देश के लोग कालिदास को कितना मानते हैं।

कुछ लोगों का विश्वास है कि कालिदास और बाद में पैदा हुए थे और इसके प्रमाण में वे कालिदास की हिन्दी की कविताएं प्रस्तुत करते हैं पर उनका यह कथन ठीक नहीं है। कालिदास नाम के कई कवि हो गये हैं।

सबको एक कर देने से ही इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता है। विद्वान साहित्यकारों तथा इतिहास के जानकारों ने कालिदास के जन्मकाल के विषय में काफी परिश्रम किया है। उनके मतानुसार कालिदास प्रसिद्ध गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय के समय में थे और सम्भवतः उनके पुत्र कुमार गुप्त के समय में भी वे इस पृथ्वी की शोभा बढ़ा रहे थे। श्री चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समय 380 ई. का होना प्रमाणित होता है। यह निश्चय किन प्रमाणों पर किया गया है, इस पर विचार करने के पहले हम कुछ ऐसी बातों का सहारा पा जाते हैं जिनके बल पर इतना तो कहा जा सकता है कि कालिदास पांचवी शती के पहले ही हुए थे। उन प्रमाणों में से एक तो है मंदसोर नामक प्राचीन स्थान का शिलालेश तथा दूसरा है अइहोल नामक स्थान का शिलालेख। मंदसोर वाले लेख पर कालिदास की कविताओं का प्रभाव साफ देखा जा सकता है, जबकि अइहोल में तो कवियों की नामावली में कालिदास का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

एकदम निश्चित रूप से कुछ न कहा जा सके, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि कालिदास की कविता की शैली से मिलती–जुलती शैली में काफी रचनाएं गुप्त काल में हुई। प्रयाग में सम्राट समुद्रगुप्त का लेख, जिसे हरिषेंण कवि का लिखा बताया जाता है तथा भितरी–सैदपुर का स्कन्दगुप्त का लेख तथा और कितने ही लेख इस बात का प्रमाण देते हैं कि उस युग में साहित्य की वही शैली प्रचलित थी, जिसमें कालिदास ने अपनी रचनाएं की। कहने वाले तो यहाँ तक कहते हैं कि कालिदास ने 'कुमार सम्भव' नामक अपने प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना कुमार गुप्त के जन्म के समय की थी। 'मेघदूत' नामक उनकी दूसरी पुस्तक में एक जगह दिंगनांग का नाम देखकर लोग उसे प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान दिगनांक कहते हैं और तुलना करते हैं कि किसी समय उन दोनों विद्वानों का शास्त्रार्थ अवश्य 416 ई. तक है। इस प्रकार पांचवी शताब्दी में कालिदास का पहला श्लोक इस प्रकार प्रारम्भ होता है–

'कश्चिद् कान्ता विरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमताः'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार तीसरे शब्द 'वाग्मिशेषं को लेकर 'रघुवंश' का पहला श्लोक लिखा गया है:–

वागार्थोइव संपृक्तो 'वागार्थप्रतिपत्तये'

यद्यपि इन कथाओं में सत्य का अंश नहीं है पर इससे कालिदास की साधना का परिचय मिलता है। वाल्मीकि के विषय में भी तो कहा जाता है कि वे पहले एक खूनी बहेलिए थे, पर बाद में इन पर सरस्वती की कृपा हुई। करीब–करीब सभी महापुरुषों के प्रारम्भिक जीवन के विषय में इसी प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं।

अब हम कालिदास की रचनाओं के विषय में विचार करें। अब तक तो केवल कथा–कहानियों का प्रमाण लेकर हम उनके जीवन की खोज करते रहे पर उनका सच्चा स्वरूप तो उनके ग्रंथों में ही पाया जाता है। यह सृष्टि यद्यपि भगवान ने बनायी है किन्तु वह चाहे भी तो वह नहीं बना सकता जो उसके बनाये हुए मनुष्य अपनी अनुभूति के बल पर बना देते थे। पुरुष की बुद्धि की थाह पाना इसीलिए परमेश्वर के लिए भी मुश्किल है।

कालिदास भी इसी प्रकार के एक आश्चर्य थे जिनकी रचनाओं की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाय कम होगा। उन्होंने कई नाटक, प्रबन्ध तथा प्रबंध मुक्तक लिखे जिनमें इस समय इतने ग्रंथ मिलते हैं।

नाटक–मालविकाग्निमित्रं, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञान शाकुंतल। काव्य–रघुंवश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार। इन ग्रंथों के अलावा और कई ग्रंथ इनके लिखे बताये जाते हैं पर वे अब मिलते नहीं। इन ग्रंथों में 'मालविकाग्निमित्रम्' तथा 'ऋतुसंहार' इनकी प्रारंभिक कृतियां मालूम होती हैं। बाकी ग्रंथ इनके प्रतिष्ठा के अनुकूल ही महान् गुणों से भरे हुए हैं।

इनके नाटकों में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का सम्मान विदेशों में इतना है कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद एक जर्मन विद्वान ने कहा था कि 'जिस देश के लोग ऐसी रचनाएं कर सकते हैं उसको सभ्यता सिखाने का दावा करना अंग्रेजों का अज्ञान और हठ है।' इसी ग्रंथ के बारे में एक विद्वान ने यहां तक कह डाला है :

"क्या तुम नव वर्ष आने की सूचना देने वाले वसन्त के फूलों और उसके अन्तिम दिनों में पकने वाले फलों को अथवा उन सबों को जिससे मानव की आत्मा उल्लास और चिरतुष्टि पाती है, एक ही शब्द द्वारा व्यक्त करना चाहते हो। क्या तुम्हें पृथ्वी और स्वर्ग के लिए एक ही नाम चाहिए। तो लो मैं कहता हूँ 'शाकुन्तल' और मैंने सब कुछ कह दिया।"

'शाकुन्तल' में राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला की कहानी तथा प्रसिद्ध राजा भरत के जन्म की कथा कही गयी है। कथा तो पुरानी ही है पर कवि कालिदास ने अपनी प्रतिभा के बल पर उसमें चार चांद लगा दिये हैं। इसी प्रकार 'मालविकाग्निमित्र' में मालविका और अग्निमित्र के प्रेम की तथा विक्रमोर्वशी में विक्रय तथा उर्वशी के प्रेम की गाथा नाटक की शैली में रची गयी है।

"कालिदास की जन्मतिथि के सम्बन्ध में आज तक निश्चित नहीं हो सका है। उसी प्रकार यह कहना भी सरल नहीं है कि वे किस स्थान के रहने वाले थे। हमारे देश की यह विशेषता है कि यहाँ के महापुरुषों ने अपने विषय में कम से कम लिखा है। वे जिस उद्देश्य को लेकर कार्य करते थे, उसके लिए अपने को पूर्णरूप से सौंप देते थे। महर्षि वेदव्यास, वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास तथा और भी कितने ही महान् साहित्यकारों का परिचय केवल हमें उनके लिखे ग्रंथों से ही प्राप्त होता है। ये ग्रंथ भी ऐसे हैं कि ज्ञान से हमें परिचित कराते हैं, पर अपने रचनाकार के विषय में एकदम चुप्पी साध लेते हैं।"

काव्य–ग्रंथों में 'रघुवंश' एक महान् रचना है। इसमें प्रसिद्ध रघुवंश के प्रतापी सम्राटों के अनुकरणीय चरित्रों का वर्णन किया गया है। अज, दिलीप, रघु, दशरथ तथा रामचन्द्र ऐसे प्रसिद्ध राजाओं के चरित्रों पर अलग–अलग तो बहुत से ऋषियों ने लिखा है पर इन सबका चरित्र एक सूत्र में पिरोना हीरों को छेदकर उनकी माला बनाने जैसा ही दुष्कर है। यह कार्य केवल कालिदास ही कर सकते थे। उनका दूसरा प्रबंध काव्य 'कुमारसम्भव' शिव के पुत्र स्कन्धकुमार के जन्म पर लिखा गया है। प्रसिद्ध असुर तारक ने जब देवताओं को हताश कर दिया तथा उसको पराजित करने के लिए स्कन्धकुमार का जन्म हुआ। यही कहानी बड़ी ही शक्तिशाली शैली में कवि ने प्रस्तुत की है। इस ग्रंथ को लेकर भी एक किंवदन्ती प्रचलित है। लोग कहते हैं कि इस ग्रंथ में कवि ने पार्वती जी का वर्णन कुछ ऐसी शैली में किया जिससे पार्वती जी ने उन्हें कोढ़ी होने का शाप दे दिया। तब कालिदास को शाप से मुक्त होने के लिए 'रघुवंश' लिखना पड़ा।

'मेघदूत' में कहानी तो बहुत जरा–सी है। एक यक्ष ने अपने कर्तव्य से प्रमाद किया, इसलिए कुबेर ने एक वर्ष के लिए यक्षों की नगरी अलका से उसे बाहर निकाल दिया। वह दुःखी होकर मध्य भारत के रामगिरि पर्वत पर बैठा हुआ है तभी बरसात के समय के बादल उठते हैं और वह उन्हीं से कहता है कि उसकी प्रिया के पास उसका संदेश पहुंचा दें। इसी सन्देश के बहाने वह बादलों को वह रास्ता बताता है जिससे उन्हें अलकापुरी जाना होगा। इतनी ही सी कहानी लेकर कालिदास ने प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया है वह जब तक मनुष्य जाति रहेगी तब तक विश्व को चकित करता रहेगा। काव्य की उनकी प्रतिभा का पता एक कहानी से भली प्रकार लगता है। एक बार कवियों की प्रार्थना पर सरस्वती प्रकट हुई और कवियों के आग्रह पर उन्होंने कहा कि 'भासोहासः कविकुलगुरु कालिदासो प्रकाशः' माने यह कि कवि भास सरस्वती की हंसी है जबकि कालिदास उनके प्रकाश हैं।

सचमुच कालिदास सरस्वती के प्रकाश हैं, वे न हों तो सरस्वती का महत्व कोई कैसे जान सकेगा।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वायन : प्रकृति चेतना कालिदास और शेक्सपीयर

डॉ. अनुराधा बैनर्जी

प्राचीन भारतवर्ष के मूर्धन्य रचनाकार कालिदास एवं पश्चिमी रेनेसाँ काल के साहित्य जगत् के महान प्रतिनिधि शेक्सपीयर समय के दुस्तर व्यवधान को पाटते हुए कई बार समीक्षकों के तुलनात्मक विश्लेषण का केन्द्र बन चुके थे। हालांकि इस देश पर अंग्रेजों के राजनैतिक, आर्थिक प्रभुत्व ने हमें दास की श्रेणी में रख दिया था, पर इस अपमानजनक स्थिति की कुछ अपरोक्ष खूबियाँ भी भारत की बौद्धिक चेतना को समृद्ध कर रही थीं। इसी समय ज्ञान के पिपासु विद्वान् परस्पर के अपरिचित साहित्य को जानने और विश्लेषित करने का प्रयास भी कर रहे थे। राजाज्ञा से भारतीय मन के विकास के लिए अंग्रेजी साहित्य को भारतीय शिक्षा व्यवस्था में समाहित किया गया–यह तो सर्वजन विदित है, पर उसी समय संस्कृत साहित्य के अनेक पश्चिमी गुणग्राही भी संस्कृत का गहन अध्ययन कर रहे थे। वे संस्कृत भाषा साहित्य का न सिर्फ इतिहास लिख रहे थे, बल्कि कालिदास और अन्य कवियों का अनुशीलन तथा विश्लेषण कर रहे थे। इसी परिपाटी को गेटे, मैक्समूलर, सर विलियम जोन्स, मोनियर विलियम्स, कीथ और अनेक अन्य विद्वान् सींच चुके हैं। यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा कालिदास साहित्य को इसी समय अथाह महत्त्व मिला और मोनियर विलियम्स ने उन्हें भारत का शेक्सपीयर कहकर सम्बोधित किया।

कालिदास की कल्पना शक्ति और उदात्त काव्यात्मकता से प्रभावित समीक्षक ने कालिदास अध्ययन में एक ऐसी परम्परा का सृजन किया जिससे आज भी इन दोनों सृजन संभार का तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है।

बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी में जीने वाले हम सब जब विश्वायन की तरफ राजनैतिक, आर्थिक तर्कों से बढ़ रहे हैं तब अतीत के सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का भी एक बार फिर विश्वायन होना बहुत आवश्यक है। कालिदास और शेक्सपीयर की प्रासंगिकता को इस समय पुनः प्रमाणित करने का बहुत बड़ा अवसर है। वर्तमान की कुछ ज्वलन्त समस्याओं के समाधान का 'पासवर्ड' (Password) संभवतः अतीत के इन रचनाकारों की रचनाओं में ही उपलब्ध हो जाय। वर्तमान में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पर्यावरण कक्षाओं का अनिवार्य किया जाना तथा पर्यावरण चेतना पर असंख्य बौद्धिक विवेचन, व्याख्यान और कार्यशालाएं कहीं न कहीं हमारी पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति की गई गल्तियों से उपजे अनुताप को दिखा रहे हैं।

कालिदास और शेक्सपीयर की पर्यावरण चेतना मेघदूत, ऋतुसंहार, अभिज्ञान शाकुन्तलम् और द टेम्पेस्ट की तरह के साहित्य का निर्माण कर हमें अन्धाधुन्ध प्रकृति दोहन के विषय में बार–बार सचेत कर चुके हैं, पर विडम्बना यह है कि अधिकतर महान लेखकों की प्रकृति चेतना को मात्र दो आयामों से ही समझा जाता रहा है–एक तो उसका सौन्दर्य पक्ष और दूसरा उसका दार्शनिक पक्ष। हम लोगों ने उनके साहित्य में निहित प्रबल जैविक पक्ष को उपर्युक्त दोनों पक्षों के सामने सर उठाने का मौका ही नहीं दिया। आज उसी सन्दर्भ को वैश्विक रूप से कालिदास और शेक्सपीयर के तुलनात्मक अध्ययन से सामने लाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

मेघदूतम् की कथावस्तु यक्ष पर आये हुए शाप और उसकी विरह यन्त्रणा के समय मेघ को दूत बनाकर रामगिरि से अलकापुरी भेजने की घटना में ही सिमटी नहीं है। न ही यह प्रकृति का मात्र आलंकारिक चित्रण ही है। यहाँ संकेत कुछ गहन है और वही कालिदास की समग्र प्रकृति चेतना का आधार है।

कृत्रिम जीवन के विधानों का मैल जब प्रकृति चेतना को ढक देता है तब उस मैल को धोने के लिए वर्षा के जल के जुड़ जाने की आवश्यकता है। मेघदूत के प्रसंग को लौटते हुये यह अनुभव होता है कि मानव पूर्णतः नगण्य और अशक्त है। वह अपनी बनायी हुई जीवन चर्या के कृत्रिम उपायों के आविष्कार में

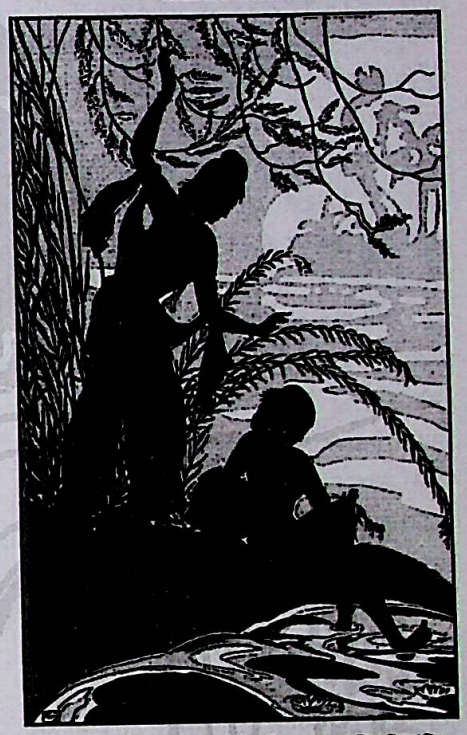

हो सकता है सिद्धहस्त हो, किन्तु प्रकृति नियंत्रित यथार्थ का इस जीवन के साथ सम्पर्क सूत्रों के टूटने से उसका स्वरूप पूर्णतः ध्वंस हो जायेगा। सामान्य रूप से मेघदूतम् यक्ष की कामना की कथा है किन्तु साथ ही पावस के मेघों की यथासमय एक विशाल भूखंड को सींचने की नैसर्गिक वार्ता भी। मेघों की यथार्थ गति पर छोटे–बड़े प्राण समूह निर्भर हैं। समय से मेघ न पहुँचने से मनुष्य की स्थिति वैसी दयनीय हो सकती है जैसी भीषण ताप लहरी से जल कर हम स्वयं ही समझ सकते हैं। यक्ष के लिए अवश्य ही मेघ संचार का व्यक्तिगत प्रयोजन है, किन्तु मेघ का संचार किसी व्यक्ति का प्रयोजन मिटाने के लिए नहीं, अपितु संपूर्ण चराचर में आर्द्रता लाने तथा झुलसे को शान्ति देने के लिए होता है। चाहे वह रूखे पर्वत क्षेत्र हों, चाहे वह सूखती नदियाँ हों, चाहे दावाग्नि से जले वृक्ष हों, या फिर ग्रीष्म ऋतु के तपते नर हों, मेघ का अस्तित्व तो परोपकार से जुड़ा है। यक्ष जानता है इसे और कहता है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वारिधारासहस्रैः प्रशमनफला
संपदो ह्युत्तमानाम्।।

प्रकृति की बन्धु रूप में याचना करना मानव के लिए आज ध्वंस से परित्राण पाने का एकमात्र पथ है। यही सचेत वाणी हमें 16वीं शताब्दी के महान रचनाकार शेक्सपीयर में मिलती है। शेक्सपीयर यूरोपीय रेनेसाँ की एक अथाह सर्जना का नाम है। वह एक ऐसे आलोक स्तम्भ का रूप है, जो काल की सीमाओं को पार कर अपने मानवीय मूल्यों के कारण सर्वदा प्रासंगिक है। अपने समय की नब्ज को अद्भुत खूबी से पकड़ने वाला एक व्यक्तित्व, जो शताब्दियों के बाद भी जीवन बोध की पूर्णता के कारण आज भी उतना ही प्रोज्जवल है। जीवन की विसंगतियों का विश्लेषण करने की उसकी बेजोड़ क्षमता ने कभी उनसे कामेडी, कभी ट्रैजेडी, कभी हिस्ट्री नाटक तो कभी रोमांस लिखवाये। मानव रिश्तों की जटिलताओं के गहन अध्ययन में वे स्वयं अपने आप से ही तुलनीय हैं। यह प्रश्न है कि मानव जीवन को बहुत करीब से समझने वाले शेक्सपीयर, क्या इंसान की शान्ति, समृद्धि, सुख को इस विशाल पृथ्वी में मानव तंत्र पर ही निर्भर मानते थे? क्या वह सोचते थे कि मानव जीवन का सुख–दुःख केवल मानव निर्मित है? जीवन के समन्वित रूप में, जिसमें पेड़–पौधे, हवा–पानी, मिट्टी, धूप इतने सारे प्राण तत्त्व हैं, वहाँ केवल मनुष्य को सर्वेसर्वा और दुनिया का सर्वशक्तिमान नियन्ता मान लेना कितनी प्रबुद्धता है?

लेकिन शेक्सपीयर का मानवतावाद अपने समय के इस बहुप्रचलित लोकप्रिय जीवनादर्श को स्वीकारते हुए मानव की जयकार करते हुये भी एक बिन्दु पर आकर रोमांचकारी रूप से उससे भिन्न भी था। मानव केन्द्रित मानवतावाद की जगह शेक्सपीयर ने अपनी रचनाओं की श्रृंखला में एक अद्भुत मानवीय दृष्टिकोण दिया है–जो मात्र मानव नहीं–मानव से भिन्न तत्त्वों का भी, जीवन को पूर्णता देने के लिये समावेश करता है। भिन्न तत्त्वों का आशय यहाँ प्रकृति का वह आयाम है, जो मानव की तरह ही इस जैविक परिदृश्य का हिस्सा है। इस जैविक प्रकृति की ओर शेक्सपीयर ने बड़े गूढ़ रूप से संकेत किया है।

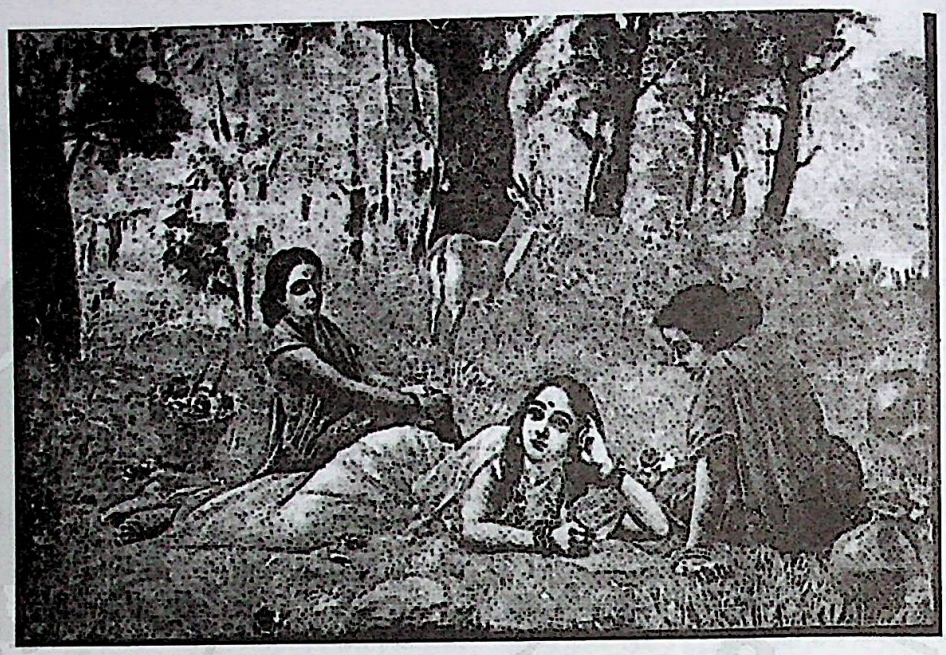

मानव जीवन की महत्ता और क्षुद्रता की विसंगतियों को बड़ी क्षमाशील दृष्टि के साथ उन्होंने देखा है; किन्तु प्रकृति के अस्तित्व से मानव का टकराव, उसे दास बनाने की प्रवृत्ति उन्हें कभी समर्थन योग्य न लगी। अपने समय में उन्होंने देखा कि कैसे ज्ञान की भूख और उस ज्ञान से उपलब्ध–शक्ति से दूसरों को पद–दलित कर दास बनाने की वासना जन्म लेती है। ऐसी वासना ध्वंस का ही पूर्वाभास है। यही चेतना है The Tempest नाटक की गहराई में। शेक्सपीयर की अन्तिम रचना The Tempest नाटक मनुष्य की इसी दुरभि सन्धि के प्रति की गई सावधान वाणी है। मनुष्य की शुभ–बुद्धि जागृत करने की गहरी चेष्टा है। इसमें एक अद्भुत स्थिति पैदा कर वह बताते हैं कि किस तरह मनुष्य इस संपूर्ण प्रकृति पर्यावरण युक्त जगत का स्वामी नहीं, भागीदार बन सकता है। किस प्रकार अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए प्रकृति का उपयोग और दोहन न कर, उस पर आधिपत्य करने की प्रवृत्ति का अन्त कर सकता है।

द टेम्पेस्ट नाटक का तूफान मानव निर्मित है। Prospero ने अपनी इच्छाओं को साकार करने के लिये प्रकृति के तत्त्वों को अपने अधीन किया है। यह अति प्राकृतिक तूफान उसी इच्छा का साकार रूप है। आज के सन्दर्भ में समझने पर द टेम्पेस्ट नाटक का यह तूफान कुछ स्तब्धकारी रूढ़ सत्यों की ओर संकेत करता है। यह तूफान पर्यावरणीय विपर्यय को समेटे है; जो मनुष्य ने ही उत्पन्न किया है। **Prospero** उस तूफान से शुभबोध जागृत होने से निकल पाया, पर क्या आज का मनुष्य स्वनिर्मित तूफान से निकल पायेगा ?

कालिदास और शेक्सपीयर ने कभी मनुष्य पर से अपना विश्वास नहीं खोया, क्योंकि दुर्गुणों की तरह सद्गुण भी मनुष्य में ही विकसित होते हैं। उनकी रचनाओं ने बावजूद मानव की दोष त्रुटि के, मानव के कल्याणकारी, लोकमंगलकारी विचारों और कार्यों को प्रकाशित किया है। उनकी प्रकृति दृष्टि में सचेत वाणी के साथ जिस कल्याणमयी दृष्टि की उद्घोषणा है, उसी की तर्ज पर आज के नये पर्यावरण चिन्तन के वातावरण में प्रकृति चिन्तन के पुनर्विवेचन करने की आवश्यकता है।

नूतन पर्यावरण चिन्तन के अन्तर्गत यह कहना बहुत जरूरी है कि अपने असंतुलित परिवेश में पृथ्वी अब पुनः 'सर्वे तु सुखिनः सन्तु', मन्त्र को दोहरा रही है।●

संपर्क : अध्यक्षा–अंग्रेजी विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास कथासार : तद्जन्य चिन्तन तरंगे

डॉ. कौशलेन्द्र पाण्डेय

उन्नीसवी शताब्दी के द्वितीय दशक के प्रारम्भ में विल्सन ने जिस महान् कृति का "दि क्लाउड मेसेन्जर" के नाम से अनुवाद किया था वह महाकवि कालिदास प्रणीत "मेघदूत" ही थी। अनन्तर जॉनसन, आडवरी, क्लॉर्क, ग्रिफिथ और चार्ल्स किंग के पाँच अन्य अनुवाद प्रकाशित हुए। फ्रेंच, जर्मन, इटालियन, स्वीडिश और डेनिश में भी मेघदूत के अनुवाद प्रकाशित हुए। पूर्वी और दक्षिणी भारतीय भाषाओं में सन् 1882 से 1955 की अवधि में मेघदूत के अनुवाद हुए। ये हिन्दी में भी हुए। भारतीय भाषाओं के साहित्य में रामायण और महाभारत के बाद संस्कृत रचनाधर्मियों में परिव्याप्ति और प्रभविष्णुता की दृष्टि से महाकवि कालिदास ही उनके साथ बैठे दिखते हैं। उन्होंने रघुवंश, कुमार संभव, ऋतु संहार, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोवर्शीयम्, मालविकाग्निमित्रम् और मेघदूत प्रभृति महान् ग्रन्थों का प्रणयन किया। विदुषी लेखिका सरला शर्मा (जो अब स्मृति शेष हैं) ने कालिदास की नाट्यकृतियों और काव्य ग्रन्थों का गंभीरता से मंथन–विमंथन किया, उनकी अंतर्वस्तु का सार संक्षेप में लिपिबद्ध किया–इसे "कालिदास कथासार" की संज्ञा देकर प्रकाशित भी कराया। यह दुष्कर कार्य तो था ही, लेखिका के अदम्य एकाग्रता तथा सावित्री–मनोवृत्ति का द्योतक भी है।

डिमाई आकार की एक सौ आठ पृष्ठीय कृति "कालिदास कथासार" अनेकानेक विशिष्टताओं का गुच्छ है। विश्वबन्द्य कवि–नाट्यशिल्पी की अप्रतिम ख्याति के अनुरूप ही इसका आवरण है। पत्नी वियोग से व्यथित अंजुरी में स्वर्णकमल लिए मानसरोवर के किनारे खड़ा यक्ष, आकाश मार्ग में गतिमान एक जलद खण्ड को निर्निमेष निहारता हुआ। इससे अधिक उपयुक्त, श्रेष्ठतर एवं सार्थक आवरण चित्र जनसामान्य की कल्पना की सामर्थ्य से बाहर ही कहा जायेगा।

"कालिदास कथासार" 1991 में प्रकाशित हुई। लेज़र कम्पोजिंग तथा ऑफसेट प्रक्रिया के अन्तर्गत नयनाभिराम इसका मुद्रण साम्प्रतिक उत्तमातिउत्तम कृतियों को भी बिदकाने में सक्षम है। मुद्रण सम्बन्धी अन्य विशिष्टता है इसकी त्रुटिशून्यता। साथ ही साथ रघुवंश, कुमार संभव, मेघदूत, ऋतु संहार, शाकुन्तलम्, विक्रमोवर्शीय व मालविकाग्निमित्रम् का सुषमासिक्त प्रस्तुतीकरण। लेखिका ने कालिदास के स्वदेश प्रेम को भारत के एक मानचित्र के माध्यम से भी सार्वजनीन किया है। इसमें उनके ग्रन्थों में निर्दिष्ट स्थलों नगरों, नदियों तथा पर्वतमालाओं का अंकन है। पुरोवाक् में उन्होंने कहा है कि अजन्ता की कृतियों की तरह ही कालिदास का वाङ्गमय तत्कालीन संस्कृति को सहज रूप में दर्शाता है। वह उनके व्यक्तित्व को भी उद्भाषित करता है। यही कि प्रसन्नचित सत्पुरुष थे वह, दुःखियों के प्रति संवेदनासिक्त भी। 'कालिदास कथासार' के प्रणयन–प्रकाशन का मात्र उद्देश्य रहा है कि सर्वसाधारण को उनकी कृतियों का सम्यक ज्ञान हो सके। सुविख्यात लेखनधर्मी पं. श्रीलाल शुक्ल के अभिमत के साथ–साथ कृति में अपने जीवनकाल में 'बृहस्पति' की मान्यता वाले अनेक भाषा–साहित्य–मर्मज्ञ डॉ. रमेशचन्द्र दुबे की लेखनी से निसृत संक्षिप्त आंकलन भी दृष्टव्य हैं। उनके विचार में कालिदास कथासार में केवल कहानियाँ ही नहीं वर्णित हैं, यह ग्रन्थकार कालिदास के जीवनादर्शों को भी संजोये हुए है। उनका नारी सुषमा के प्रति ही नहीं प्रकृति–लावण्य की निरुपम स्थितियों के प्रति उनकी दिव्य दृष्टि भी इस धारणा की अपवाद नहीं। 'रघुवंश' के अन्तर्गत दिलीप और सुदक्षिणा, उन्हें नन्दिनी द्वारा वर प्रदान, रघु का राज्याभिषेक, उनकी विजय यात्रायें, सम्राट् अज और इन्दुमती स्वयंवर एवं परिणय, उनके अनुवर्ती सम्राट् दशरथ, श्रवण कुमार की हत्या, श्रीराम का अवतरण, उनका वैदेही से विवाह, लंकापति वध, अंततः सीता के परित्याग एवं राम के स्वर्गारोहण सम्बन्धी वृत्तान्त सुवर्णित है।

किन्तु इस बिन्दु पर ही रघुवंश का समापन नहीं। श्रीरामचरित मानस जो आज प्रत्येक हिन्दू और मारीशस, गायाना, ट्रिनीडाड, इण्डोनेशिया के अवैदिक भारतीयों के भी घर–घर में प्राप्य है,

में लंका विजयोपरान्त, श्रीराम के अयोध्यापति बनने तक का ही वर्णन उपलब्ध है इसके प्रमुख कारणों में प्रथम है गोस्वामी जी का श्रीराम के प्रति प्रभु और जानकी के प्रति जगज्जननी का भाव। जो घटनाक्रम राज्यारोहण के बाद की अवधि से सम्बन्धित थे और वे लोक आस्था के लिए तिक्ति–स्वरूप थे, उनका कोई रामदास उल्लेख क्यों करता। कालिदास ने ऐसी किसी भावना से रघुवंश के बहाने रामचरित्र को लिपिबद्ध नहीं किया। अवश्य ही संस्कृत के अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को आधृत किया। इसी कारण रघुवंश के अन्तर्गत सीता परित्याग, राम के स्वर्गारोहण, नागकन्या कुमुदवती–कुश परिणय तथा अंततः अयोध्या के अन्तिम पुरुष सम्राट् अग्निवर्ण के पश्चात् उनकी गर्भवती रानी के राजकाज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

सँभालने तक का रोचक विवरण 'रघुवंश' में उपलब्ध है जिसका हिन्दी–गद्य रूपान्तर लेखिका सावित्री शर्मा ने किया है।

उचित स्थान है "कालिदास कथासार" के आधार पर पाठकों को यह बताने का कि अयोध्या की साम्राज्ञी अग्निवर्ण की गर्भवती पत्नी क्यों बनी? जरायु सुदर्शन ने अपने आत्मज अग्निवर्ण को राजा तो बना दिया (स्वयं नैमिषारण्य जाकर रहने लगे), किन्तु वह भोग विलास में राजकाज से अधिक रूचि रखता। वह सुन्दरियों के साथ ही अहर्निश रहते, सुरा और संगीत के नशे में नितान्त धुत्त। जनता को दर्शन देकर उसके सुख–दुःख सुनने–समझने तक का समय वह कभी नहीं निकालता। यदि कभी मंत्रियों के समझाने–बुझाने पर दर्शन दिया भी तो किसी के सामने न आकर अपने पाँव पलँग से लटका देता, तुष्ट–संतुष्ट हो जनता वापस हो लेती। अग्निवर्ण नर्तकियों के साथ मृदंग बजाकर संगत भी करते, उनके मुँह का पसीना भी स्वयं पोंछते। ऐसा करके वह स्वयं को इन्द्र और कुबेर की कोटि में होने का गौरव महसूस करते।

अग्निवर्ण की रानियाँ यदि कभी उन्हें नर्तकियों के सानिध्य के प्रति अंकुश लगातीं तो वह विरही बनकर प्राणप्रिय नर्तकियों के चित्र बनाने लगते। स्वप्न में भी वह अनपेक्षित आचरण शीलाओं से बातें करते। यदा–कदा वह स्त्रियों के पांवों में महावर भी लगाते। इस प्रकार वह कामवासना की लपेट में निरन्तर आते रहे। कामक्रीड़ा के निमित्त वह ऋतुओं के अनुरूप वस्त्र पहनते। इतने व्यसनी और राजकाज में निष्क्रिय होने के बावजूद कभी किसी राजा ने अयोध्या पर आक्रमण नहीं किया। अस्लिपतन अग्निकेश को क्षय रोग हो गया था, अंततः उनकी मृत्यु भी हो गई। राज सिंहासन रिक्त न रहे, इसलिए अनेक रानियों में से जो गर्भवती थी उसी को सिंहासनासीन कराया गया, इस प्रत्याशा में कि उसे पुत्र होगा। यूँ ही रघुवंश में कितनी ही कथायें श्रृंखलाबद्ध है।

सरला जी ने "कुमार संभव" का इतिवृत्तात्मक वर्णन उमा का जन्म, ब्रह्मा से भेंट, मदन दहन, रति विलाप, तप का सुफल, पार्वती की मंगनी, विवाह, शिव–पार्वती की कामक्रीड़ा, कैलाश गमन, कार्तिकेय जन्म, उनकी बाल लीलायें, सुर सेना का मुखिया होना और तारक–वध संज्ञायित कुल सत्रह उपशीर्षकों में लिपिबद्ध किया है। श्रीरामचरित मानस में पार्वती–शिव परिणय की कथा तो विस्तार में दी गई लेकिन कार्तिकेय तथा उनके द्वारा तारक वध की बात संकेत रूप में आई है। शिवपुत्र की बाललीलायें भी मानस में नहीं। अतएव पृष्ठ 57 पर उपलब्ध उनकी एक प्रारम्भिक घटना का उल्लेख समीचीन होगा।

गंगा जी एक सामान्य स्त्री का वेष बनाकर छः मुख वाले कार्तिकेय को स्तनपान कराने लगीं। इस दौरान बालक बड़े वेग से बढ़ने लगा। उसे यूँ तथा परम तेजस्वी देखकर गंगा जी तथा कृत्तिकायें अपना पुत्र बनाने हेतु परस्पर झगड़ने लगीं। इसी बीच शिव और पार्वती आये। छः दिन के छः मुखी बालक को देखकर उनमें स्वाभाविक रूप से पुत्र प्रेम उत्पन्न हुआ। तभी शिव जी ने बताया कि वह उनके अचूक वीर्य से उत्पन्न पार्वती पुत्र ही है, यह परमवीर है तथा देवताओं का हित साधक भी। मंगल कार्यों में सृष्टि की संध्या तक इसकी कीर्ति का गायन होगा। शिव जी ने इस बालक के जन्म की पूरी कथा पार्वती को सुनाई। यह भी बताया कि यह कृत्तिकाओं के गर्भ से जन्मा है जिन्होंने इसे लोक प्रपंच के भय से सरपत के वन में डाल दिया था। अब तुरन्त अपने सुपुत्र को ग्रहण करो। तब समस्त प्रमुख देवताओं तथा गंगा एवं कृत्तिकाओं की उपस्थिति में पार्वती ने षट्मुख को ग्रहण कर लिया और प्रसन्न चित्त होकर स्तनपान कराने लगीं।

मेघदूत में समाहित प्रकरणों को लेखिका सरला शर्मा ने गंभीरता से आत्मसात किया तथा वैश्विक ख्याति के इस महान ग्रन्थ की कथावस्तु को (1) पूर्व मेघ, (2) उत्तर मेघ, शीर्षक देकर उप प्रकरणों में प्रस्तुत किया है। एक स्थल पर यक्ष जब मेघ को अपना सन्देश अपनी प्रियतमा को सुनाने के लिए कहता है, लेखिका का संवेदनातिरेक ध्यातव्य है तथा यही संवेदना संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद को सुस्पष्टता एवं रोचकता प्रदान करती है। इसके पारायण पर पाठक को लगेगा ही नहीं कि यह अभिव्यक्ति पहले संस्कृत भाषा में थी। देखिये यक्ष द्वारा दिये जा रहे सन्देश को–

"हे प्यारी ! मैं यहाँ बैठा हुआ पियंगु की लता में तुम्हारा शरीर, हरिण की आँखों में

पुरोवाक् में उन्होंने कहा है कि अजन्ता की कृतियों की तरह ही कालिदास का वाङ्गमय तत्कालीन संस्कृति को सहज रूप में दर्शाता है। वह उनके व्यक्तित्व को भी उद्भाषित करता है। यही कि प्रसन्नचित सत्पुरुष थे वह, दुखियों के प्रति संवेदनासिक्त भी। 'कालिदास कथासार' के प्रणयन–प्रकाशन का मात्र उद्देश्य रहा है कि सर्व साधारण को उनकी कृतियों का सम्यक् ज्ञान हो सके। सुविख्यात लेखनधर्मी पं. श्रीलाल शुक्ल के अभिमत के साथ–साथ कृति में अपने जीवनकाल में 'बृहस्पति' की मान्यता वाले अनेक भाषा–साहित्य–मर्मज्ञ डॉ. रमेशचन्द्र दुबे की लेखनी से निसृत संक्षिप्त आंकलन भी दृष्टव्य हैं। उनके विचार में कालिदास कथासार में केवल कहानियाँ ही नहीं वर्णित हैं, यह ग्रन्थकार कालिदास के जीवनादर्शों को भी संजोये हुए है। उनका नारी सुषमा के प्रति ही नहीं प्रकृति–लावण्य की निरुपम स्थितियों के प्रति उनकी दिव्य दृष्टि भी इस धारणा की अपवाद नहीं। 'रघुवंश' के अन्तर्गत दिलीप और सुदक्षिणा, उन्हें नन्दिनी द्वारा वर प्रदान, रघु का राज्याभिषेक, उनकी विजय यात्रायें, सम्राट् अज और इन्दुमती स्वयंवर एवं परिणय, उनके अनुवर्ती सम्राट् दशरथ, श्रवण कुमार की हत्या, श्रीराम का अवतरण, उनका वैदेही से विवाह, लंकापति वध, अंततः सीता के परित्याग एवं राम के स्वर्गारोहण सम्बन्धी वृत्तान्त सुवर्णित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारी आँखें, चन्द्रमा में तुम्हारा मुँह, मोरपंखों में तुम्हारे बाल और नदी की लहरों में तुम्हारी चलायमान भौंहें देखता हूँ। जब मैं पत्थर की शिला पर गेरू से तुम्हारी रूठी हुई छवि और स्वयं तुम्हें मनाने के लिए तुम्हारे पैरों में पड़ा चित्र बनाता हूँ तो इतना अधीर हो जाता हूँ मैं कि भली भाँति उन्हें देख भी नहीं पाता। देवी ! एक तो मैं तुम्हारे वियोग में दुःखी हूँ, दूसरे यह कामदेव मुझे और भी दुःखी करता है। इस वर्षा ऋतु में मैं तुम्हारे बिना कैसे दिन काटूँ, वन देवता भी मेरी दयनीय दशा पर अश्रुपात करते हैं। हे चंचल नेत्रों वाली! मैं यही मनाता हूँ कि दिन और रातें छोटे हो जायें। हे कल्याणी ! मैं अपने मन को धैर्य देता हूँ और तुम भी धीरज रखना, दुःख और सुख की नियति है आते–जाते रहना। अगली देव उठनी एकादशी को मेरा शाप समाप्त हो जायगा, फिर शरद ऋतु में हम अपनी सारी इच्छायें पूरी करेंगे। हे सांवली आँखों वाली ! इन सभी बातों से तुम समझ लेना कि मैं सकुशल हूँ। प्यारी ! तुम लोगों के इस बहकावे में मत आ जाना कि विरह में प्रेम कम हो जाता है; विरह में प्रेम और भी बढ़ जाता है।

हे मेघ ! देखों प्रथम वियोग से दुःखी अपनी भाभी को धैर्य बँधाकर और उनसे कुशल समाचार प्राप्त करके तुम शीघ्र ही मेरे पास कैलाश पर्वत से लौट आना और यहाँ आकर मेरे प्राणों की रक्षा करना।"

ऋतु संहार के क्रम में ही सरला जी ने ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर तथा बसन्त वर्णन "कालिदास कथासार" में भी किया है। भाषा की सहज–सरलता यानि ग्राह्यता से ही स्पष्ट है कि सरला जी को संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है, भले ही उन्होंने मध्यमा और सरस्वती तक की ही शैक्षिक यात्रा की थी। उनकी देव भाषा की समझ बसन्त ऋतु के निम्नांश से परखी जा सकती है।

"इस समय वसन्त कोकिल के गीतों से मानों सुन्दरियों के स्वर की हँसी उड़ा रहा है, कुन्द के फूलों से उनके दाँतों का परिहास कर रहा है। आसव सा महकता युवतियों का मुख, उनकी लोहित आँखे, फूलों से सुसज्जित मनमोहक जूड़े जनमानस में कामदेव को जगा रहे हैं। मन को लुभाने वाली संध्या, शीतल–स्वच्छ चाँदनी, कोकिला की कूक, सुगन्धित युक्त

पवन, भौंरों की गुंजार और रात्रि में आसव का सेवन–ये सभी कामदेव को जगाये रखने वाले ही साधन हैं।"

'मालविकाग्निमित्र' महारानी धारिणी और विदिशा नरेश अग्निमित्र तथा मालवाधीश माधव सेन की भगिनी मालविका को केन्द्र बिन्दु बनाकर रची गई कालिदास की कृति है। अग्निमित्र मालविका के सौन्दर्य के लोभी थे, धारिणी अपनी सीमाओं में रहकर अग्निमित्र पर मालविका के प्रति अंकुश लगाने के प्रयास करती है। फिर भी विदिशा नरेश और मालविका परिणय सूत्र में बँध जाते हैं। मालविकाग्निमित्र की कथावस्तु कालिदास की भाषा में संस्कृतज्ञ जनों को भले ही अच्छी लगती हो, किन्तु सर्वग्राह्य भाषा हिन्दी में उसे पढ़कर अग्निमित्र के प्रति सभी पाठक घिन करेंगे। अपनी रानी द्वारा प्रताड़ित भी होता है वह उसके अपशब्द भी सुनता है, फिर भी रानी (पत्नी) के पांवों में गिरकर क्षमा–प्रार्थना भी करता है, केवल इसलिये कि वह मालविका से पूर्ववत सानिध्य बना रहे। यह कथा पाठकों को कोई सत्सन्देश तो नहीं देती किन्तु विवशता सरला जी की ! कालिदास की कृति होने के कारण उसे "कालिदास कथासार" में सम्मिलित ही करना था। 'विक्रमोर्वशी' के हिन्दी में संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में मूल कृति के कोई तथ्य नहीं छूटे। पुरु को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसकी अनुकरणीय विशिष्टतायें है कि वह स्वाभिमानी है, अपनी प्रजा का कष्ट दूर करके ही विश्राम करता है, उर्वशी की तिलोत्तमता पर आसक्त होने के बावजूद वह अपने प्रति इस महासुन्दरी की सुखद प्रतिक्रिया की अपेक्षा करता है। इस दुष्यन्त और शकुन्तला के संपूर्ण प्रकरण से सामान्य भारतीय सुपरिचित ही है। कालिदास की इस कृति का संक्षिप्तीकरण भी सरल–सुग्राह्य भाषा में तथा किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य को अनदेखा किए बिना इतना प्रवाहपूर्ण बन पड़ा है कि सारी कथा की सौम्यता सहज ही पाठक के मानस की सारी पर्तों में व्याप्त हो जाती है।

कालिदास वाङ्गमय के विशेषज्ञों ने विगत कुछ वर्षों से एक विवाद चला रक्खा है जो कालिदास के जन्मस्थान विषयक है। यह विवाद विशेषतया 'मेघदूत' कृति पर आधारित है। यह विवाद वैसा ही है जैसा संत तुलसीदास की जन्मस्थली के बारें में है। "मुण्डे–मुण्डे मति र्भिन्ना", कालिदास की जन्मस्थली विषयक तो और भी अधिक है मत वैभिन्य। मत वैभिन्य विद्वानों में परस्पर है ही, स्व. विद्या निवास मिश्र प्रभृति विद्वानों ने एक ही बिन्दु पर अलग–अलग बातें भी कहीं है जो भी एक बहुत बड़ा कारण है। तुलसी की जन्मस्थली के लिए उनके साहित्य के आधार पर ही उन्होंने निर्णय दिया था। यही आजकल भी सर्वमान्य है। इसीलिए कोई विद्वान कालिदास को काशी, कोई बंगाली, कोई विदर्भवासी तथा कोई इनसे भी भिन्न जैसे काश्मीरी, जालौरी या विदिशावासी। उनके तर्कों के अनुसार विद्योत्तमा काशी नरेश की पुत्री थी तो कालिदास काशी के ही थे। बंगला विद्वानों के अनुसार कालिदास काली भक्त थे ही, उनके नाम के अंत में दास पड़ता है, इसलिए वह बंगाली थे। ये कहते हैं कि मेघदूत में "आषाढ़स्य प्रथम दिवसे" के स्थान पर आषाढ़स्य प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदितिर्थ भी लिख सकते थे, तिथि निर्देश के स्थान पर दिन संख्या या निर्देश बंगाली पद्धति से हुआ है, इसलिए वह बंगाल के ही थे। तब तो यह गहन शोध का विषय है कि वह सम्राट् विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी कैसे पहुँचे !

काव्य में वैदर्भी रीति का अवलम्बन लिये जाने के कारण तथा ग्रन्थ "माल विकाग्निमित्रम्" की नायिका राजकुमारी विदर्भ की ही होने के कारण तथा जिस उत्कृष्ट मनोयोग से उन्होंने इन्दुमती का परिणय तथा स्वयंवर लिखा है उसके आधार पर डॉ. ग्रियर्सन उन्हें विदर्भी ही मानते हैं। उल्लेखनीय है उन विद्वानों का मत जो इन्हें गढ़वाली उत्पत्ति का मानते हैं। उनका तर्क है कि कालीदास वाङ्गमय में हिमालयी प्रकृति का विशेष वर्णन है, जिसकी मातृभूमि हिमालयांचल हो उसे ही इतना लगाव हो सकता है हिमालय क्षेत्र के प्रति। चूँकि उनके ग्रन्थों में हिमालय के एक क्षेत्र विशेष (गढ़वाल) ही ऐसा है जिसका उन्होंने आँखों देखा ममत्वपूर्ण वर्णन किया है। वह यह भी कहते है कि किन्हीं परिस्थितियों वश भले ही उनका कर्मक्षेत्र उज्जैन रहा हो, किन्तु वह उत्पन्न हुए वर्तमान गढ़वाल अंचल में ही।

संस्कृत भाषा की अज्ञानतावश मैंने "कालिदास कथासार" का प्रत्येक पृष्ठ पलटा। प्रत्येक ग्रन्थ में जिन–जिन स्थलों–स्थानों का महाकवि ने नामोल्लेख किया है, वह इस प्रकार है–

रघुवंश

अयोध्या, मगध, वशिष्ठ आश्रम, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, हिमालय की गुफा, समुद्र तटीय बंगाल, गंगा सागर, उड़ीसा, कलिंग, कावेरी नदी, मलय, मुरला नदी, सिन्धु नदी, घोड़े नदी, कम्बोज या काबुल, हिमालय पर्वत, हिमालय पर देवदारु वृक्ष, कैलाश पर्वत, लोहित्य नदी, पारजोतिषपुर (असम), विदर्भ, पाटलिपुत्र, अवन्ति, नर्मदा, माहिष्मती (नर्मदा तटीय नगरी), जमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन पर्वत, महेन्द्र पर्वत, विंध्याचल पर्वत, कुंडिनपुर, कौशल, मगध, सरयू, टौंस नदी, आज का आजमगढ़ क्षेत्र, तमसा नदी, वामन आश्रम, मिथिला, किष्किंधा, पंचाप्सर सरोवर, मानसरोवर, मधूपहन नगर, मथुरा, विदिशा, त्रिकूट पर्वत, अलकापुरी, नैमिषारण्य।

कुमार संभव

हिमालय पहाड़, मेरु पर्वत, मन्दाकिनी, तपोवन, गंदमादन पर्वत, कैलाश।

मेघदूत

अलकापुरी, मानसरोवर, उज्जयिनी, वत्स, गन्धवती नदी, देवगिरि पर्वत, चर्मण्वती या चंबल नदी, कनखल, ब्रह्मावर्त देश, कैलाश पर्वत की गोद में आबाद अलकापुरी।

अभिज्ञान शाकुन्तल/ विक्रमोर्वशी/माल विकाग्निमित्र

मालिनी नदी, कण्व आश्रम, इन्द्रलोक, काशी, विदिशः, मालवा, विदर्भ।

प्रबुद्ध पाठक ही कृपया निर्णय लें– अनावश्यक रूप से विद्वानों ने गाड़ रक्खे हैं अपने विचारों के झंडे या नहीं। कालिदास जब माँ काली के भक्त थे, उन्हीं के आशीर्वाद से विलक्षणतम प्रतिभा के धनी तो कैसे यह सोचा भी जायगा कि वह कल्पनाधारित वर्णन को जीवन्त नहीं बना सकते थे। जहाँ स्वयं रचनाकार अपनी कृतियों में स्वयं के जन्मस्थली के बिन्दु पर नितान्त मौन हो उस स्थिति में अनुमानाधृत सारी मान्यतायें अनावश्यक भी कही जाएगी और असार्थक भी। अनेक स्थितियों–परिस्थितियों की कल्पना तो कालिदास के जीवनकाल में उपलब्ध साहित्य तथा बाद के लेखन के आधार पर की जा सकती है। ऐसे में कालिदास के लिये यही मान लेना उचित होगा कि वह भारतीय अस्मिता का अपने नाटकों तथा काव्य में उत्कृष्टतम चित्रण करने वाले अपने युग के अकेले हस्ताक्षर थे। उचित स्थान होगा "कालिदास कथासार" के प्रति भी यह प्रतिक्रिया व्यक्त करना कि विदुषी सावित्री जी को अपने पुरोवाक् में अपने इष्ट सरस्वती पुत्र कालिदास का यथासाध्य जीवनवृत्त देना ही चाहिये था।

"कालिदास कथासार" की कतिपय क्षुद्र न्यूनताओं को अधिक महत्व न दिया जाय तो अच्छा ही होगा क्योंकि संस्कृत का ज्ञान न रखने वाले पाठकों के संज्ञान में इससे अन्य अनेक बातें आती हैं। कालिदास को सामान्य जन–जीवन में घटित होने वाले शुभाशुभ संकेतों का सम्यक ज्ञान था। विभिन्न कृतियों में जहाँ भी अभिव्यक्ति को सहारा प्रदान कराने की आवश्यकता दृष्टिगत हुई, उन्होंने अपने इस लौकिक मान्यताधारित ज्ञान का प्रयोग किया। इस बिन्दु पर कतिपय उदाहरण सर्वथा दृष्टव्य हैं। (देखिये पृष्ठ चौदह और पन्द्रह/रघुवंश) सुनन्दा, नामक सखी स्वयंवर के अवसर पर सिंहासनी में बैठे हुए मगध, अंग, अवन्ति, मथुरा, कलिंग, नागपुरी के नरेशों के पास बारी–बारी अपनी सजी–धजी राजकन्या इन्दुमती को ले जाती, उनका संक्षिप्त यश भी कहती तो इन्दुमती उन नरेश को प्रणाम करके आगे बढ़ लेती। इस बात से अज बड़ा परेशान था कि कहीं उसे भी राजकुमारी अस्वीकार न कर दे। किन्तु "राजकुमारी के पास आते ही उसकी दाहिनी भुजा फड़क उठी। इससे उसे कुछ आशा जगी" फलतः "जब इन्दुमती ने अज को आँखों में देखा और वर लिया।" एक अन्य स्थल भी देखिये। गर्भवती शकुन गुरु शिष्यों के साथ दुष्यन्त के पास जाने लगती है–"वह आश्रम से बिछुड़ते हुए रो रही थी और कण्व उसे धीरज दे रहे थे। तभी शकुन्तला ने देखा कि चकवी–चकवे को न देखकर रूदन कर रही है। अतः उसे शक हो गया कि शायद उसके कार्य की पूर्ति न हो।" इनके अतिरिक्त भी कालिदास वाङ्गमय में लोक मान्यताओं का सटीक प्रयोग हुआ है।

"कालिदास कथासार" में किस्सागोई ही नहीं है। सभी कथाओं में तथ्यपरकता है और प्रामाणिकता। जहाँ–जहाँ समीचीन समझा, लेखिका ने प्रत्येक कृति से श्लोक भी अंकित किये है। दृष्टव्य हैं कतिपय उदाहरण–

सप्तर्षि हिमाचल से कहते है–उमा वधू हो, आप हो कन्यादान करने वाले। हम हैं विवाह के लिए कहने वाले और शंभु जी वर हो। बताइये आपके कुल के लिए इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है ?

उमावधूर्भवान्दाता याचितार इमे वयम्।
वरः शम्भूरत्नह्येश त्वत्कुलोद्भूतये विधिः।।

–कुमार संभव 6/82

कण्व ऋषि शकुन्तला–दुष्यन्त के गांधर्व विवाह पर हर्ष व्यक्त करते हुए आदेश देते हैं कि वह पति के घर जाये। तभी आकाशवाणी भी होती है–

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रहमन्नग्निगर्भा शमीमिव।।

निष्कर्षतः "कालीदास कथासार" में तथ्य परकता है, समग्रता है, भाषा एवं अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता है तथा अपनी बात कहने में स्पष्टानूभूति भी होती है जैसे विदुषी लेखिका सरला जी ने कालिदास के मन मस्तिष्क में प्रवेश कर लिया हो। ●

संपर्क : 130, मारूतिपुरम्, लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि कालिदास की प्रत्यभिज्ञा 'उद्यमोभैरवः'

डॉ. गौतम चटर्जी

मेरी इस विनम्र प्रस्तुति के केन्द्र में यह उल्लेख तो है ही कि महाकवि कालिदास के साहित्य–चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में प्रत्यभिज्ञा दर्शन आधार रूप में है, भारतीय वाङ्मय के उस सुनिश्चित सुदीर्घ आकाश की ओर ध्यान दिलाना भी अभीष्ट है, जहाँ प्रत्यभिज्ञा शब्द का तत्वार्थ और अभिप्रेत अर्थ आरम्भ से है, जहाँ से महाकवि कालिदास की गहरी चेतना ने संस्कार ग्रहण किया है। वस्तुत इस धरा पर संजोयी विद्या की सम्पदा को आकाश की ओर से देखने का सौन्दर्य ही यह है कि कुछ भी भेद–दृष्टि से नहीं दिखता, न वैदिक व आगमिक दर्शन का भेद न भारतीय व ग्रीक नाट्य का। सिर्फ तभी दिखता है कि, इस जगत को देना तो दूर, इसे हम कितना कम देख, जान, समझ और ले पाये हैं। इसीलिए हम देखने के उस तल से चलते हैं जो अभेद है, अनुत्तर की तरह।

1858 में यदि श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशय ने माधवाचार्य के 'सर्वदर्शनसंग्रह' को सम्पादित कर पहली बार इसे बिब्लियोथेका इण्डिका में प्रकाशित न कराया होता तो हम इस तथ्य से अनभिज्ञ रहते, कि दर्शन के सोलह अनुशासनों में तीन आगमिक भी हैं जिनमें एक है प्रत्यभिज्ञा दर्शन। नवीं शती के उत्तरार्ध में पहली बार 'शिवदृष्टि' ग्रंथ के आधार पर प्रत्यभिज्ञा दर्शन को स्थापित किया था सोमानन्द ने जिसे बाद में श्री उत्पल देव और श्री अभिनव गुप्त ने 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' एवं इसकी टीकाओं के माध्यम से विस्तार दिया। बीसवीं शती में इस दर्शन के विकास और प्राप्त साहित्य के आधार पर 1926 में प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला ने एक पुस्तक लिखी 'दी बर्थप्लेस ऑफ कालिदास', जिसमें पहली बार उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि महाकवि की रचना 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' प्रत्यभिज्ञा दर्शन को रूपायित करती कृति है। इसे अभी तक के समस्त विद्वानों ने यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि कालिदास के समय पाँचवीं शती में प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अस्तित्व ही नहीं था। न यह शब्द था। प्रो. लक्ष्मीधर के पास भी तर्क अपर्याप्त थे। उनके संवाद सीमित व भेद दृष्टि से युक्त रहे होंगे, ऐसा लगता है क्योंकि प्रत्यभिज्ञा शब्द तो कालिदास के समय में था ही, अर्थ व अभिप्राय वैदिक समय से है, नहीं तो 'रघुवंशम्' के बारहवें सर्ग का यह 64वाँ श्लोक वे कैसे लिखते कि 'प्रत्यभिज्ञानरत्नं च रामायादर्शयकृती'। इसी प्रकार प्रायः कृतियों के आरम्भ में महेश्वर का स्मरण, शक्ति को सम्बोधित श्लोकों में अनजाने ही 81 अर्धमात्राओं का होना, अर्थात् शिवात्मिका शक्ति को एकाशीतिपदा देवी के रूप में देखना, आगमिक शब्दावलियों बिन्दु, बीज आदि का प्रयोग सहज दिखता है।

अन्य विमर्श बिन्दु–

1. 'वाक्यपदीय' के ब्रह्मकाण्ड में भर्तृहरि ने इसी अभिप्राय से 'प्रत्यवमर्शिनी' शब्द का प्रयोग किया है, जो स्फोट के लिए अनिवार्य है। 'अभिज्ञानेन' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में बहुतायत है।
2. बौद्ध दर्शन में, (अभिज्ञा और) पच्चभिज्ञा शब्द पालि में प्रत्यभिज्ञा शब्द के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। 'माण्डक्य कारिका' में आचार्य गौड़पाद ने इस शब्द का प्रयोग किया है।
3. इसी अर्थ में संस्कृत व ग्रीक नाटकों में पहचान के रूपक जगह–जगह है।
4. प्लेटो का 'थियोरी ऑफ रीकलेक्शन' Meno और Phaedo के संवाद में इसी दर्शन को कहता है, और
5. ऐसे नाटकों के मंचन में 'अभिनेता की प्रत्यभिज्ञा' भी आवश्यक है।

भारतीय वाङ्मय का कालजयी सौन्दर्य यह है कि प्रत्येक काल और दर्शन के वैविध्य के बावजूद इन दर्शनों के अभीष्ट, आधार तत्व और इनके अभिप्रेत अर्थो में एकान्विति है। इस सौन्दर्य की छटा ही कवि की कान्ति होती है। जैसे एक व्यक्ति के मन में प्राक् मन से लेकर उस तक के समस्त मन संस्कार रूप में निहित और अस्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं, उसी प्रकार एक कवि की चेतना में आरम्भ से उस तक विकसित समस्त दर्शनों का समवाय होता है। उसके अपने मन की निर्मिति और रूचिबोध के अनुसार कोई एक दर्शन उसका दर्शन होता है जिसके माध्यम से वह साधना करता है ताकि आत्म साक्षात्कार का उसे आनन्द मिल सके।

महाकवि कालिदास के रचना संसार में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सभी प्रमुख तत्व संस्कार की तरह आद्यन्त प्रकट–अप्रकट बिखरे दिखाई देते हैं। महाकवि के स्वाभाविक रचनाकर्म और चरित्रों के अनायास उच्चार में प्रत्यभिज्ञा–अर्थभाव की व्यापकता सहज ही प्रत्यक्ष होती है। उनके काव्य और नाटकों में, अर्थात् उनकी संपूर्ण रचनामिति में प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रमुखतया से प्रकट होना उनके मनोनिर्माण में इस साधना और तपश्चर्या के होने की निस्सन्देह अभिव्यक्ति है। महाकवि की काव्य भाषा या दृश्य काव्य भाषा सन्ध्या भाषा नहीं है, न सन्ध्या भाषा प्रत्यभिज्ञा दर्शन की कोई अनिवार्य कूट भाषा है किन्तु प्रत्यभिज्ञा के जिस मूल अर्थ में हम यहाँ कालिदासीय चरित्र के संवादों को देखने जा रहे, (क्योंकि दृश्यकाव्य का आरम्भ संवादों से ही हुआ, जैसा कि हम जानते हैं कि ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में उल्लिखित उर्वशी और पुरुरवा के संवादों के आधार पर ही महाकवि ने इस प्रसंग को अद्वितीय नाट्यकृति का रूप दिया), प्रकाश में प्रत्यभिज्ञा शैली के बहुरूप,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भाषा की सन्ध्या से बाहर आकर प्रकाश का विमर्श बनते हैं। एकाएक उद्घाटित होने के इस सौन्दर्य को श्री अभिनव गुप्त ने विद्युल्लेखा रूपक से स्पष्ट किया है। अपने प्रायः ग्रंथों में शक्ति को प्रणाम करते हुए उन्होंने इसी रूपक का प्रयोग किया है–

नौमि देवीं शरीरस्थां नृत्यतो भैरवाकृते
प्रावृण्मेघघनव्योमविद्युल्लेखाविलासिनीम्।

(तन्त्रालोक, 1/3)

महाकवि के लिए भी यह विद्युल्लेखा, शक्ति है, जो नर्तनशील या नृत्यरत भैरव के शरीर में स्थित है, यह शक्ति जिस बादल में है, जिस व्योम और वितान में है वही विपत्ति, विरह और वियोग में राजा पुरुरवा का छत्र हो सकता है–

विद्युल्लेखाकनकरुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं...

(विक्रमोर्वशीयम्, 4/13)

महाकवि के उर्वर रचना प्रदेश में प्रत्यभिज्ञा महज भूलने और किसी अंगूठी या मणि के काव्य रूपक के माध्यम से याद आने तक सीमित न रहकर गहन तहों में विद्यमान अपने अर्थबोध को रूपायित करता है। आचार्य सोमानन्द नाथ और आचार्य उत्पलदेव के बाद श्री अभिनव गुप्त ने सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से प्रत्यभिज्ञा शब्द के तत्वार्थ को स्पष्ट किया है, कि जिस महेश्वर (शिव व सदाशिव से ऊपर परमेश्वर या महेश्वर या अनुत्तर) को हम पहले से जानते हैं और भूले हुए हैं, उसके अभिमुख होना ही प्रत्यभिज्ञा है–**'तस्य महेश्वरस्य प्रत्यभिज्ञा प्रतीपम् आत्माभिमुखेन ज्ञानम् प्रकाशः प्रत्यभिज्ञा।'** हम उसे ही पहचान सकते हैं जिसे हम पहले से जानते हों। यहाँ महेश्वर, प्रकाश और ज्ञान के पदों में ही हम सम्प्रति प्रत्यभिज्ञा दर्शन को केन्द्रित कर रहे हैं क्योंकि स्पष्ट है कि यह प्लेटो के रीकलेक्शन और फेडरस की कथा से कहीं अधिक शून्यचित्त–सम्बोधित उद्यम है। शिवसूत्र है–उद्यमो भैरवः (भैरव का उन्मज्जनरूप/ शाम्भोपाय)। अर्थात् Sudden emergence or flash of Light जैसे विद्युल्लेखा, जब यह भीतर कौंधती है, मनोमस्तिष्क में, हृदय में, अनाहत चक्र और सहस्रार के बीचोबीच, स्मृति के गहन तलों से निकल कर, ज्ञान का स्फोट, चैतन्यमात्मा और हम पहचानते हैं, री–कॉग्नाइज करते हैं, भूली हुई शक्ति याद आ जाती है और उस प्रकाश को देखते ही कह उठते हैं–अरे ! जैसे मणि का स्पर्श करते ही पुरुरवा कह उठते हैं– अरे संगमनीय मणि !

हंहो संगमनीय !

(विक्रमोर्वशीयम्, 4/66)

मानो प्राप्त चेतना में यह ऐसी कौंध हो कि प्रियजन का स्मरण हो जाय। श्याल कहता है–

तस्स दंसणेण भद्दिणो अभिमदो जणो सुमराविदो।

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6)

प्रतिभा का प्रकाश है तो उस प्रकाश का उन्मेष भी है। यही प्रकाश कौंधता है, स्फोट, अभिज्ञा या पच्चभिज्ञा होती है, उद्यम होता है।[1]

योगियों ने सन्ध्याभाषा की आवश्यकता ही इसलिए मानी थी कि शब्द के स्फोट में प्रकाश का उन्मेष हो, चित्त की चिति के प्रकाश का दर्शन हो, हृदय में भैरव का, महेश्वर का, परमेश्वर का प्राकट्य या उद्यम हो। सार्धत्रिशतिकालोत्तरागम् में एक श्लोक है–

ऊर्ध्वशून्यमधः शून्यं–शून्यं देहान्तरस्थितम्
त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यते स ध्रुवं गुह।

जैसे Quadratic Polynomial में Zero या शून्य कभी भी शून्य के रूप में अपने को व्यक्त नहीं करता, अन्य संख्याओं की शक्ति में प्रकट होता है, उसी प्रकार पराशक्ति या संविदशक्ति या परमेश्वर या अनुत्तर कभी भी स्वयं को अरूप में प्रकट नहीं करता, वह शक्ति के रूप में दृश्य होता है, ज्योति या विद्युल्लेखा के रूप में, जैसे पुरोहित राजा को उस ज्योति के वर्णन में सूचित करता है, आश्चर्य से, कि कण्व के शिष्यों के चले जाने पर वह ऋषि कन्या जैसे ही अपने भाग्य को कोसती हुई बांहें फैलाकर रोने लगी, वैसे ही स्त्री सरीखी एक ज्योति आकाश से उतरी और उसे अपनी गोद में लेकर अप्सरा तीर्थ की ओर चली गयी–

स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/30)

यह आकस्मिक नहीं है कि जहाँ भी शक्ति का वर्णन है वहाँ अर्धमात्राओं की कुल संख्या इक्यासी है। स्पष्ट है, आगम में शिवात्मिका शक्ति को इक्यासी अर्धमात्राओं वाली देवी कहा गया है, एकाशीतिपदा देवी,–श्री अभिनव गुप्त कहते हैं–

एकाशीतिपदा देवी शक्तिः प्रोक्ता शिवात्मिका
श्रीमातंगे तथा धर्मसंधातात्मा शिवो यतः।

(तन्त्रालोक, 6/227)

श्री अभिनव गुप्त उल्लेख करते हैं कि मतंग तन्त्र (तद्धित के अण् प्रत्यय से 'मातंगतन्त्र') में देवी शिवात्मिका शक्ति इक्यासी पदों वाली कही गयी है। पद यानी परामर्श–जब हम 'ओम्' बोलते हैं तो तीन परामर्श पूरा होता है। 'मातंगतन्त्र' में ऋषि मतंग कहते हैं–

एकाशीतिपदा देवी या सा शक्तिः शिवात्मिका
शान्तौविनिर्गता पूर्व स्थानं तस्यास्तदात्मकम्

(मतंगपारमेश्वरागम्, विद्यापाद, 7/31)

मतंग तन्त्र को लेकर भी विद्वानों में विवाद है, ठीक से चर्चा न होने के कारण। पारमेश्वरागम्, आगम के 28 ग्रंथों में से एक है जिसका भाष्य मतंग मुनि ने किया है, मतंगपारमेश्वरागम्–विद्यापाद, क्रियापाद, योगपाद व चर्यापाद। श्रीरामकण्ठ ने इसकी टीका की है। जंगमबाड़ी मठ से प्रकाशित 'पारमेश्वरागम्' में सिर्फ वे ही श्लोक हैं जो लिंगायत या वीरशैव सम्प्रदाय दर्शन के अनुरूप है। तंत्रालोक में श्री अभिनव गुप्त ने मतंगपारमेश्वरागम् को ही मतंग तन्त्र कहा है। संगीत ग्रंथ 'वृहद्देशी' की रचना आगम आधार पर है। इसलिए आरम्भिक अप्राप्त पंक्तियों के बारे में पाठ विमर्श में यह लिखा जाना चाहिए जो शून्य, नाद, बिन्दु, मात्रा व

1. किसी समय हमारे यहाँ शिवसूत्रों का प्रकाशित अनुवाद व इनकी व्याख्या शुद्ध नहीं थी। इन अशुद्धियों को देखते हुए म.म. गोपीनाथ कविराज जी ने ठाकुर जयदेव सिंह को इनका अनुवाद करने को कहा। उन्होंने किया। 'उद्यमो भैरवः' श्लोक में पहले उद्यम का अर्थ exertion से लिया गया था जिसे शुद्ध कर उन्होंने बताया, यह अनुत्तर की कौंध है, Sudden flash of Light. उनके बाद के अनुवाद इन्हीं अशुद्धियों को दोहराते हैं। Mark Dyzchavsky की किताब The Aphorism of Shiva देखने को मिली, इसके फिर उद्यम का अर्थ exertion से लिया गया है। हमें ऐसी असावधानियों, जो भिन्न वाङ्मयभावचित्त के कारण है, की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातृकाओं के बारे में आगम, विशेषकर प्रत्यभिज्ञा दर्शन कहता है।

उल्लेखनीय है कि आठवीं शती में मतंग मुनि प्रणीत दो ग्रंथ 'मातंगपारमेश्वरागम्' और 'वृहद्देशी' हमें बीसवीं शती में प्राप्त होते हैं। तन्त्र से जुड़े समकालीन आचार्य चूँकि संगीत को निम्नतर अवस्था में पाते हैं इसलिए वे सोचते हैं कि तन्त्र के मतंग संगीत ग्रंथ की रचना नहीं कर सकता। उनके अनुसार इसीलिए मतंग नाम से दो मुनि हुए किन्तु यदि ऐसा होता तो भरत मुनि नाट्यशास्त्र की रचना न कर पाते। यह स्पष्ट रहना चाहिए कि वैदिक युग से बारहवीं शती तक कलाओं की साधना का लक्ष्य भी वही रहा है जो वेद व तन्त्र का है। दूसरी ओर का यह तथ्य भी है कि संगीत के ऐसे ग्रंथों पर गहन कार्य करते हुए संगीतशास्त्री तन्त्र–अध्ययन के बावजूद यह लिंक (सूत्र) नहीं कर सके जो 'वृहद्देशी' व 'मातंग तन्त्र' में है, जिसका उल्लेख श्री अभिनव गुप्त ने अपने प्रमुख ग्रंथ 'तन्त्रालोक' में किया है। मेरा प्रस्ताव न सिर्फ है कि, 'वृहद्देशी' के अगले संस्करण में छूटे गये आरम्भिक श्लोकों के बारे में आगम के परिप्रेक्ष्य में अनुवादक अपने नोट या एक्सपोजिशन में विद्यार्थियों के लिए स्पष्ट करें ताकि बात स्पष्ट हो, वल्कि ऐसे ग्रंथ यदि विद्यार्थियों को पढ़ाये जाने हैं तो पहले ऐसी आगमिक शब्दावलियों से भी उन्हें परिचित कराया जाय।

हालाँकि 'रघुवंश' के पाँचवें सर्ग में भी ऋषि मतंग का उल्लेख है। और यह शक्ति व्योमव्यापिनी है। शकुन्तला के पास भी शक्ति व्योम से उतरती है। महेश्वर या परमेश्वर का स्वातन्त्र्य है व्योम या शून्य, फिर नाद, बिन्दु और बीज। ये शक्तियाँ या तीनों में विभक्त एक ही शक्ति अभिमुख है व्योम की ओर। स्वयं राजा अभिमुख है शक्ति की ओर–

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं.....

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2/11)

इसके प्रथम अंक के आरम्भ में सूत्रधार भी नटी के लिए नेपथ्य की ओर अभिमुख है–नेपथ्याभिमुखमवलोक्य। राजा भी मन में

महाकवि कालिदास के रचना संसार में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सभी प्रमुख तत्व संस्कार की तरह आद्यन्त प्रकट–अप्रकट बिखरे दिखाई देते हैं। महाकवि के स्वाभाविक रचना कर्म और चरित्रों के अनायास उच्चार में प्रत्यभिज्ञा–अर्थभाव की व्यापकता सहज ही प्रत्यक्ष होती है। उनके काव्य और नाटकों में, अर्थात् उनकी संपूर्ण रचनामिति में प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रमुखतया से प्रकट होना उनके मनोनिर्माण में इस साधना और तपश्चर्या के होने की निस्सन्देह अभिव्यक्ति है। महाकवि की काव्यभाषा या दृश्य काव्य भाषा सन्ध्या भाषा नहीं है, न सन्ध्या भाषा प्रत्यभिज्ञा दर्शन की कोई अनिवार्य कूट भाषा है किन्तु प्रत्यभिज्ञा के जिस मूल अर्थ में हम यहाँ कालिदासीय चरित्र के संवादों को देखने जा रहे, (क्योंकि दृश्यकाव्य का आरम्भ संवादों से ही हुआ, जैसा कि हम जानते हैं कि ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदि में उल्लिखित उर्वशी और पुरुरवा के संवादों के आधार पर ही महाकवि ने इस प्रसंग को अद्वितीय नाट्यकृति का रूप दिया), प्रकाश में प्रत्यभिज्ञा शैली के बहुरूप, भाषा की सन्ध्या से बाहर आकर प्रकाश का विमर्श बनते हैं। एकाएक उद्घाटित होने के इस सौन्दर्य को श्री अभिनव गुप्त ने विद्युल्लेखा रूपक से स्पष्ट किया है। अपने प्रायः ग्रंथों में शक्ति को प्रणाम करते हुए उन्होंने इसी रूपक का प्रयोग किया है।

ऐसे ही सोचता है–

...कर्ण ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/29)

बीज और बिन्दु जैसे आगमिक शब्दावलियों का प्रयोग तो कालिदासीय साहित्य में यत्र–तत्र है ही, परमेश्वर प्रत्येक रचना के मंगलाचरण में सुनिश्चित रूप से हैं। 'रघुवंश' के प्रथम सर्ग के प्रथम पंक्ति ही है–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

शिव का वर्णन तो यत्र–तत्र है ही, अप्रिय व अशालीन शब्द भी यदि दुष्यन्त राजा के कानों में पड़ता है तो मुख से 'शिव–शिव' निकल पड़ता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में सब कुछ शिव है। शिवदृष्टि है तो शिव ही है। ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी के प्रायः श्लोक पति और पशु के संबंध को स्पष्ट करते हैं। पति अर्थात् परमेश्वर–'दुल्हिन गावहुँ मंगलचार, मोरे घर आये राजा राम भरतार।' जब तक पति से बिछुड़े या विस्मृत, तक पशु के पाश तक सीमित, प्रमाता। प्रथम कंचुक माया और फिर भ्रम की माला। श्रृंखला। स्वप्न। आभास। विवर्त। विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अंक के पाँचवें श्लोक से यह श्रृंखला आरम्भ होती है और देर तक रहती है जिसमें पशु ही है– गजराज, मतवाला गजराज हथिनी के साथ, मायामृग के ऊपर वनलक्ष्मी। मिलन की स्मृति विरह में स्वप्न या माया, दुष्यन्त के लिए सब कुछ विवर्त–

स्वप्नो न माया मतिभ्रमो
नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6/10)

इस (appearence world) विवर्त विश्व में महाकवि कालिदास को पढ़ते हुए यदि स्फोट या उद्यम इस स्तर पर घटते हों, शब्द–शब्द उच्चार में यदि प्रत्यभिज्ञा की अलौकिक स्थिति बनती हो, अनुत्तर की विद्युल्लेखा समस्त प्रत्यगात्मनों में समावेश का अभ्यास कराती हो तो सिद्ध है कि उद्यमोभैरवः स्थिति में होकर ही महाकवि ने ऐसी रचनाओं की सृष्टि की है। यह कालिदास की प्रत्यभिज्ञा थी कि ऐसी कृतियों में कौंध जाता है अनुत्तर। इसलिए चिन्तन की इस भूमि पर खड़े होकर इस समारोह के मंच से मुझे यह विनम्र प्रस्ताव करने दें कि कालिदासीय चरित्रों जैसे दुष्यन्त, पुरुरवा या अग्निमित्र का अभिनय करने के लिए ऐसे योग्य अभिनेता ही प्रस्तुत हों, कि अभिनेता की प्रत्यभिज्ञा संभव हो सके, कि अभिनय करते हुए वह ऐसी स्थिति में स्वयं हो सके कि दर्शकों में इसका, प्रत्यभिज्ञा रस का, साधारणीकरण हो जाय।●

संपर्क : 07052306296

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा–'काकु' के सन्दर्भ में

डॉ. स्वरवन्दना शर्मा

कविकुलगुरु कालिदास की कलाकोमल वाणी स्वतः रागमयी है, अनुरागमयी है। उसे संगीतमय बनाने का, स्वरों से सजाने का प्रयत्न 'स्वर' की दो प्रसिद्ध व्याख्याओं–व्याकरण के अनुसार 'स्वयं राजन्त इति स्वराः' और संगीत की दृष्टि से 'स्वतो रञ्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते' के अनुसार स्वयं प्रतिष्ठित तो करता ही है, स्वयं रँग भी देता है, अर्थात् तन्मय बनाता है, आनन्द विभोर कर देता है। कालिदास 'रमणीय काव्य' के कर्ता हैं, इतना कहना ही पर्याप्त है, उन्हें अलग से नाटककार न भी कहा जाये तो कोई कमी नहीं मानी जाएगी, क्योंकि– 'काव्येषु नाटके रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला' प्रसिद्ध है।

भरतमुनि 'नाट्यशास्त्र' भारतीय नाट्यपरंपरा का सर्वमान्य ग्रन्थ है, जिसमें नाट्य तथा रंग से सम्बद्ध काव्य, शिल्प, संगीत, नृत्यादि ललित कलाओं के विस्तृत विवरण के साथ नाट्य सिद्धान्तों का मौलिक विवेचन प्राप्त होता है। चार प्रकार के अभिनय, गीत और वाद्यविधि, पात्रों की प्रकृति, भूमिका आदि विषयों पर भरत के आधिकारिक वचन अद्यावधि हमारा मार्ग निर्देश कर रहे हैं।

भरत के अभिनय के चार प्रकार आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक बताते हुए वाचिक अभिनय को 'नाट्यस्येयं तनुः' अर्थात् नाटक का शरीर कहा है, साथ ही यह भी बताया है कि अंग और नेपथ्यादि तत्त्व वाक्यार्थ (वाचिक) की ही अभिव्यक्ति करते हैं। भरत के वचन इस प्रकार हैं–

आङ्गिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।।
ना.शा. 6/24

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।
अङ्गनेपथ्यतत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि।।
ना.शा. 14/2

वाचिक अभिनय के अन्तर्गत 'पाठ्य' को इस प्रकार समझाया है–

पाठ्यगुणानिदानीं वक्ष्यामः। तद्यथा– सप्त स्वराः, त्रीणि स्थानानि, चत्वारो वर्णाः, द्विविधा काकुः, षडलंकाराः, षडङ्गानि इति। द्विविधा काकुः। साकाङ्क्षा, निराकाङ्क्षेति। (ना.शा. 17/98 के बाद।)

क्रमशः सात स्वर, तीन स्थान, चार वर्ण, दो काकु, छह अलंकार और छह अंगों को बताते हुए एक ओर पाठ्य के 6 गुणों के अन्तर्गत 'काकु' को गिना है और दूसरी ओर पूरे अध्याय का ही नाम 'काकु स्वर–विधान' रखा है। (यह काव्यमाला संस्करण का 17वां अध्याय है, अन्य किन्हीं संस्करणों में 11वां अध्याय है।)

अमरकोष के अनुसार 'काकुः स्त्रियां विकारो यः शोकभीत्यादिभिर्ध्वनेः' (अर्थात् शोक, भय आदि के कारण होने वाला ध्वनि का विकार 'काकु' है, जो स्त्रीलिंग शब्द है। भरत ने काकु के बाद छह अलंकार (उच्च, मन्द्र, नीच, द्रुत, विलंबित) और छह अंग (विच्छेद अर्थात् विराम, अर्पण अर्थात् भराव, विसर्ग, अनुबन्ध, दीपन और प्रशमन) बताये हैं। ये सभी प्रत्यक्ष रूप से वाचिक अभिनय और परोक्ष रूप से आज के संगीत प्रयोग में भी भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया के पोषक तत्त्व हैं। विस्तार भय से केवल 'काकु' के साकांक्ष–निराकांक्ष स्वरूप का उल्लेख करूँगी। सामान्य व्यवहार में भी प्रश्न, चिन्ता, विस्मय, उपालंभ आदि भावों की अभिव्यक्ति में हमारी आवाज नीचे से ऊपर की ओर उठती जाती है यही साकांक्ष काकु है, और सामान्य वाक्य या उत्तर देने में आवाज ऊपर से नीचे की ओर आती है, यह है निराकांक्ष काकु।

भरत के काकु विवेचन के अतिरिक्त हम संगीत के विद्यार्थियों को शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत–रत्नाकर' का काकु–वर्णन पढ़ने का भी अवसर मिलता है, जो भरत के वाचिक प्रसंग से अलग हटकर संगीत के अपने तत्त्वों और प्रस्तुति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। रत्नाकर के अनुसार–

छाया काकुः षट्प्रकारा स्वर–रागान्यरागजा।।
सं.र. 3/120

स्याद् देश–क्षेत्र–यंत्राणां

x x x

अर्थात् काकु छाया स्वरूप है, जो स्वरकाकु, रागकाकु, अन्यरागकाकु, देशकाकु, क्षेत्रकाकु और यंत्रकाकु इस तरह छह प्रकार की है। स्वरकाकु अर्थात् स्वर की अपनी छाया, रागकाकु अर्थात् राग की छाया दिखाने वाला विशेष स्वरसमूह या स्वरप्रयोग, अन्यरागकाकु अर्थात् जब किसी एक राग की छाया अन्य राग पर पड़े, देशकाकु अर्थात् जहाँ अलग–अलग स्थानों की गायन शैली की छाया राग की प्रस्तुति पर पड़े (यह प्रकार लोकसंगीत में अत्यन्त स्पष्ट है, पर घराने के रूप में भी समझ सकते हैं), क्षेत्र अर्थात् शरीर से संबद्ध कण्ठध्वनि की छाया क्षेत्रकाकु है, यंत्र अर्थात् वाद्यध्वनि की विशेषता यंत्रकाकु है।

भरत के अनुसार वाचिक अभिनय में भावसंप्रेषण का सबसे प्रभावशाली कारक है– 'काकु' और शार्ङ्गदेव के अनुसार स्वर, राग, अन्यराग, देश, कण्ठ, वाद्य इन सबकी अपनी विशेष छाया या प्रभाव को व्यक्त करने वाली है 'काकु'।

मेरे इस शोधपत्र "कालिदास के पद्यों की सांगीतिक समीक्षा : 'काकु' के सन्दर्भ में" के अन्तर्गत अपने उन निजी अनुभवों को बाँटना चाहती हूँ, जो विगत पाँच वर्षों से 'ज्ञान–प्रवाह' (वाराणसी का सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र) द्वारा प्रायोजित संस्कृत नाटकों के लिये संगीत–रचना करते समय मुझे प्राप्त हुए।

संयोग से कालिदास के तीनों नाटकों के वाराणसी में मंचन से संबंधित चित्र संगोष्ठी–कक्ष में लगाये गये हैं, जिसमें व.क.म. परिवार के पूर्व और वर्तमान सदस्य सहयोगी थे (स्व. प्रेमलता शर्मा के निर्देशन में मालविकाग्निमित्रम् 1975 तथा प्रो. कृष्णकान्त शर्मा के निर्देशन में अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 2001, 2002 तथा विक्रमोर्वशीयम्–2003)।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् की नान्दी 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' शिव की प्रत्यक्ष अष्टमूर्ति की स्तुति है। शरणागत सामाजिकों की कल्याण–कामना करने हेतु राग चुना कल्याण अर्थात् यमन। 'स्थापक' द्वारा एकल अभिनय के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त स्वर रचना और अष्टमूर्ति के प्रतीक आठ नर्तक– नर्तकियों द्वारा नृत्य के लिये तालबद्ध रचना की।

ग – गरेरे ग ग – ग धप रे – ग – रेगरेसानि धं – नि – रे –
था ऽ ऽऽऽ सृ ष्टिः ऽ स्र ष्टुः राऽद्याऽऽऽऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽऽऽऽ

प | – रे – नि | धं नि रें रें रे | ग – ग – | पमं गरे गध
था | ऽ सृ ऽ ष्टिः | ऽ स्र ऽ ष्टुः | रा ऽ द्या ऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ

शाकुन्तलम् के ही पंचम अंक में नेपथ्य से रानी हंसपदिका का उलाहना भरा गीत है– 'अहिनव महु लोलुओं तुअं'। भीमपलासी राग के संचार में उलाहना का भाव लाने के लिये त्रिताल में बाँधते हुए 'प ग म ध । ध प ऽ यह 'सम' (ताल की पहली मात्रा) का स्थान लीक से हटकर रखा और अंतिम पंक्ति का 'कहं' (क्यों) भी आरोही स्वरों में रखा, जिससे प्रश्नार्थक भाव स्पष्ट हो सके।

प ग – प ग – प ग प – ग पसांधसां – – धप रे – ग – –
व्याऽ प्यऽ स्थितं ऽ ऽऽ रोऽऽऽ ऽ ऽ दुऽ सीऽऽऽऽ

रे – ग – प गरेसा – सारेग रे ग – – –
शऽ ब्दोऽ य थाऽऽऽ ऽ र्थाऽऽऽ क्षऽ रः ऽऽऽ

विक्रमोर्वशीयम् की नान्दी 'ईश्वर' की स्तुति है, जो राग भूप (भूपाली) में रची गयी है। भूप अर्थात् राजा भी ईश्वर ही है। 'व्याप्य स्थितं रोदसी' में 'रोदसी' अर्थात् द्युलोक और पृथ्वी के भाव को उभारने के लिये तार सप्तक का 'सा' और बाद में मध्य सप्तक का 'रेग' लेते हुए स्वर रचना की। 'यस्मिन् ईश्वर इत्यनन्य विषयः शब्दो यथार्थक्षरः' का समापन गांधार पर किया, तानपूरे के मन्द्र षड्ज के तार में 'स्वयंभू गांधार' गूँजता है, और ईश्वर का वाचक 'प्रणव' अर्थात् 'ॐ' भी अनुरणनात्मक ही है। अनुरणनात्मक ॐ को स्वयंभू गांधार में अनुभव करना अपने आप में रोमांचक अनुभूति है।

ध प ग म | पसां निसं ध प | प ग म ध | ध प – –
अ हि न व | मुऽ हुऽ लोऽ | लुऽ ओऽ तुऽ | अं ऽ ऽ ऽ

प नि नि नि | निसं रें रें सां रें | नि सां प ध | म प गम पनि
म हु अ र | विऽ ऽ हुऽ रि | ओऽ शि गं | ऽ ऽ ऽऽ ऽऽ

इसी के चतुर्थ अंक में विरही राजा बादल और बिजली को राक्षस और अपनी बिछुड़ी प्रिया के रूप में देखता है। आसमान में दूर तक फैले इन्द्रधनुष के लिये 'दूराकृष्ट' में राग मियाँ मल्हार के कोमल निषाद का लंबा प्रयोग किया है, वही 'कनकनिकषस्निग्धा विद्युत्' में बिजली की क्षणिक चमक के अनुरूप तीव्रगति

रे रे प प म प – म प नि नि नि नि नि नि म प –
मु र ध नु रि दं ऽ दू ऽ रा ऽ ऽ ऽ कृ ऽ ष्टं.

प रें प रें सां रें – नि – सां – निसांरें – नि सां
क न क नि क ष ऽ स्नि ऽ ग्धा ऽ निऽऽ ऽ द्यु ऽ त्

वही हाथी से विनय करने वाला राजा 'अहं त्वां पृच्छामि' कहते हुए सारा अहंकार छोड़कर घुटने टेक रहा है। यह भाव राग देश में

म रे ग – रे सा रे – म – प – प म प प म प ध म ग रे
अ हं ऽ ऽ ऽ ऽ त्वांऽ पृऽ च्छाऽ मि आ च क्ष्व ग ज व र ऽऽ

राजा द्वारा 'संगमनीय मणि' लेकर भी वापस रख देना चरम दुःख का अवसर है, अतः 'मन्दारपुष्पैरधिवासितायां' को राग शिवरंजनी में रखा। मुनि के उद्बोधन के बाद एक लता में उर्वशी की झलक दिखते ही राजा अपनी दुरावस्था उस लता से कहने लगता है। प्रिया–विरह का दुःख होते हुए भी लता को देखकर दुःख की छवि (shade) बदल गई। चरम दुःख इसीलिये से थोड़ा भाव परिवर्तन लाने के लिए राग बदलकर किरवानी चुना 'लते प्रेक्षस्व' के लिये। 'मणि' के प्रभाव से लता के पुनः उर्वशी के रूप में बदलते ही सारा दुःख समाप्त, इस परिवर्तन के लिये ताल का सहारा लेते हुए वाद्यसंगीत की प्रसिद्ध

सा – रे – ग प – प – – – | धप गरे सारे | गप प – – –
मं ऽ क्षऽ ऽ रऽ | पुऽ ष्पैऽ ऽऽ | धि वा ऽ सि | ताऽ यांऽ ऽऽ

सा सारेगप ध – प – प पधनि धनिधपप धमपगरे
ल ते ऽऽऽ प्रे ऽ क्षऽ स्व बि ना ऽऽ हृ द यैऽ न भ्र मा ऽ ऽ मि

ध | प ग – सा | रे – – – | रे गग म प | ध – प

इस प्रकार नान्दी से 'भरतवाक्य' तक यथामति यथाशक्ति संगीत संयोजना करते समय मेरा यही प्रयास रहा कि महाकवि की वाणी के अर्थ को, संगीत के तत्त्वों स्वर और लय के माध्यम से अधिक से अधिक स्फुट करते हुए 'वागर्थ–प्रतिपत्ति' की उनकी भावना से भावित हो सकूँ। ●

संपर्क : रीडर एवं अध्यक्षा, संगीत (गायन), व.क.म.।

कलावसुधा
R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035
ISSN-2348-3660
प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक
शीघ्र ही नेट पर उपलब्ध होगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघदूत में-विज्ञान

रामदहिन मिश्र

यह वैज्ञानिक युग है। यहाँ विज्ञान की महत्ता का वर्णन करना अनावश्यक है क्योंकि आजकल चारों ओर उसी की चर्चा है; सर्वत्र उसके कौशल दिखाई पड़ते हैं। हमारे भारतवर्ष में कभी विज्ञान की चर्चा थी या नहीं, इसका निर्णय करना कठिन है। आर्य समाजियों ने वेदों से कई वैज्ञानिक बातें ढूँढ़ निकाली हैं। पण्डित भीमसेन शर्मा ने भी अपने पत्र द्वारा वैदिक काल की कई वैज्ञानिक बातें सुनाई हैं। पर उनकी बातों पर लोगों को विश्वास नहीं होता। वे कहते हैं कि यदि वेद में विज्ञान है, तो पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार होने के पहले इन लोगों ने वेदों से विज्ञान की प्राचीनता क्यों न सिद्ध की? खैर, मैं भी वही साहस करता हूँ। मैं दिखलाना चाहता हूँ कि मेघदूत ऐसे छोटे ग्रन्थ में भी अनेक वैज्ञानिक बातें हैं। मैं यह नहीं कहता कि जैसे सिद्धान्त पहले थे, वैसे ही आज भी हैं और प्राचीन तथा नवीन प्रक्रियाएँ एक सी हैं। तो भी मैं इतना अवश्य कहूँगा कि विज्ञान की बातों को प्राचीनों ने पौराणिक रूप दे दिया है, पर उनमें वैज्ञानिक तथ्य अवश्य हैं।

मेघदूत के पाँचवें श्लोक में लिखा है—"धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।" इस पद में मेघ बनने की प्रक्रिया है अर्थात् मेघ धुआँ, तेज, जल और हवा के संयोग से बनता है। कैसे बनता है, इसके विशेष विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं। महाकवि की इस बात को आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान् भी मानते हैं। संभव है कि वे इसे सर्वांश में न मानें, किन्तु अधिकांश में इससे अवश्य सहमत होंगे। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका वर्णन है। पहले अधिकाधिक यज्ञ होते रहने से समय–समय पर वृष्टि अधिकता से होती थी। प्राचीन पुरुष यज्ञभाव को वृष्ट्यभाव का कारण बतलाते हैं। मेघ के बनने में याज्ञिक धूम अर्थात् पवित्र पदार्थों का धुवाँ मेघ का साधक और विकृत पदार्थों का धुवाँ मेघ का बाधक है। मेघदूतोक्त बात की पुष्टि के लिए उपनिषदों और पुराणों के कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं—

"अग्नौ प्रास्ताहुतीः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्ज्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्ज्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमे मुंचत्यथेन्दुश्च वायुना धीमयैर्यदि।।
नालैर्विक्षिपते भ्रेषु धूमानलिनमूर्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः।।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः।।"

श्री गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

"धूम–अनल–सम्भव सुनु भाई।
तेहि बुझाय घन पदवी पाई।। 1।।
सोइ जल अनल–अनिल–संघाता।
होई जलद जग–जीवन–दाता।। 2 ।।"

मेघदूत के पन्द्रहवें श्लोक में लिखा है—"वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्ड–माखण्डलस्य" अर्थात् वल्मीक से इन्द्रधनुष का टुकड़ा उत्पन्न हो रहा है। इन्द्रधनुष सूर्य की किरणों के कारण बनता है। जब सूर्य पश्चिम में रहता है तब वह पूर्व की ओर उत्पन्न होता है और जब सूर्य पूर्व की ओर होता है, तब वह पश्चिम की ओर दिखाई पड़ता है। वह तिरछी किरणों की प्रतिच्छाया है। दोपहर को वह नहीं दिखाई पड़ सकता और न बिना बादल और वृष्टि के ही वह उदित हो सकता है। उसमें सात प्रकार के रंग होते हैं।

इस पूर्वोक्त श्लोक–खण्ड का वल्मीक शब्द सन्दिग्ध है। वल्मीक शब्द के कई अर्थ हैं। इन अर्थों के आधार पर कई टीकाकारों ने कई प्रकार की बातें कही हैं। शब्दार्णव में वल्मीक शब्द का अर्थ लिखा है—बामलूर, अर्थात् बाँबी या दिव्य काँण (The top of ant-hill) और पर्वत की चोटी। "बामलूरे गिरेः शृङ्गे वल्मीकपदमिष्यते।" अन्यान्य कोषों में लिखा है—"वल्मीकः सातपो मेघः।" "वल्मीकः सूर्य्य इत्यपि।" श्री जगदीशकृत "शब्दशक्ति–प्रकाशिका" के अपादान–कारक प्रकरण में भी "वल्मीकः सातपो मेघः" लिखा है।

मल्लिनाथ बाँबी और आतपयुक्त मेघ से इन्द्रधनुष का होना लिखते हैं। सुबोधा और सारोद्धारिणी टीका में लिखा है—"इन्द्रचापं किल वल्मीकान्तर्व्यवस्थितमहानाग शिरोमणि–किरण–समूहात्समुत्पद्यते।" वल्लभ, सनातन, रामनाथ, भरत, हरगोविन्द, कल्याणमल्ल और अन्यान्य टीकाकार 'वल्मीकाग्रात्' का 'रामगिरिशृङ्गात्' अर्थ करते हैं। रामनाथ, वल्लभ आदि 'वल्मीकात्' का 'सूर्य्यात्' भी अर्थ करते हैं। 'वल्मीकाग्रात्' 'सातपमेघात्' यह अर्थ भी वल्लभ आदि टीकाकार लिखते हैं। 'वल्मीकः सातपो मेघः' 'वल्मीकः सूर्य्य इत्यादि' इनका पता कोषों में नहीं लगता। पर इन अर्थों से वैज्ञानिकता में बाधा नहीं पड़ती। रामगिरि का शिखर मान लेने में भी कोई बाधा नहीं। क्योंकि दूर से देखने वाले ऐसा अनुमान कर सकते हैं। उच्च होने के कारण बाँबी और टीले से भी यहाँ अनुमान हो सकता है। अन्यान्य अर्थ प्राचीनता से भरे हैं। इन्द्रधनुष के विषय में वराहमिहिर कहते हैं—

"सूर्य्यस्य विविधवर्णाः
पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते
तदिन्द्रधनुः।।
केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्य्याः।
तद्यायिनां नृपाणामभिमुखजयावहं
भवति।।"

चौवनवें श्लोक में कालिदास लिखते हैं—"तान् कुर्वीथास्तुमुलकरका—वृष्टिपातावकीर्णान्" अर्थात् पहाड़ी मृग जब तुम्हें बाधा पहुँचावें, तब उन्हें करका (ओले) बरसा कर तितर—बितर कर देना। इसके पहले, एक श्लोक में, "तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः" अर्थात् जिससे गंगा पैदा हुई है, उस हिमालय पर पहुँच कर..... इस वर्णन से विज्ञान की एक बड़ी मार्मिक बात निकलती है। इधर कालिदास ने कई श्लोकों में जल पीने और वृष्टि करने आदि का वर्णन किया है। परन्तु जब हिमालय की तराई में पहुँचते हैं, तब जलवृष्टि न कराकर करका—वृष्टि कराते हैं। क्यों ? वे समझते हैं कि चारों तरफ हिमालय की बर्फीली चोटियों से निकलते समय मेघ में तरल रूप से जल का रहना कभी संभव नहीं।

विज्ञान के सिद्धान्त से जल की तीन अवस्थायें होती हैं। जब शीत की अधिकता होती है, तब जल बर्फ का आकार धारण करता है; जब उष्णता का संचार होता है, तब तरलावस्था में जल दिखलाई पड़ता है; और जब जल में अधिक ताप पहुँचता है, तब वह जल भाप (वाष्प) बन जाता है। इस सिद्धान्त को दिखलाने में कालिदास ने किसी बात की त्रुटि नहीं की। मेघ पहले यथास्थान जल बरसाता आया है, पर हिमालय में शीत की अधिकता से जमे हुए जल को करका रूप से बरसाता है। जल—बिन्दुओं ने करका (Hail-stone) का आकार धारण किया है।

**"काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।।"**

इससे भी विज्ञान की एक बात निकलती है। इसमें 'भवति' मेघ के लिए और 'यस्य' रामगिरि के लिए आया है। इन दोनों के संयोग का वर्णन कालिदास ने बड़ी खूबी से किया है। यदि दो मित्र परस्पर कुछ समय के बाद मिलें, तो करुण—मिश्रित प्रेम के वशीभूत होकर उनके नेत्रों से आँसू चलना स्वाभाविक है। पर इस स्वाभाविक वर्णन के साथ विज्ञान का भी कुछ अंश है। पहाड़ चार महीने की गर्मी से बहुत उत्तप्त हो जाता है। उस पर यदि मेघ थोड़ा

"यहाँ विज्ञान की महत्ता का वर्णन करना अनावश्यक है क्योंकि आजकल चारों ओर उसी की चर्चा है; सर्वत्र उसके कौशल दिखाई पड़ते हैं। हमारे भारतवर्ष में कभी विज्ञान की चर्चा थी या नहीं, इसका निर्णय करना कठिन है। आर्य समाजियों ने वेदों से कई वैज्ञानिक बातें ढूँढ़ निकाली हैं। पण्डित भीमसेन शर्मा ने भी अपने पत्र द्वारा वैदिक काल की कई वैज्ञानिक बातें सुनाई हैं। पर उनकी बातों पर लोगों को विश्वास नहीं होता। वे कहते हैं कि यदि वेद में विज्ञान है, तो पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार होने के पहले इन लोगों ने वेदों से विज्ञान की प्राचीनता क्यों न सिद्ध की? खैर, मैं भी वही साहस करता हूँ।"

जल बरसा दे, तो भाप निकलने लगती है। उत्तप्त वस्तु पर शीत के संयोग से भाप बनती है। जाड़े के दिनों में प्रातःकाल जो कुहरा देख पड़ता है वह इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त का निदर्शन है। इस बात को कालिदास बड़ी उत्तमता से व्यक्त करते हैं—

**"विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे।
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।।"**

इस पद्यार्थ का भावार्थ यह है कि जब तुम खिड़की पर जाकर बैठ जाओगे, तब मेरी पत्नी टकटकी बाँध तुम्हें देखने लगेगी। उस समय तुम अपनी प्यारी बिजली को गोद में छिपा कर मन्द—मन्द गर्जन रूपी वचनों से उस मानिनी से कहना प्रारम्भ करना।

यह सर्वसम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि बादल में बिजली होती है। जब दो बादल एकत्र होते हैं, तब उनमें विद्युत्संचार होता है। यदि किसी बादल में अधिक बिजली हुई, तो वही दूसरे में चली जाती है। जब यह संचालन—प्रक्रिया होती है, तभी गर्जन होता है। जब गर्जन होता है, तब विद्युत्स्फुरण भी अवश्य होता है। ये दोनों काम साथ ही साथ होते हैं।

यक्ष यह सोचता है कि यदि मेघ अपने गर्जन—द्वारा बोलने का उपक्रम करेगा, तो विद्युत्स्फुरण भी अवश्य ही होगा। इससे मेरी प्रिया की दृष्टि स्थिर होना संभव नहीं। जब उसकी दृष्टि स्थिर न रहेगी, तब समाचार सुनने में वह दत्तचित्त नहीं हो सकती। अतः यक्ष पहले ही से मेघ को सावधान किये देता है

कि भाई मेघ ! तुम विद्युद्गर्भ हो जाना, अपने गर्जन के समय बिजली को अपने उदर में रोक रखना, छिपाये रहना। ऐसा न हो कि उस समय बिजली चमक जाय। कहिए, कालिदास ने इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को योग्यतापूर्वक व्यक्त किया है या नहीं।

मेघदूत में ऐसी ही और भी वैज्ञानिक बातें हैं। घटा घिरने और घहराने पर गोबर—छत्ते निकलते हैं—**"कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छि—लीन्ध्रामवन्ध्याम्।"** ठंडी हवा से गूलर पकते हैं—**"शीतो वातः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।"** तेज हवा मेघों को इधर—उधर बिखेर देती है। इससे मन्द—मन्द हवा ही उनके लिए उपयुक्त है—**"मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूली यथा त्वाम्।"** मेघ में जल रहने से गुरुत्व और न रहने से लघुत्व आ जाता है—**"तोयोत्सर्गद्रुत— तरगतिः— अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्।"** इत्यादि बातों को देखने से कौन कह सकता है कि मेघदूत में वैज्ञानिक बातें नहीं हैं!

मेघ—सम्बन्धी मेघदूत के इने—गिने श्लोकों में इतनी वैज्ञानिक बातों को देखकर हम तो यह समझते हैं कि कालिदास विज्ञान के अनेक सिद्धान्तों से परिचित थे।●

—प्रस्तुति : नलिनी मिश्र
संपर्क : सरोजिनी—निवास,
एम—1/63, सेक्टर—बी, अलीगंज, लखनऊ
(उ०प्र०) 226024

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कालिदास के ग्रन्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में प्रयुक्त विभिन्न सुभाषित

डा. उषा बनर्जी

सुभाषित अर्थात् वे वाक्यांश जिनको यदि जीवन में धारण किया जाय तो वे निश्चय ही एक सकारात्मक आचार संहिता प्रदान करने वाले होते हैं। सु अर्थात् सुन्दर भाषित अर्थात् कहा गया यानी जो सुन्दर शब्दों में कहा गया और जो जीवन को सुन्दर बनाये। इन सुभाषितों से हमारी आज की पीढ़ी को भी निश्चय ही अपने जीवन से जोड़ना युक्ति संगत होगा। सुभाषितों के अंतर्गत वे प्रकृति और जीवन के ऋत–सत्य भी कहे जाते हैं जो कि सार्वभौम होते हैं। वे सत्य देश एवं काल की सीमा से अनिबद्ध सब जगह और हर समय लागू हो सकते हैं। यहाँ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में वर्णित कुछ सुभाषितों को अकारादि क्रम से वर्णित किया जा रहा है जो कि निश्चय ही कालिदास के ग्रन्थ में वर्णित होते हुए भी आज भी उतने ही प्रासंगिक है। इन सुभाषितों को इस नाट्य में किन संदर्भों में कहा गया है मैं यह नहीं देख रही हूँ क्योंकि भले ही ये सुभाषित कालिदास ने अपने नाट्य के विभिन्न संदर्भों में कहे हैं किन्तु वे आज के युग में बिना उन संदर्भों के भी सिद्ध हो जाते हैं। अतः उनके संदर्भों को न कहने पर भी उनकी उपयोगिता सिद्ध हो यही मेरा प्रयास है। कालिदास ने अपने सुभाषितों में अधिकतर प्रकृति के विभिन्न पक्षों का सहारा लेकर जीवन के सार्वभौम सत्यों को कहने की कोशिश की है। हमारे आस–पास ही बिखरे अनेकों ऐसे प्राकृतिक दृष्टान्त हैं जिन्हें यदि ज्ञान चक्षु से देखा जाय तो उनसे जीवन को सकारात्मक दृष्टिकोण मिलता है। वे सार्थक है, सरल है, सहज है और चूँकि नाट्य की विशेष परिस्थितियों में घटित होते हुए दर्शाये गये हैं तो वे कही न कहीं 'सरस' भी है। ज्ञान के पुंज है। हम आज भी अपने अवचेतन मन में वह सब संजोये हुए हैं। किन्तु कभी ऐसे कहने के संदर्भ और तरीके हमारे ग्रन्थों में भी वर्णित हुए हैं ऐसा जानकर और अधिक वे दृढ़ हो जाते हैं। आज की पीढ़ी अपनी बात को कहने के लिए जहाँ नये–नये तरीके खोजती है। वे यदि इन ग्रन्थों की ओर अपनी दृष्टि डाले तो उन्हें ऐसे अनेकों अभिनव प्रयोगों को करने की प्रेरणा ही नहीं मिलेगी बल्कि मूलभूत ज्ञान भी प्राप्त होगा। अतः जब हम कालिदास को याद ही कर रहे हैं तो अपनी आगामी पीढ़ी के लिए उनके द्वारा प्रदत्त अनमोल मुक्ता मणियों को भी प्रस्तुत करना हमारा सहज धर्म सा लगता है, जिनसे हम लाभान्वित हो सके यहाँ जो सुभाषित श्लोक या उनके अंशों में दिये गये हैं उनका अन्वय भी अर्थ सहजता के लिये दिया जा रहा है। इन सुभाषितों को सूक्ति भी कहने की परम्परा है। अतः इस अध्ययन में 'सूक्ति' अभिधान ही दिया गया है। यथा–

1. सूक्ति–'अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभय प्रार्थना कुरुते।

(प्रथम अंक श्लोक–1)

अन्वय–मनसिजे अकृतार्थेऽपि उभयप्रार्थना रतिं कुरुते।

अर्थ–काम देव के सफल न होने पर भी दोनों अर्थात् नायक–नायिका की अभिलाषा प्रेम उत्पन्न करती है। कहने का अर्थ यह है कि प्रेम में नायक नायिका की एक दूसरे से सन्निकट आने की अभिलाषा से ही प्रेम उत्पन्न होता है।

2. सूक्ति–'अवेतनं नाम गुणं न वीक्षते।'

(षष्ठ अध्याय, श्लोक 14)

अन्वय–अचेतनं गुणं नाम न वीक्षते।

अर्थ–अचेतन पदार्थ तो गुण को नहीं देखता अर्थात् जड़ वस्तु अपने मालिक का गुण–या अवगुण नहीं देखती। अर्थात् निर्जीव वस्तु पुरुषार्थ से जो उसे हासिल कर ले उसी की हो जाती है।

3. सूक्ति–"अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरी भवति सौहृदय"।

(अंक–5 श्लोक 27)

अन्वय–अज्ञातहृदयेषु सौहृदम् एवं वैरीभवति।

अर्थ–अज्ञात हृदय वाले व्यक्तियों से प्रेम सम्बन्ध की स्थापना इसी प्रकार शत्रुता के रूप में परिणत हो जाती है अर्थात् अपरिचितों से अचानक प्रेम सम्बन्ध नहीं बनाना चाहिये।

4. सूक्ति–"अति स्नेहः पापमाशङ्कते"।

(चतुर्थ अंक पृ. 394)

अर्थ–अति स्नेह अनिष्ट की आशंका करता है अर्थात् जिसके प्रति अत्यन्त स्नेह होता है उसके दूर हो जाने पर मन हमेशा अनिष्ट ही सोचता है, अच्छा नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. सूक्ति–"अत्यारूढ़िर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा"।

(अंक 4 श्लोक 5)

अन्वय–महतामपि अत्यारूढिः अपभ्रंशनिष्ठा भवति।

अर्थ–महान व्यक्तियों का भी अत्यन्त ऊँचे स्थान पर चढ़ना पतन में परिणत होता है। अर्थात् ऊँचाइयों को प्राप्त महान लोगों का भी पतन होता है।

6. सूक्ति–"अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि"।

(सप्तम अंक, पृ. 638)

अर्थ–कल्याण का अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। अर्थात् कल्याणकारी लोग परिस्थिति या धर्मादि का उल्लंघन या उपेक्षा नहीं करते इससे हानि ही होती है।

7. सूक्ति–"अनार्य खलु परदारपृच्छाव्यापारः"।

(सप्तम अध्याय पृ. 653 राजा का कथन)

अर्थ–पराई स्त्री के विषय में पूँछना अशिष्टता है। अर्थात् दूसरे की स्त्री के बारे में प्रश्न करना या बिना प्रयोजन जानकारी एकत्र करना सदाचरण के अनुरूप नहीं है।

8. सूक्ति–"अनियंत्रणानुयोगः खलु तपस्विजनः"।

(प्रथम अध्याय पृ. 106)

अर्थ–तपस्वियों से बिना झिझक के प्रश्न किया जा सकता है। अर्थात् तपस्वियों से निःसंकोच अपनी बात कही जा सकती है। जिसका वे सटीक निराकरण प्रदान करते हैं।

9. सूक्ति–अनिर्वर्णानीयं या अनिर्वर्ण्यः खुल परकलत्रम्।

(पंचम अध्याय पृ. 438 राजा का कथन)

अर्थ–पराई स्त्री को देखना उचित नहीं है।

10. सूक्ति–'अनुशयदुखायेदं हतहृदयं सम्प्रति विबुधम्'।

अन्वय–इदं हृतहृदयं सुप्तम् सम्प्रति अनुश्यदुःखाय विबुधम"।

अर्थ–यह नीच हृदय सोता रहा अब केवल पश्चाताप के दुःख के लिये जागा है। अर्थात् हमारा हृदय ज्ञान के उजाले में आते ही अपने किसी दुष्कर्म का पश्चाताप करता है।

11. सूक्ति–'अरण्ये खुल मया रुदितम्"।

(द्वितीय अंक, पृ. 151 विदूषक का कथन)

अर्थ–मैंने अरण्य रोदन ही किया। अर्थात् कहने वाले का कथन व्यर्थ ही गया क्योंकि सुनने वाले ने उस पर या तो ध्यान ही नहीं दिया अथवा वह कहने वाले की बात समझने में असमर्थ है। इसी के समकक्ष एक लोक में भी कहावत है। "अंधरे के आगे रोओ, आपन दीदा खोवो", या "भैंस के आगे बीन बजाओ भैंस खड़ी पगुराय" आदि।

12. सूक्ति–'अर्थो ही कन्या परकीय एव"।

(चतुर्थ अंक श्लोक 24 पृ. 401 सखियों का कथन)

अन्वय–कन्या ही परकीयः एव अर्थः।

अर्थ–कन्या वस्तुतः दूसरे का ही धन है। क्योंकि वे जहाँ जन्म लेती हैं वे माता–पिता उसका विवाह किसी अन्य परिवार में कर देते हैं और जीवन भर वह पराये घर में ही पल्लवित होती हैं।

13. सूक्ति–अवश्यम्भाविनोऽचिन्तनीय समागमा भवन्ति।

(षष्ठ अंक, पृ. 54.8 विदूषक का कथन)

अर्थ–अवश्यम्भावी वस्तुओं का समागम एकाएक हो जाता है। अर्थात् अवश्य होने वाले विषयों का मिलन अचानक होता है।

14. सूक्ति–"ननु अवसरोपसर्पणीया राजानो भवन्ति"।

(षष्ठ अंक, पृ. 548)

अर्थ–अवसर पाने पर ही तो राजाओं से मिला जाता है। अर्थात् महनीय जनों से समुचित समय मांग कर ही उनसे मिला जाता है।

15. सूक्ति–'अस्त्येवान्य समाधिभीरुत्वं देवानाम्'।

(प्रथम अंक पृ. 100 राजा का कथन)

अर्थ–देवताओं को दूसरे की समाधि से भयभीत होना तो है ही। अर्थात् देवता किसी की भी तपस्या से भयभीत हो जाते हैं क्योंकि उन्हें अपने जैसा दूसरा देखना अरुचिकर होता है।

16. सूक्ति–अहन्यहन्यात्मन् एव तावज्जातुं प्रमादस्खलितं न शक्यम्।

अन्वय–अहनि अहनि आत्मन एवं प्रमादस्खलितम् तावत् ज्ञातुं न शक्यम्।

अर्थ–प्रतिदिन अपनी ही प्रमाद जन्य त्रुटियों को सम्पूर्ण रूप में जानना सम्भव नहीं है अर्थात् अपनी ही रोज की जाने वाली गलतियाँ हमें स्वयं पता नहीं चलती या नहीं जान पाते।

17. सूक्ति–"अहो कामी स्वतां पश्यति।"

(द्वितीय अध्याय, श्लोक, 2 पृ. 143)

अर्थ–आह! कामी सर्वत्र ही आत्मीयता को ही देखता है। अर्थात् वह अपने प्रिय की प्रत्येक गतिविधियों को अपनी ही दृष्टि से देखता है। जैसे उसका प्रिय जो भी कर रहा है सम्भवतः सब उसी के लिये कर रहा है।

18. सूक्ति–"अहो ! विघ्नवत्यः प्रार्थितानाम् सिद्धयः"।

(तृतीय अंक, पृ. 299, राजा का बन्धन)

अर्थ–अहो ! अभिलषित वस्तुओं की प्राप्ति विघ्नों से युक्त होती है। अर्थात् जो पाने की हमें अभिलाषा होती है उसे प्राप्त करना आसान नहीं है। अनन्त विघ्नों को पार करके ही उसे पाने की सम्भावना होती है।

19. सूक्ति–

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै–
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन्।
अकांक्षयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदंगरजसा कलुषीभवन्ति।।

(सप्तम अंक, श्लोक 17, पृ. 655)

अन्वय–अनिमित्तहासैः आलक्ष्यदन्तमुकुलान, अव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन अंकाश्रयप्रणयिनः तनयान् वहतः धन्यः तदंगरजसा कलुषीभवन्ति।'

अर्थ–अकारण हंसने से कुछ–कुछ दिखाई पड़ने वाले नये निकले हुए दाँतों से युक्त, अस्फुट अक्षरों के कारण मनोहर वाक्योच्चारण (तोतली बोली) वाले तथा गोद में रहने के इच्छुक पुत्रों को धारण करते हुए भाग्यवान लोग ही उन बच्चों के अंग में लगी धूल से मलिन होते हैं। अर्थात् भाग्यवान लोगों को ही संतान का सुख एवं उनके विभिन्न क्रियाकलापों का आनन्द लेने का सौभाग्य मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

20. सूक्ति–अहो सर्वावस्थासु रमणीयकमाकृतिविशेषणाम्।

(षष्ठ अंक, पृ. 526, कंचुकी का कथन)

अर्थ–वाह ! विशिष्ट आकृति वाले प्रत्येक अवस्था में रमणीय दिखाई देते हैं या उनमें प्रत्येक अवस्था में रमणीयता रहती है।

21. सूक्ति–'आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्'।

(प्रथम अध्याय, श्लोक 30 पृ. 109)

अन्वय–यत् अग्निम् आशङ्कसे तत् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।

अर्थ–जिसे तुम अग्नि समझ रहे थे, वह तो स्पर्श के योग्य रत्न निकला अर्थात् जिसे हम कठिन समझ रहे थे वह सरल था आसान ही निकला।

22. सूक्ति–इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनेन दुःखानि नूनमतिमात्रदुरूद्वहानि"।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 4 पृ. 327)

अन्वय–नूनम् अबलाजनेन इष्टप्रवासजनितानि दुःखानि अतिमात्र दुरुद्वहानि (भवन्ति)।

अर्थ–निश्चय ही स्त्रियों के लिये प्रिय व्यक्ति के प्रवास (विदेश गमन) से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असहनीय हो जाता है अर्थात् स्त्रियों के लिये प्रिय के परदेस गमन का दुःख अत्यन्त असहनीय होता है।

23. सूक्ति–उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना।

(सप्तम अं. पृ. 645, मातलि का कथन)

अर्थ–महात्माओं की इच्छा ऊर्ध्वगामिनी हुआ करती है। अर्थात् महान लोगों की इच्छा किसी अच्छे उद्देश्य को लेकर या श्रेयस होती है।

24. सूक्ति–उपयन्तर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी"।

(पंचम अंक, श्लोक, 29 पृ. 475)

अन्वय–हि दारेषु उपयन्तुः सर्वतोमुखी प्रभुता।

अर्थ–क्योंकि पत्नी पर पति की सब प्रकार की प्रभुता रहती है अर्थात् पत्नी पर पति का हर प्रकार का अधिकार होता है।

25. सूक्ति–एवमात्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विप्रलभ्यते।

अर्थ–इस प्रकार अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार प्रिय व्यक्ति की चित्तवृत्ति की सम्भावना करने वाला प्रेमी धोखा खाता है। अर्थात् अपनी मनःस्थिति के अनुकूल ही अपने प्रिय की मनः स्थिति को मानने वाला प्रेमी अक्सर धोखा खाता है। हो सकता है जिसे वह प्रेम कर रहा है वह प्रेमी की चित्त की स्थिति से अपरिचित हो या विरत हो या प्रतिकूल हो। ऐसी स्थिति धोखे में डाल देती है।

26. सूक्ति–"ओदकान्त स्निग्धोऽनुगम्यते"।

(चतुर्थ अंक, पृ. 379)

अर्थ–स्नेही जन जलाशय तक अनुगमन करते हैं। अर्थात् किसी प्रिय व्यक्ति की विदाई में उसके स्नेही लोग जलाशय तक उसे छोड़ने जाते हैं। आज भी लोक में यह परम्परा जीवित है किसी भी शुभ कार्य के लिये जाने वाले को कुआँ या तालाब या नदी तक छोड़ा जाता है।

27. सूक्ति–औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा, क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव। नातिश्रमापनयनाय यथाश्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 5 पृ. 410)

अन्वय–प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् आवसादयति। लब्धपरिपालनवृत्तिः क्लिश्नाति एव। राज्यम् आत्मपत्रम् इव स्वहस्तघृत दण्डम् अति श्रमापनयनाय न यथा श्रमाय।

अर्थ–प्रतिष्ठा केवल उत्सुकता को दूर करती है। प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा का प्रयत्न क्लेश ही देता है। राज्य अपने हाथ में पकड़े गये दण्ड वाले छत्र की तरह श्रम को कम नहीं करता जितना कि श्रम को बढ़ाता है। अर्थात् किसी वस्तु को प्राप्त करने पर सिर्फ उत्सुकता ही समाप्त होती है। मनुष्य को जब तक उच्च पद प्राप्त नहीं होता तब तक उसके प्रति बड़ी उत्सुकता होती है। किन्तु पद मिल जाने पर उसका उत्तरदायित्व का भार परेशान करता है। जैसे हाथ में पकड़ा हुआ छाता जितना आराम देता है, उससे कही अधिक (उसे थामने का) कष्ट भी देता है उसी प्रकार राज्य राजाओं को जितना सुख देता है उससे कहीं अधिक कष्ट भी देता है। यानी उच्च पद प्राप्ति फूलों का बिस्तर नहीं है।

28. सूक्ति–को नाम सन्ताप निर्वाणहेतुकां शारदीज्योत्सनाम् आप्तपत्रेण निवस्यति।

अर्थ–भला कौन सन्ताप दूर करने वाली शरद काल की चाँदनी को छाते से रोकता है। अर्थात् प्रकृति से प्राप्त सहज सुख को कौन छोड़ता है। यानी सहजता से प्राप्त दैवी सुखों का आनन्द लेना चाहिये न कि अपने तुच्छ प्रयासों से उन्हें या गलती से उन्हें यूँ ही जाने दे।

29. सूक्ति–क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।

अर्थ–आम्र के सिवा और कौन पल्लवित अतिमुक्त लता के योग्य है। अर्थात् सामर्थ्यवान आश्रय देने योग्य होता है।

30. सूक्ति–न कदापि सत्पुरुषाः शोकचित्ता भवन्ति।

(षष्ठ अंक, पृ. 541, विदूषक का कथन)

अर्थ–सत्पुरुष कभी शोकाकुल नहीं होते। अर्थात् सत्पुरुष सुख–दुःख दोनों में समान चित्त होते हैं।

31. सूक्ति–कष्टं खल्वनपत्यता।

(षष्ठ अंक, पृ. 587)

अर्थ–संतान न होना वस्तुतः कष्ट की बात है।

32. सूक्ति–किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाप्कृतीनाम्।

(प्रथम–अंक श्लोक 20)

अन्वय–मधुराणाम् आकृतीनाम् किमिव ही न मण्डनम्।

अर्थ–भला सुन्दर आकृति वालों के लिये कौन सी वस्तु अलंकार नहीं होती अर्थात् सुन्दर आकृति वाले जो पहन लें वही अलंकार हो जाता है।

33. सूक्ति–कस्तावदुष्णोदकेन नवमलिकांसिंचन्ति?

(चतुर्थ अंक, पृ. 322)

अर्थ–भला कौन गरम जल से नव मालिका को सींचेगा। अर्थात् गरम जल से नवमालिका सींची जाने पर वह नष्ट हो जायेगी। अतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी प्रेम करने वाले मन को कटुवचन नवमलिका के सिंचन के लिये गरम जल की ही भाँति प्रतीत होते हैं, जिससे उनके मन में नव पल्लवित प्रेमांकुर नष्ट हो जाते हैं।

34. सूक्ति–कोऽन्ये हुतवहात् प्रभवति दग्धुम्?

(चतुर्थ अंक पृ. 317)

अर्थ–अग्नि के सिवा और कौन जला सकता है। अर्थात् उग्र स्वभाव वालों से ही कटुता की आशा की जा सकती है।

35. सूक्ति–गण्डस्योपरि विस्फोटकः सम्वृत्तः।

(द्वितीय अध्याय, पृ. 134)

अर्थ–फोड़े पर फोड़ा हो गया है अर्थात् पहले ही स्थिति ठीक नहीं थी अब और दूसरा संकट आ गया है। 'एक तो करेला वो भी नीम चढ़ा।'

36. सूक्ति–"गुर्वणि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति।"

(चतुर्थ अंक, पृ. 380)

अर्थ–आशा का बन्धन भारी विरह के दुःख को भी सहन कराने में सक्षम है। अर्थात् आशा के सहारे बड़े से बड़ा दुःख सहा जा सकता है।

37. सूक्ति–ग्लपयति यथा शशाङ्क न तथा हि कुमुद्वितीं दिवसः।

(तृतीय अंक, श्लोक, 20 पृ. 247)

अन्वय–हि दिवसः यथा शशाङ्कः ग्लपयति तथा कुमुद्वितीं न।

अर्थ–क्योंकि दिन चन्द्रमा को जितना निष्प्रभ करता है उतना कुमुदिनी को नहीं। अर्थात् दिन का उजाला चन्द्रमा को जितना हतप्रभ कर देता है उतना कुमुदिनी को नहीं, क्योंकि दिन में कुमुदिनी केवल मुरझा जाती है। किन्तु चन्द्रमा का तो अस्तित्व ही प्रायः लुप्त हो जाता है। कहने का मूल भाव है कि एक स्थिति सब पर एक जैसा प्रभाव नहीं डालती। किसी को सिर्फ परेशान भर करती है तो और कोई इतना प्रभावित होता है कि उसका अस्तित्व ही खत्म हो जाता है।

38. सूक्ति–छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे, शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।

(सप्तम अंकः श्लोक 32, पृ. 397)

अन्यव–मलोपहतप्रसादे दर्पणतले छाया न मूर्च्छति, शुद्धे तु सुलभावकाशा।

अर्थ–मैल के कारण निर्मलता के नष्ट हो जाने पर शीशे में प्रतिबिम्ब साफ नहीं झलकता है किन्तु शीशे के स्वच्छ रहने पर प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देता है। अर्थात् किसी गलत समझ के कारण हो सकता है कोई स्थिति कष्टदायी या प्रतिकूल हो जाय पर यदि वो गलत समझ दूर हो जाती है तो वहीं स्थिति अनुकूल हो जाती हैं।

38. सूक्ति–

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते। तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः।

(षष्ठ अंक, श्लोक 37, पृ. 617)

अन्वय–अग्निः चलितेन्धनः ज्वलयति, पन्नगः विप्रकृतः फणां कुरुते। तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः तेजः प्रतिपद्यते।

अर्थ–अग्नि ईंधन के हिलाने मात्र से धधक उठती है। साँप छेड़ने पर फन फैलाता है। इसी प्रकार तेजस्वी पुरुष उत्तेजना पाने पर अपना तेज प्रकट करते हैं। अर्थात् उन्हें थोड़ा सा प्रेरित करने पर ही तेजस्वी होकर कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं।

40. सूक्ति–तेजोद्वयस्य

युगपद्व्यसनोद्याभ्यां,

लोकोनियम्यत इदैष दशान्तरेषु।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 2, पृ. 325)

अन्वय–एष लोकः तेजोद्वयस्य युग्पद्व्यसनोदयाभ्याम् दशान्तरेषु नियम्यत इव।

अर्थ–यह संसार दो तेजो के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा अवस्थाविशेषों में मानो शिक्षित किया जा रहा है। अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य अपनी–अपनी अवनति और उन्नति के द्वारा हमें यह शिक्षा देते हैं कि अवनति और उन्नति परिवर्तनशील है। अतएव मनुष्य को इन दोनों स्थितियों में समभाव से रहना चाहिये। अर्थात् न तो अवनति में शोक से घबराना चाहिये और न उन्नति में हर्ष से फूलना ही चाहिये।

41. सूक्ति–

न खलु कश्चिदविषयो नाम धीमताम्।

(चतुर्थ अंक, पृ. 386)

अर्थ–विद्वानों के लिये कोई वस्तु अगम्य नहीं है अर्थात् वे अपने गुण से सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

42. सूक्ति–ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा एव गिरयः।

अर्थ–प्रचण्ड वायु में भी पर्वत चलायमान नहीं होते। अर्थात् जीवन की हजारों विषय परिस्थितियों में भी धैर्यवान अपना सन्तुलन नहीं खोते बल्कि उनसे लड़ते हैं और अपना अभिप्रेत प्राप्त करते हैं।

43. सूक्ति–न प्रभावतरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात्।

(प्रथम अंक, श्लोक 28, पृ. 104)

अन्वयः प्रभातरलं ज्योतिः वसुधातलात् न उदेति।

अर्थ–कान्ति से चमकने वाली ज्योति (बिजली) भूतल से उत्पन्न नहीं होती है। अर्थात् कोई भी दिव्य वस्तु किसी निक्रिष्ट स्थान से नहीं उपजती उसका जन्म ही उसके संस्कारों से झलकता है।

44. सूक्ति–पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते।

(सप्तम अंक, श्लोक 13, पृ. 646)

अन्वय–पूर्वावधीरितं श्रेयः दुःखं हि परिवर्तते।

अर्थ–पहले तिरस्कृत किया गया कल्याण बाद में दुःख रूप में ही परिवर्तित होता है। अर्थात् जो अज्ञानतावश पहले अपने श्रेयस को त्याग देते हैं वे बाद में दुःखी ही होते हैं। अतः बहुत सोच समझ कर किसी भी परिस्थिति में व्यवहार करना चाहिये।

45. सूक्ति–बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।

(प्रथम अंक, श्लोक 2, पृ. 12)

अन्वय–शिशितानां चेतः बलवत् अपि आत्मनि अप्रत्ययम्।

अर्थ–शिक्षित व्यक्तियों का चित्त दृढ़ होने पर भी अपने विषय में अविश्वासयुक्त होता है। अर्थात् उन्हें वह सन्देह बना रहता है कि विद्वान लोग हमारे कार्य से संतुष्ट होंगे या नहीं।

46. सूक्ति–भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः। अनुबद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एवैष परोपकारिणाम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 13, पृ. 434)

अन्वय–तरवः फलोद्गमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नवाम्बुभिः दुरबिलम्बिनः (भवन्ति)। सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)। एष परोपकारिणाम स्वभाव एव।

अर्थ–वृक्ष फलों के लगने से झुक जाते हैं। मेघ नये जल को धारण करने पर बहुत नीचे आ जाते हैं। सज्जन लोग ऐश्वर्यवान होकर भी विनम्र हो जाते हैं। यही परोपकारियों का स्वभाव है। अर्थात् परोपकारी महद्जन उपलब्धियों पर घमण्ड न करके उनसे दूसरों को लाभान्वित करते हैं।

47. सूक्ति–भवितव्यानाम् द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। (प्रथम अंक, श्लोक 16, पृ. 50)

अन्वय–भवितव्यानाम् द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति।

अर्थ–होने वाली बातों के द्वार सब जगह होते हैं। अर्थात् होनी कही भी घटित हो सकती है।

48. सूक्ति–भानुः सकृदयुक्ततुरंग एव, रात्रिन्दिवं गन्धबहः प्रवाति। शेष सदैवाऽहितभूमिभारः, षष्ठांश वृत्तेरपि धर्म एषः।।

(पंचम अंक, श्लोक 4 पृ. 407)

अन्वय–भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव, गन्धवहः रात्रिन्दिवं प्रवाति, शेष सदैव आहित भूमिभारः, षष्ठांशवृत्तेः अपि एष धर्मः।

अर्थ–सूर्य ने एक ही बार घोड़ों को जोता है (जो कि निरंतर चलते रहते हैं) वायु रात दिन बहती है। शेषनाग सदा ही पृथ्वी का भार अपने सिर पर वहन करते हैं। राजा का भी यही धर्म है कि वह सदा अपनी प्रजा का निरंतर पालन करें अर्थात् किसी को भी अपने निर्धारित कर्तव्य से नहीं भागना चाहिए।

49. सूक्ति–मलिनापि हिमांशोर्लक्ष्य लक्ष्मीं तनोति। (प्रथम अध्याय, श्लोक 20, पृ. 61)

अन्वय–मलिनं लक्ष्म अपि हिमांशोः लक्ष्मीं तनोति।

अर्थ–काला धब्बा भी चन्द्रमा की शोभा बढ़ाता है अर्थात् महान लोगों का एक अवगुण भी उनके गुणों की शोभा बढ़ाता है। उन्हें महान बनाता है।

50. सूक्ति–
रम्याणि, वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं,
भावस्थिराणि जननान्तरसौ हृदानि।।

(पंचम अंक, श्लोक 9, पृ. 423)

अन्वय–रम्याणि वीक्ष्य मधुरान शब्दान–निशम्य च सुखितः अपि जन्तुः यत् पर्युत्सुकः भवति तत् नूनं भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि अबोधपूर्वं चेतसा स्मरति।

अर्थ–रमणीय वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर सुखी प्राणी भी जो उत्कंठित हो जाता है सो निश्चय ही संस्कार या वासना रूप पूर्व जन्म के प्रणयादि सम्बन्धों को बिना जाने ही मन में स्मरण करता है। अर्थात् कोई सुन्दर वस्तु या मधुर आवाज से यदि मन अचानक प्रभावित होकर उत्कंठा से भर उठता है यह सम्भवतः जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों के परिणाम स्वरूप ही स्पन्दन होता है।

51. सूक्ति–लभेत वा प्रार्थयिता वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत।। (तृतीय अंक, श्लोक 16, पृ. 240)

अन्वय–प्रार्थयिता श्रियं लभेत वा न वा, श्रिया ईप्सितः कथं दुरापः भवेत?

अर्थ–प्रार्थी व्यक्ति लक्ष्मी पाये या न पाये किन्तु लक्ष्मी के द्वारा चाहा हुआ व्यक्ति कैसे (लक्ष्मी के लिये) दुर्लभ हो सकता है। अर्थात् जिसे लक्ष्मी स्वयं वरण कर ले वह उसके लिये अलभ्य नहीं है और जो लक्ष्मी को चाहते हैं हो सकता है उन्हें लक्ष्मी मिले या न मिले।

52. सूक्ति–वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती। (प्रथम अंक, श्लोक 25, पृ. 80)

अन्वय–वयं तत्वान्वेषात् हताः तत्वं खलु कृती।

अर्थ–हम तो वास्तविकता की खोज ही करते रह गये और तू कृतार्थ हो गया। अर्थात् किसी भी सुअवसर को सिर्फ तत्वान्वेषण में ही नहीं गंवा देना उचित है। बल्कि उसका समुचित लाभ शीघ्र उठाना चाहिए।

53. सूक्ति–वशिनं हि परपरिग्रहसंश्लेषपरांगमुखी वृत्तिः। (पंचम अंक, श्लोक 31, पृ. 479)

अन्वय–हि वशिनां वृत्तिः परपरिग्रह संश्लेषपराङ्मुखी।

अर्थ–क्योंकि जितेन्द्रिय पुरुषों की वृत्ति पराई स्त्री के सम्पर्क से विमुख होती है। अर्थात् जिन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया है वे पराई स्त्रियों के सम्पर्क से दूर ही रहते हैं।

54. सूक्ति–शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने, भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः। भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी, यान्त्येवं गृहणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 20, पृ. 386)

अन्वय–गुरुन् शुश्रूष्सव, सपत्नीजने प्रियसखीवत्तिं कुरु, विप्रकृतापि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणाभव, भोगेषु अनुत्सेकिनी (भव)। एवं युवतयः गृहिणीपदं यान्ति, वामा कुलस्य आधयः।

अर्थ–गुरुजनों की सेवा करो, सौतों से प्रिय सखी का सा व्यवहार करो, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध में आकर स्वामी (पति) से प्रतिकूल व्यवहार मत करो। आश्रित जनों के प्रति अधिकाधिक उदार बनो। भोगों को पाकर अभिमान मत करो। इस प्रकार बरतने वाली युवतियाँ गृहिणी के पद को प्राप्त करती हैं और इसके विपरीत चलने वाली (युवतियाँ) कुल के लिये संताप कारक होती हैं। अर्थात् भारतीय सुगृहिणी में उक्त सभी लक्षण होने चाहिये।

55. सूक्ति–सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणवृत्तयः।

(प्रथम अंक, श्लोक 23, पृ. 75)

अन्वय–संदेहपदेषु वस्तुषु सताम अन्तःकरणवृत्तयः हि प्रमाणम्।

अर्थ–संदेहास्पद विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियां ही प्रमाण होती हैं। अर्थात् सज्जन लोगों का स्वभाव संदेहास्पद विषय में भी समुचित रूप से ही चिंतन करता है। उनके चरित्र प्रमाण होते हैं।

56. सतीमपि ज्ञाति कुलैक संश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमती विशंकते। अतः समीपे परिणेतुरिष्यते, प्रियऽप्रिया च प्रमदा स्वबन्धुभिः।।

(पंचम अंक, श्लोक 18, पृ. 446)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वय–ज्ञातिकुलेकसश्रयां भर्तृमतीं सतीम् अपि जनः अन्यथा विशङ्कते। अतः स्वबन्धुभिः प्रमदा प्रिया अप्रिया च परिणेतुः समीपे इष्यते।

अर्थ–एकमात्र पितृ कुल में रहने वाली सधवा स्त्री को साध्वी होने पर भी लोग अन्य प्रकार की शंका करते हैं। अतः अपने बन्धुओं द्वारा युवती स्त्री अपने पति की प्रिया या अप्रिया होने पर भी पति के पास ही रहने के लिये उचित समझा जाता है। अर्थात् विवाहित स्त्री पति को प्रिय हो या न हो वो अपने पति के घर ही रहे यही लोग उचित समझते हैं।

57. सूक्ति–सरसिजमनुबिद्धं शैवलेनापि रम्यम्। (प्रथम अंक, श्लोक 20, पृ. 61)

अन्वय–शैवलेन अनुविद्धम् अपि सरसिजं रम्यम्।

अर्थ–सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है। अर्थात् अच्छे लोग बुराइयों से घिरे होकर भी हमेशा अपना स्वभाव नहीं छोड़ते यानी वे अच्छे ही होते हैं। उन पर आस–पास की बुराई का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

58. सूक्ति–सर्वः प्रार्थितमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः। (पंचम अंक, पृ. 409)

अर्थ–सभी लोग (यहाँ तक कि जानवर भी) अभीष्ट वस्तु पाकर सुखी होते हैं।

59. सूक्ति–सर्वः स्वगणे विश्वसिति।

(पंचम अंक, पृ. 461)

अर्थ–सभी अपने जनों पर ही विश्वास करते हैं।

60. सूक्ति–सहजं किल यद्विनिन्दितं न तु तत् कर्म विवर्जनीयकम्, पशुमारणकर्म–दारूणोऽनुकम्पामृदुकोऽपि श्रोत्रियः।

(पंचम अंक, श्लोक 1, पृ. 494)

अन्वय–विनिन्दितं यत् कर्म किल सहजं तत् न तु विवर्जनीयकम्। अनुकम्पामृदुकः अपि श्रोत्रियः पशुमारणकर्मदारूणः।

अर्थ–निन्दनीय होता हुआ भी जो कर्म स्वाभाविक अर्थात् वंश परम्परा से प्राप्त है, उसे नहीं छोड़ना चाहिये। दया से कोमल हृदय वैदिक ब्राह्मण भी विशिष्ट यज्ञों में पशु हत्या जैसा क्रूर कर्म करता ही है। वहाँ वह भी स्वभावतः दयावान होकर भी दया का परित्याग कर अपनी वंश परम्परानुसार कर्म करता है।

61. सूक्ति–सागरमुज्झित्वा कस्मिन महानद्या प्रवेष्टव्यम्।(तृतीय अंक, पृ. 232)

अर्थ–महानदी समुद्र को छोड़कर किसमें प्रवेश करें? अर्थात् कौन ऐसा समर्थ है जो उसके तीव्र बहाव को धारण कर सकता है। जीवन में महान लोग अपने से भी महनीय की शरण में ही जाते हैं। वे ही उन्हें अपने में समाहित करने में समर्थ हैं।

62. सूक्ति–स्निग्धजनसंविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति।

अर्थ–निश्चय ही स्नेही जनों में बाँटा हुआ दुःख सह्य हो जाता है। अर्थात् यदि दुःखी मनुष्य अपने प्रिय जनों के साथ दुःख बांट लेता है (कह लेता है) तो वह कम हो जाने से सहनीय हो जाता है।

63. सूक्ति–सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः, संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। किं प्राभविष्यदरूणस्मसां वधाय, तञ्चेत् सहस्रकिरणों धुरि ना करिष्यत्।(सप्तम अंक, श्लोक 4, पृ. 626)

अन्वय–महत्सु कर्मसु अपि नियोज्याः सिद्धयन्ति (इति) यत् तम् ईश्वराणां सम्भावनागुणम् अवेहि। किम् अरूणः तमसां बधाय प्राभविष्यत् चेत सहस्रकिरणः तं धुरि न अकरिष्यत्।।

अर्थ–महान कार्यों में यदि सेवक सफल हो जाते हैं तो यह उनके स्वामियों के गौरव की ही महिमा समझनी चाहिये। क्या अरूण अन्धकार को नष्ट करने में समर्थ होता यदि सूर्य उसे अपने रथ में आगे बैठने के लिये आवेशित न करते। अर्थात् यदि कोई सेवक महान कार्य करे तो उसमें भी उसके स्वामी की ही कृपा समझना चाहिये। वरना वे अपनी हैसियत से बड़ा कार्य नहीं कर सकते।

64. सूक्ति–

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात
मन्यद्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति।।

(पंचम अंक, श्लोक 23, पृ. 463)

अन्वय–अमानुषीणां स्त्रीणाम् (अपि) अशिक्षितमदुत्वं सदृश्यते, याः परिबोधवत्यः (तासां) किमुत? परभृताः अन्तरिक्षगमनात् प्राक् स्वम् अपत्यजातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति किल।

अर्थ–मनुष्य जाति के अलावा (पशु पक्षी आदि की जाति) की स्त्रियों में भी बिना शिक्षा के स्वभावतः चतुरता देखी जाती है। तो फिर जो ज्ञान सम्पन्न है उनका तो कहना ही क्या। कोयलें आकाश में जाने से पूर्व अपने बच्चों का अन्य पक्षियों से पालन पोषण करवाती हैं। अर्थात् चतुरता की कला जरूरी नहीं शिक्षित में ही हो, अशिक्षित में भी स्वभाव से ही आ जाती है।

65. सूक्ति–स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया। (सप्तम अंक पृ. 677)

अन्वय–अन्धः शिरसि क्षिप्तां स्रजम अपि अहिशङ्कया धुनोति।

अर्थ–अंधे के सिर पर डाली गई पुष्प माला को भी वह सांप की आशंका से फेंक देता है। अर्थात् अयोग्य व्यक्ति को यदि कोई कीमती वस्तु भी दी जाय तो वह उसकी कीमत नहीं समझता उसे खो देता है।

66. सूक्ति–स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः।

(पंचम अंक, पृ. 449)

अर्थ–सिद्धियों से सम्पन्न व्यक्तियों की कुशल उनके अपने आधीन होती है। अर्थात् वे अपनी कुशलता का मार्ग स्वयं बनाते हैं।●

संपर्क : 'सांझी प्रिया', बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ–226029

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'

डॉ. शान्ता चटर्जी

महाकवि कालिदास की रचनाओं की लोकोत्तरता का सर्वप्रमुख निदर्शन यह है कि आन्तरिक अर्थ में ही ये रचनायें देश और काल की सीमाओं को पार कर जाती है। बाणभट्ट, राजशेखर, मल्लिनाथ जैसे सुप्राचीन विद्वानों को ही नहीं, सभी काल के साहित्य वेत्ताओं को, समालोचकों को अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेती है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध बंगला कवि एवं नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है।

द्विजेन्द्रलाल राय स्वयं भी नाटककार थे "चन्द्रगुप्त", "शाहजहाँ" इत्यादि ऐतिहासिक नाटकों के रचनाकार, द्विजेन्द्रलाल के नाटक बार–बार अभिनीत हैं तथा हिन्दी इत्यादि भाषा में अनुवाद भी हुआ है। स्वाभाविक रूप से उन्होंने कालिदास के नाटकों की ही समीक्षा की है। उसमें भी मूलतः 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का (बांगला भाषा में प्रकाशित) "साहित्य" नामक एक मासिक पत्रिका में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और उत्तररामचरित की समीक्षा उन्होंने कई अंकों में विस्तारित रूप से की थी। ये ही निबन्ध बाद में लगभग 1929 में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए थे)।

द्विजेन्द्रलाल पुनर्जागरण काल के विद्वान् थे। उनके सामने संस्कृत नाटकों के साथ–साथ अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच साहित्य के अतिरिक्त ग्रीस कवि होमर की रचनायें भी थी, पाश्चात्य काव्य शास्त्र था। जिसके आलोक में उन्होंने दोनों महाकवियों की समीक्षा की है।

सर्वप्रथम दोनों नाटकों के कथानक में किये गये परिवर्तन और मूलकथा स्रोत (अभिज्ञानशाकुन्तल के लिये महाभारत) की तुलना करते हुए दिखाया है कि कवि कालिदास ने अपने नायक को सर्वगुणान्वित बनाने के लिये पूर्ण प्रयास किया है तथापि निपीड़िता नायिका के प्रति कारुण से नायक दुष्यन्त के प्रति कवि का क्रोध उनके हृदय को विदीर्ण कर गैरिकरस की भाँति प्रवाहित हुआ है, पंचम अंक में गौतमी तथा शारङ्गरव की उक्तियाँ इसका निर्दशन हैं।

द्वितीयतः द्विजेन्द्रलाल ने नायक के चरित्र का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को भरसक ऊँचा उठाने और दोषों से रहित बनाने का प्रयास किया है। तथापि कालिदास नायक को उन धीरोदात्त गुणों से युक्त और सर्वजन वन्दनीय, अनुकरणीय नहीं बना सकें जो कि सहजता से भवभूति के उत्तर–रामचरित नायक में हैं, अथवा कालिदास के वर्णित रघुवंशीय राजाओं में है। दुष्यन्त की प्रशंसा करने के संपूर्ण प्रयास के उपरान्त भी कवि उनकी कोई विजयगाथा नहीं सुना पाते। वे रघु के समान दिग्विजयी नहीं है। शाकुन्तलम् के द्वितीय अंक में सेनापति के कथन के माध्यम से महाराज दुष्यन्त की शस्त्रविद्या की जो प्रशंसा की गई है–

'उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले'[1] उससे मात्र यह सिद्ध होता है कि दुष्यन्त शस्त्रविद्या जानते हैं–किसी प्रबल अत्याचारी शत्रु के विरुद्ध खड़े होने, प्रजा की रक्षा करने जैसे गुणों का दर्शन उनमें नहीं होता है, उनका शरीर मृगया के श्रम से कृश हुआ[2] है। प्रजा रक्षा से नहीं, हाँ, केवल इतना कहा जा सकता है कि वह मृगया में धूप और श्रम को सह रहे हैं–अन्तःपुर में होते हुए दिन नहीं काट रहे हैं। फिर क्यों बनाया महाकवि ने दुष्यन्त को विश्वविश्रुत नाटक का नायक ? उनके पास आदर्शों और चरित्रों का कोई अभाव तो नहीं था।

वस्तुतः कालिदास ने महाकाव्यों के नायकों का और नाटकों के नायकों का चयन समान नहीं किया है। महाकाव्यों के नायक के रूप में उन्होंने सर्वथा आदर्शभूत वन्दनीय पात्रों का चयन किया, जो सर्वातिरिक्त और संपन्न, समस्त तेजस्वियों से भी अधिक तेजस्वी सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च अचंचल हो।[3] ऋषि–की होम धेनु के लिये आत्मोत्सर्ग करने के लिये तत्पर दिलीप, विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान करने वाले रघु, सागर पर सेतु बंधन करने वाले

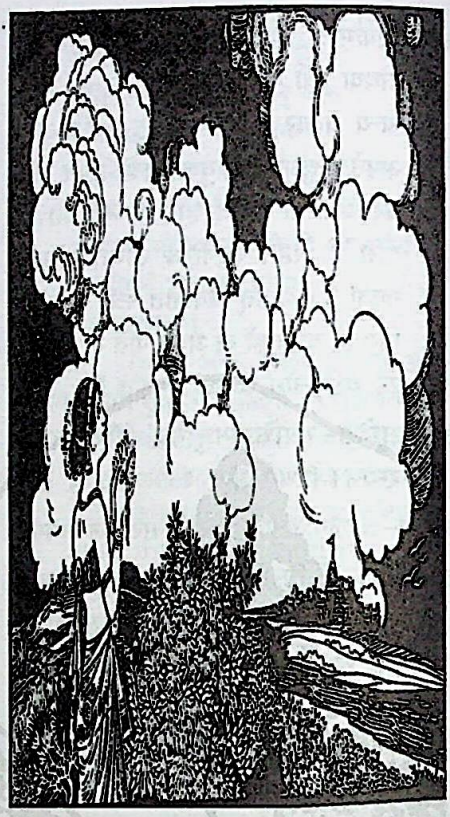

राम महाकाव्य के नायक के रूप में महानायक के रूप में कवि को अभीष्ट है, नाटक के नायक के रूप में नहीं। क्योंकि वे महानायक सामान्य लोक के लिये दुरधिगम्य आदर्श हैं, लोक उनकी यशोगाथा गा सकता है–परन्तु संलापों के माध्यम से उनकी मनोभावनाओं का विश्लेषण नहीं कर सकता है। कुमारसंभव के नायक के समान जो न जाने क्यों तपश्चर्या करता है[4], उसका वाचिक अनुकरण के द्वारा साधारणीकरण उतना सहज नहीं होगा। द्विजेन्द्रलाल राय मानते हैं कि इसीलिये महाकवि कालिदास ने एक ऐसे राजा को नायक के रूप में चुना जो पूर्ण मानव हो, अच्छाई और बुराई के द्वन्द्व से घिरा हुआ उत्थान पतनशील मानव।

दुष्यन्त प्रथम अंक में आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् बहुत ही सामान्य दिखायी देते हैं। छिप कर लड़कियों को देखना उनकी बातें

1. शाकुन्तलम्। अंक–2 श्लोक 5, 2. शाकुन्तलम्। अंक–2 श्लोक 4 तथा 5, 3. रघुवंश। सर्ग–1 श्लोक–14, 4. कुमार–सर्ग 1 श्लोक 57,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनना और पूछे जाने पर भी अपना सत्य परिचय न देना–राजोचित गरिमा से उसके पतन का सूत्रपात है। यद्यपि उसके लिये कालिदास 'राजर्षि' शब्द का प्रयोग करते हैं पर वे जानते हैं कि दुष्यन्त का यह यश उसके चारणों के द्वारा गाया गया यश[1] है; जन–जन में स्वतः प्रसारित नहीं है। राम के समान 'पौरकान्त' नहीं हैं दुष्यन्त। उन्हें याद दिलाना पड़ता है–"आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि"[2] और उसी द्वितीय अंक में राजधानी की ओर प्रत्यावर्तित होने वाले मित्र विदूषक से शकुन्तला के लिये अपने व्यक्त किये गये मनोभाव का अपलाप[3] कर लेना राजा दुष्यन्त को पतन की एक और सीढ़ी उतारता है। जिस प्रेम को वह राजधानी और राज अन्तः पुर में स्वीकार करने में संकोच करते हैं–उसी प्रेम की प्राप्ति के लिये वे पिता काश्यप के सोमतीर्थ से वापस आने की प्रतीक्षा नहीं कर पाते। ये ऐसे बिन्दु हैं–जिस पर दुर्वासा का अभिशाप भी पर्दा नहीं डाल पाता।

द्विजेन्द्रलाल राय–इसके पश्चात् दुष्यन्त के उत्थान और उत्थान के प्रयासों को भी दर्शाते हैं और इसका प्रारम्भ पंचम अंक में होते हुए दिखता है। जब वह अपुत्रक अवस्था में मृत सार्थवाह की सम्पत्ति राजकोष में सम्मिलित नहीं करते, उसके भावी उत्तराधिकारी के लिये सुरक्षित रखने का आदेश देते हैं। इससे भी बढ़कर उन्होंने स्वयं को प्रजा के प्रत्येक बिछड़े हुए प्रियजन के रूप में घोषणा की।[4] यह प्रशासकीय उत्तरदायित्व की सीमा को पार कर आत्मीय स्पर्श है। अपने प्रेम और विरह से ऊपर उठते हुए 'स्वसुखनिरभिलाष'[5] होते हुए दुष्यन्त। परन्तु दुष्यन्त का वास्तविक संघर्ष पंचम अंक में है। वही अव्याजमनोहर शकुन्तला पुनः आकर उनके सामने उपस्थित है उसके प्रति किंचित् मात्र आकर्षित नहीं होते हैं, कारण–वह अब परिणीता स्त्री है। वे ऋषियों के दुवर्चनों को उस समय मर्यादा के कारण सहते हैं। जिस समय वह स्वयं को निरपराध जान रहे होते हैं। यहाँ तक कि नारी की करुण और दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति के कारण अपने ऊपर लगाये गये लांछनों के उपरान्त भी वह दुःखिनी शकुन्तला को विश्वास कराना चाहते हैं[6]। द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि में यहीं दुष्यन्त एक पूर्ण मानव के रूप में विकसित होते हैं। "हाँ एकता मानुष वटे।"[7]

इस प्रकार से द्विजेन्द्रलाल राय शकुन्तला के चरित्र निर्माण में कालिदास का विशेषत्व, अभिज्ञान शाकुन्तलम् के नाट्यतत्व, काव्यकला, प्रकृति वर्णन का सम्यक् विश्लेषण करते हैं इनमें से प्रत्येक बिन्दु का उल्लेख न करने पर भी यहाँ एक बात का दिग्दर्शन कराना चाहती हूँ– द्विजेन्द्रलाल राय ने कालिदास की कविता को समझाने के लिये पंचम अंक के 'रम्याणि वीक्ष्य'[8] इत्यादि श्लोक का विश्लेषण करके दिखाया है–इस प्रकार की कविता न केवल संस्कृत साहित्य में अपितु विश्व के अन्य भाषाओं के साहित्य में भी अनुपलब्ध है।

द्विजेन्द्रलाल राय कहते हैं–घटनाओं के वैचित्र्य से, कल्पना की कोमलता से, भाषा की सरलता से अभिज्ञान शाकुन्तल श्रेष्ठ है। कालिदास की विश्वजनीन प्रतिभा का प्रधान लक्षण यही है कि दो हजार वर्ष पूर्व लिखित यह नाटक प्राचीन और नवीन अलंकार शास्त्रों को सन्तुष्ट करता हुआ, आचार, नीति तथा अवधारणाओं के परिवर्तनों को तुच्छ करता हुआ समस्त समालोचकों की तीव्र दृष्टियों के सामने अचल पर्वत के समान सगर्व खड़ा है, वह रचना उषा के उदय के समान उस दिन जितनी सुन्दर थी आज भी उतनी सुन्दर है।[9]

कालिदास की निरंकुशता–महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार

महावीर प्रसाद द्विवेदी कालिदास को संस्कृत कविता रूपी आकाश का पूर्ण चन्द्र कहते हैं किन्तु उनकी निरंकुशता पर उन्होंने इस प्रकार विचार किया है–अपने इष्ट शंकर पार्वती का श्रृंगार वर्णन, उपमा हीनता, उद्वेग जनक स्थिति, अनौचित्य दर्शक उक्ति, रस संबंधी अनौचित्य, व्याकरण की अशुद्धियाँ, इतिहास संबंधी अनौचित्य, यतिभंग, पुनरुक्ति, अधिकपदत्व, श्रुतिकटुत्व, जगुप्सा–ग्राम्य भाव अविमृष्ट विधेयांश, क्रमभंगता–इनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है।●

महाकवि कालिदास की रचनाओं की लोकोत्तरता का सर्वप्रमुख निदर्शन यह है कि आन्तरिक अर्थ में ही ये रचनायें देश और काल की सीमाओं को पार कर जाती है। बाणभट्ट, राजशेखर, मल्लिनाथ जैसे सुप्राचीन विद्वानों को ही नहीं, सभी काल के साहित्य वेत्ताओं को, समालोचकों को अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेती है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध बंगला कवि एवं नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की दृष्टि का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है।

द्विजेन्द्रलाल राय स्वयं भी नाटककार थे "चन्द्रगुप्त", "शाहजहाँ" इत्यादि ऐतिहासिक नाटकों के रचनाकार, द्विजेन्द्रलाल के नाटक बार–बार अभिनीत हैं तथा हिन्दी इत्यादि भाषा में अनुवाद भी हुआ है, स्वाभाविक रूप से उन्होंने कालिदास के नाटकों की ही समीक्षा की है। उसमें भी मूलतः 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का (बांगला भाषा में प्रकाशित "साहित्य" नामक एक मासिक पत्रिका में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' और उत्तररामचरित की समीक्षा उन्होंने कई अंकों में विस्तारित रूप से की थी। ये ही निबन्ध बाद में लगभग 1929 में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुए थे)।

द्विजेन्द्रलाल पुनर्जागरण काल के विद्वान् थे। उनके सामने संस्कृत नाटकों के साथ–साथ अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच साहित्य के अतिरिक्त ग्रीस कवि होमर की रचनायें भी थी, पाश्चात्य काव्य शास्त्र था। जिसके आलोक में उन्होंने दोनों महाकवियों की समीक्षा की है।

संपर्क : रीडर–संस्कृत विभाग, वसन्त कन्या महाविद्यालय कमच्छा, वाराणसी।

1. शाकुन्तल अंक–२ श्लोक 15 2. वहीं अंक 1 श्लोक 11, 3. वहीं अंक–2 श्लोक–11, 4. अभिज्ञान शाकुन्तल अंक–6 श्लोक 23, 5. वहीं अंक–5 श्लोक–7, 6. वहीं अंक–7 श्लोक 24, 7. कालिदास और भवभूति–अध्याय–3 8. शाकुन्तल अंक–5 श्लोक 2, 9. कालिदास और भवभूति–द्विजेन्द्रलाल राय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंग–प्रयोग की दृष्टि से 'विक्रमोर्वशीयम्' का चतुर्थ अंक

प्रो. कृष्णकान्त शर्मा

संस्कृत साहित्य का गद्य–पद्यमय श्रव्यकाव्यात्मक स्वरूप जैसा वैभवपूर्ण है, वैसा ही समृद्धिशाली है उसका दृश्य काव्यात्मक स्वरूप। कविकुलगुरु कालिदास ने काव्य के इन दोनों–श्रव्य और दृश्य–स्वरूपों को अपनी लेखनी से गौरवान्वित किया है। यह अनुभूत सत्य है कि श्रव्यवस्तु के श्रवण जनित आनन्द की अपेक्षा दृश्यवस्तु के दर्शन जनित आनन्द में अधिक आकर्षण और प्रभूत प्रभाव होता है। दृश्यवस्तु भी केवल दृश्यतत्त्व से युक्त हो तो उतनी आकर्षक नहीं होती जितनी श्रव्यतत्त्व से युक्त होकर आकर्षित करती है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से भी यही स्पष्ट होता है। देवताओं ने ब्रह्माजी से ऐसा खिलौना माँगा है जिसे देखा जा सके और सुना भी जा सके–क्रीडनीय–कमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दृश्यकाव्य में श्रव्यता का महत्त्व कम नहीं है।

महाकवि कालिदास की लेखनी से प्रसूत तीन दृश्यकाव्यों–मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्–में मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् रूपक के दस भेदों में से सर्वप्रमुख तथा प्रथम भेद नाटक के अन्तर्गत गिने जाते हैं तथा विक्रमोर्वशीयम् की गणना उपरूपकों के अठारह भेदों में से दिव्यपात्रप्रधान भेद त्रोटक के अन्तर्गत की जाती है। रूपक अथवा उपरूपक कोई भी नाट्यविधा हो, उसके द्वारा विभिन्न रूचियों वाले दर्शकों का एक साथ समाराधन होता है यह स्वयं कालिदास का उद्घोष है। मालविकाग्निमित्रम् में नाट्याचार्य गणदास के माध्यम से महाकवि की उक्ति है–

> देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं
> रूद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।
> त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
> नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।

यूँ तो कालिदास की तीनों नाट्य कृतियां मंच प्रस्तुति की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण हैं पर उनमें विक्रमोर्वशीयम् की चुनौती शेष दोनों से भिन्न प्रकार की है। विशेषतः उसका चतुर्थ अंक अपनी रंगमंचीय विशेषताओं के कारण–जिनमें प्राचीन 'रंग–प्रयोग' की पारिभाषिक शब्दावली द्वारा प्रचुर नाट्य निर्देश प्राप्त होता है–प्रस्तोता को अत्यन्त सावधानी और कल्पना दोनों के सामंजस्य के लिये प्रेरित करता है। नाट्यशास्त्र में उल्लिखित ध्रुवाओं–प्रावेशिकी, आक्षिप्तिका के अतिरिक्त द्विपदिका, खण्डधारा, चर्चरी, खुरक, खण्डक आदि विशेष गीत प्रकारों का उल्लेख वर्तमान समय में नाट्य प्रस्तुति में विशेष सूझबूझ की अपेक्षा रखता है। इसके साथ त्रोटक के इस चतुर्थ अंक की कथावस्तु देखें तो प्रारम्भ में प्रवेशक में दो अप्सराओं के संवाद और अंक के अंत में लतारूप से पुनः मानव–देह में परिणत उर्वशी के कुछ संवाद छोड़कर शेष सम्पूर्ण अंक वियोगी विक्षिप्त पुरूरवा का एकालाप है। इसके विस्तार की कल्पना इस आधार पर अत्यन्त सहजता से की जा सकती है कि श्लोक संख्या 6 से लेकर श्लोक संख्या 67 तक केवल पुरूरवा का विलाप ही विलाप चलता है। इस सुदीर्घ विलाप के साक्षी हैं उस सघन वन प्रान्त के निवासी अनेक पशु–पक्षी, पर्वत, कन्दरा, नदी और मेघ। कालिदास प्रकृति के पुजारी हैं। कालिदास की प्रकृति निरी पेड़–पौधों से युक्त नहीं है, वह भी सहृदय मनुष्यों की भाँति सुख–दुःख आदि भावों से भरी हुई, कुछ कहती, कुछ सुनती, कभी प्रश्न करती, कभी उलाहना देती दिखाई देती है। उर्वशी के लता रूप में परिणत हो जाने पर वियोग से उन्मत्त पुरूरवा को प्रकृति के विभिन्न उपादानों में अपनी प्रिया ही दिखाई देती है। जंगल में भटकता, मारा–मारा फिरता राजा हर पशु–पक्षी से उर्वशी को लौटा देने की याचना करता है। चतुर्थ अंक के इस लम्बे विलाप भरे कथाक्रम को मंच प्रस्तुति की दृष्टि से रोचक बनाये रखना विशेष परिकल्पना से ही संभव है।

विगत तीन वर्षों (2003, 04, 05) में 'विक्रमोर्वशीयम्' को मूल संस्कृत रूप में वाराणसी तथा भोपाल में मंचित करने के लिये मुझे निर्देशकीय दायित्व दिया गया। जिसका प्रयोजन वाराणसी के सांस्कृतिक शोध केन्द्र 'ज्ञानप्रवाह' द्वारा किया गया। इस सुयोग को प्राचीन भारतीय 'रंग–परम्परा' की सेवा का अवसर समझते हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस 'त्रोटक' के मंचन की चुनौतियों को सुलझाने का प्रयास आरम्भ किया। यहाँ चतुर्थ अंक के मंचन संबंधी वर्णन तक ही अपने को मर्यादित रख रहा हूँ। जहाँ तक ध्रुवाओं तथा विभिन्न गीतप्रकारों का संबंध है, उन्हें प्रसंगानुकूल रागों तथा छन्दों की गति से मिलते–जुलते तालों में बाँधा गया। प्रारम्भ में दो सखियों के वार्तालाप के पश्चात् खण्ड धारा 'चिन्तादुम्मिअमाणसिआ' राग खमाज में पंजाबी ताल में रखी है, जो वियोगजन्य दुःख को व्यक्त कर सके। वियोग से उन्मत्त राजा मेघ में चमकती बिजली को राक्षस द्वारा अपहृत उर्वशी समझकर बाद में वास्तविकता जानकर स्वयं को ठगा हुआ पाता है। वर्षाकालीन वर्णन को संगीत के माध्यम से साकार करने के लिये राग मियाँ मल्हार की स्वरावली के साथ मंच पर पीछे दृश्य–बन्ध के रूप में समूह नर्तकों से राक्षस और अप्सरा तथा मेघ और बिजली को प्रस्तुत किया तथा हरिणी वृत्त के पद्य को रूपक ताल में निबद्ध किया। इसके उपरान्त वनप्रान्त के अन्यान्य पशु–पक्षी को प्रत्यक्ष पात्रों के रूप में अलग–अलग क्रम से मंच पर प्रस्तुत किया और दृश्यबन्ध की आवश्यकतानुसार समूह नर्तक वृक्ष, कुंज, पर्वत, सरोवर और नदी के रूप में प्रस्तुत होते रहे। मयूर और परभृत (कोयल) के दृश्यों के लिये वर्षाकालीन दूसरे राग गौड़ मल्हार का प्रयोग किया। हंस से उर्वशी को लौटा देने की याचना को स्वरबद्ध करने के लिये हंसध्वनि राग का आश्रय लिया। इस प्रकार क्रमशः मयूर, परभृत, हंस, गजराज, मृग के रूप में पात्रों के आने से राजा के एकान्त विलाप की नीरसता कम हो गई और मंच पर उनकी उपस्थिति से राजा के एकालाप को पशु–पक्षियों के साथ संवाद का स्वरूप मिल गया। स्वयं महाकवि ने राजा के वचनों के बाद मयूर के नाचना शुरू कर देने पर 'परव्यसननिर्वृतं न खलु एनं पृच्छामि' अर्थात् 'दूसरे के दुख से सुखी होने वाले इस (मयूर) से नहीं पूछूँगा' कहलवा कर प्रकृति और मानव के बीच क्रिया प्रतिक्रिया का सुन्दर उदाहरण सामने रखा है। इसी प्रकार अपने प्रश्न के बाद कोयल की कूक सुनकर राजा कहता है– 'क्या पूछ रही हो ? तुम्हें छोड़कर क्यों चली गई ? सुनो, वह कुपित हो गई थी। पर मैं अपना अपराध नहीं याद कर पा रहा हूँ।' इस प्रकार राजा का एकालाप होने पर भी कालिदास की प्रकृति उसमें भी बोलती, पूछती लगती है और इस प्रकार राजा का उन–उन पात्रों से संवाद होता समझ में आता है। विभिन्न पात्रों संबंधी गिने–चुने पद्यों के साथ बढ़ती कथा के अंत में राजा एक लाल रंग की मणि उठाकर भी प्रिया के बिना उसे निरर्थक जानकर वापस छोड़ देता है। चरम दुःख की यह अभिव्यक्ति राग शिवरंजनी के स्वरों में बाँधी है– 'किमेनमस्त्रोपहतं करोमि' (इसे आँसू से भिगोकर क्या करूँगा ?)। मुनि के प्रबोधन से उसी संगमनीय मणि के प्रभाव से एक लता में उर्वशी की प्रतिकृति दिखी जो स्पर्श करते ही स्वयं उर्वशी बन जाती है। 'लते प्रेक्षस्व विना हृदयेन भ्रमामि' (लता, देखो बिना हृदय के घूम रहा हूँ) यह पद्य किरवानी राग के स्वरों से दुःखानुभूति को साकार करता है, किन्तु उर्वशी के प्रकट होने पर राजा–रानी के मिलन के दृश्य को देख प्रकृति भी प्रसन्न होती है और तालवद्ध किरवानी की गत पर झूमते–नाचते सभी पशु–पक्षी आनन्द मग्न दिखाई देते हैं। कालिदास की प्रकृति मनुष्य के दुःख से दुःखी है तो उसके सुख से सुखी भी है, अंक की समाप्ति पर प्रकृति के इसी उल्लास को नृत्य के माध्यम से सामने लाकर पूरे अंक की एकान्त उदासी को दूर करने का प्रयास किया गया है।

जहाँ तक ध्रुवाओं तथा विभिन्न गीतप्रकारों का संबंध है, उन्हें प्रसंगानुकूल रागों तथा छन्दों की गति से मिलते–जुलते तालों में बाँधा गया। प्रारम्भ में दो सखियों के वार्तालाप के पश्चात् खण्ड धारा 'चिन्तादुम्मिअमाणसिआ' राग खमाज में पंजाबी ताल में रखी है, जो वियोगजन्य दुख को व्यक्त कर सके। वियोग से उन्मत्त राजा मेघ में चमकती बिजली को राक्षस द्वारा अपहृत उर्वशी समझकर बाद में वास्तविकता जानकर स्वयं को ठगा हुआ पाता है।

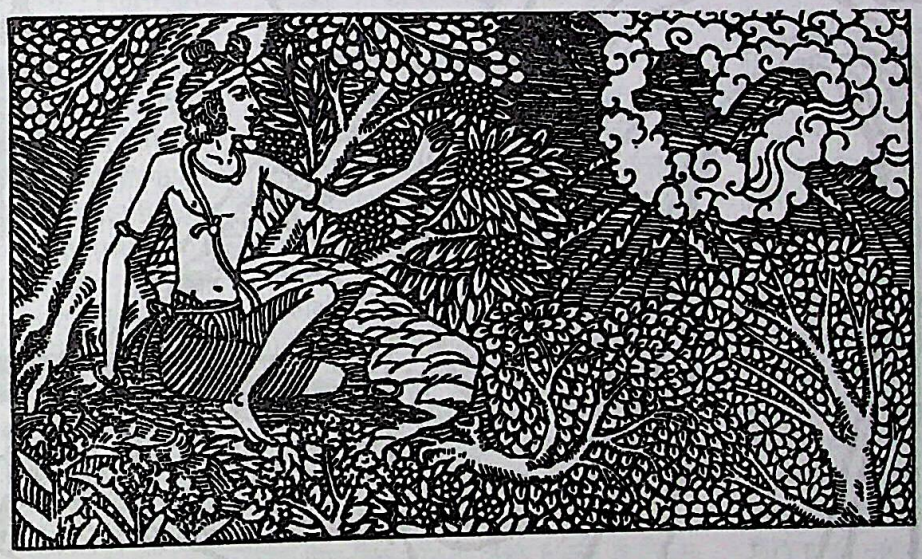

रंगमंच पर प्रयोग करते समय यथासंभव प्राचीन परम्परा के अनुरूप संस्कृत नाट्य प्रयोग किया जाय। इसी दिशा में यह एक विनम्र प्रयास था। समर्थ और अनुभवी निर्देशक अन्यान्य परम्पराओं और नवीन तकनीकों के आधार पर अपनी अलग–अलग कल्पनाओं के द्वारा 'विक्रमोर्वशीयम्' के चतुर्थ अंक का सौन्दर्य चारों दिशाओं में फैलाएँगे ऐसा मेरा विश्वास है।●

संपर्क : संकायप्रमुख, संस्कृत विद्या धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

कालिदास के नाटकों में प्रकृति निरूपण

डॉ. सुनीता यादव

कालिदास निर्विवाद रूप से लौकिक संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन, सौंदर्य भावना और रस चेतना का सुन्दरम् रूप देखने को मिलता है। प्राचीन व आधुनिक तथा पूर्व व पश्चिम के काव्य समीक्षकों ने उन्हें एक स्वर से संस्कृत का सबसे प्रतिभाशाली कवि स्वीकार किया है।

भारतीय परम्परा में वे कवि कुल गुरु के रूप से विख्यात रहे हैं। मेधावी होने के साथ ही कालिदास में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा थी। ये नितान्त सौंदर्योपासक तथा विविध युगगणमण्डित महाकवि थे। उनके काव्यों की भाषा तथा भाव कला और अभिव्यंजनाओं ने कवि को अनुपम स्थान प्रदान किया है। इनकी रस मर्मज्ञता शब्द–शक्ति एवं रचना प्रौढ़ता देखते ही बनती है। इनकी बुद्धि स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन करने वाली थी। कालिदास को भारतीय कवियों में सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त है। भारतीय विद्वानों कवियों और समालोचकों सहित सर्वसाधारण जनता ने कालिदास को जो महत्व तथा सम्मान दिया इसी में उनको राष्ट्रीय कवि के पद पर प्रतिष्ठित किया। वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति में ही ईश्वर के सर्वशक्तिमान स्वरूप के दर्शन होते हैं। महाकवि कालिदास प्रकृति के मनोरम व्यापारों के निर्देशन में पटु हैं। प्रकृति के साथ कालिदास की अपूर्व सहानुभूति हैं। ये कोमल रूप के उपासक हैं। भवभूति के समान उग्र रूप में इनका प्रेम नहीं है। कालिदास ने नम्रता से परिपूरित एवं धर्म और माधुर्य से मिश्रित सौंदर्य को तो अपने काव्य में प्रतिष्ठापित किया ही है, केवल बाहरी सौंदर्य को नहीं, कालिदास का सौंदर्य घनिष्ठता में एकाकी किन्तु व्यापकता में सारे संसार को अपनी गोद में लिए हुए हैं। जैसे नदी समुद्र में मिलकर असीम शक्ति सुख पाती है। गृहस्थाश्रम का बंधन और आत्मा की स्वतंत्रता अर्थात् सन्यास एवं गृहस्थाश्रम का मेल ही कालिदास का काव्य–कौशल है। कालिदास उपमा के प्रसिद्ध कवि हैं एवं प्राचीन समालोचकों ने उपमा कालिदासस्य इस प्रकार के वचन से उनको प्रशंसित किया है। कालिदास की उपमाओं के अनुसार सौंदर्य स्वाभाविकता, तीक्ष्णता, सजीवता और प्रकरणोपयोगिता आदि गुण अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। वे न केवल भौतिक पदार्थों को ही उपमान बनते हैं बल्कि ज्योतिष व्याकरण, दर्शनशास्त्र, आदि के विषय को भी उनका उपमान बनाते हैं। उनकी सभी रचना इस सौंदर्य में विभूषित है। उपमाओं का उज्ज्वल सौंदर्य पद–पद पर इसमें सौंदर्य को विभाजित करता है। समुद्र की विशालता की अभिव्यक्ति साक्षात विष्णु को उपमान बनाकर दी गयी है, जिस प्रकार विष्णु के शरीर की इयता नहीं है, उसी प्रकार समुद्र की विशालता भी मापी नहीं जा सकती–

"विष्णोरिवास्यानव धारणी
भी पृक्तया रूपमियन्तया वां।"

कालिदास ने संस्कृत साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी कृतियों से समृद्ध व गौरवशाली बनाया। यों तो उनके नाम से बहुत सी कृतियां प्रचलित रही हैं, पर उनमें से सात ही सर्वसम्मति से उनकी रचनायें मानी गयी हैं। इनमें से ऋतु संहार और मेघदूत खण्ड काव्य, कुमारसम्भव और रघुवंश महाकाव्य तथा मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्दशीय और अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक हैं। इन कृतियों में एक ही कवि व्यक्तित्व की विकासात्मक अभिव्यक्ति देखी जा सकती हैं। ऋतुसंहार व मालविकाग्निमित्र संभवतः कालिदास के कृतित्व के प्रभातकाल की कृतियां हैं। कुमारसम्भव विक्रमोर्वशीय व मेघदूत संभवतः कवि कालिदास के मध्यान्हकाल से सम्बन्ध रखती हैं तथा रघुवंश व अभिज्ञानशाकुन्तलम् उनकी प्रौढ़ व परिपक्व प्रतिभा के परिणति की गंभीर व प्रशान्त रचनायें हैं।

महाकवि कालिदास प्रकृति के अनन्य पुजारी थे, उन्होंने प्रकृति के प्रायः सभी अंगों का सांगोपांग वर्णन किया है। यहां तक कि षड् ऋतुओं के वर्णन में उन्होंने ऋतुसंहार नामक काव्य की रचना की है। उनके प्रकृति वर्णन में कल्पना की नवीनता, कोमलता, भाव वैचित्र्य और सहृदयता पायी जाती है। कालिदास की प्रकृति मूक अथवा निष्प्राण नहीं हैं। मानव की भांति वह भी सुख–दुःख का अनुभव करती हैं।

शकुन्तला की विदाई के समय वृक्ष वस्त्रादि देते हैं, और सम्बन्धियों की भांति प्रेम प्रकट करते हैं, हरिणियां तृण नहीं खाती और मोर नाचते नहीं, यह प्रकृति की सहृदता ही है। महाकवि कालिदास ने प्रकृति को मूक चेतनाहीन या निष्प्राण नहीं माना है। मानव प्राणियों की भाँति उसमें भी सुख–दुःख संवेदना का भाव दिखाई पड़ता है। कालिदास को मूलतः काम और प्रेम का कवि माना जाता है। काम और प्रेम का कवि सुन्दर चेता होता है। सौंदर्य की पहचान और अभिव्यक्ति उसकी कविता में सराहनीय कोटि तक होती है। यूं आप सौंदर्य/सुन्दरता की कोई भी परिभाषा करते फिरे परन्तु सौंदर्य किसे आकर्षित नहीं करता।

कालिदास की मनोरम कल्पना (यक्षप्रिया) ऐसी है। सर्वत्र सुन्दरी है, वह तन्वी श्यामा शिखरिदशना ही नहीं अपितु युवतिविषयों विधाती की सारभूता अद्वितीय रचना है। उसके जैसा सौंदर्य भिन्न–भिन्न वस्तु रूपों में ही तो प्राप्त है परन्तु किसी एक वस्तु में एक साथ प्राप्त नहीं। कुछ लोग इसे आदर्शवादी सौंदर्यविहीन कह सकते हैं, परन्तु संसार में किसी भी वस्तु की सत्ता हमारी दृष्टिइयता तक ही सीमित नहीं।

कालिदास की सौंदर्य चेतना मानव, पशु, तरु, तरनी, भूमि, जल, मेघ, शैल, विद्युत आदि अनेक उपदानों में शतरूपा हो अभिव्यक्त हुई है। मानवेतर वस्तु जगत से भी मानववत परिसंवाद कवि की वैश्विक सम्पृक्ति का परिचायक है।

कालिदास संस्कृत भाषा के सबसे महान कवि और नाटककार थे। कालिदास ने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की। कालिदास अपनी अलंकार युक्त सुंदर सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके ऋतु वर्णन अद्वितीय हैं और उनकी उपमाएं बेमिसाल। संगीत उनके साहित्य का प्रमुख अंग है और रस का सृजन करने में उनकी कोई उपमा नहीं। उन्होंने अपने श्रृंगार रस प्रधान साहित्य में भी साहित्यिक सौंदर्य के साथ–साथ आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। उनका नाम अमर है और उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में हैं। कालिदास शिव के भक्त थे। कालिदास नाम का शाब्दिक अर्थ है, काली का सेवक। कालिदास दिखने में बहुत सुंदर थे और विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में एक थे। लेकिन कहा जाता है कि प्रारंभिक जीवन में कालिदास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनपढ़ और मूर्ख थे। कालिदास की शादी विद्योत्तमा नाम की राजकुमारी से हुई।

कालिदास रचित ग्रंथों की तालिका बहुत लंबी है। पर विद्वानों का मत है कि इस नाम के और भी कवि हुए हैं जिनकी ये रचनाएं हो सकती हैं। विक्रमादित्य के नवरत्न कालिदास की सात रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

इनमें से चार काव्य–ग्रन्थ हैं–

रघुवंश
कुमारसंभव
मेघदूत
ऋतुसंहार।

तीन नाटक हैं–

अभिज्ञान शाकुंतलम्
मालविकाग्निमित्र
विक्रमोर्वशीय।

इन रचनाओं के कारण कालिदास की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों और नाटककारों में होती हैं। उनकी रचनाओं का साहित्य के साथ–साथ ऐतिहासिक महत्व भी है। संस्कृत साहित्य के ६ काव्य ग्रंथों की गणना सर्वोपरि ग्रंथों में की जाती है। इनमें अकेले कालिदास के तीन ग्रंथ–रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत हैं। ये लघुत्रयी के नाम से भी जाने जाते हैं। शेष तीन में भारवि कृत किरातर्जुनीयम्, माघ कृत शिशुपाल वध और श्रीहर्ष कृत नैषधीय चरित की रचनाएं आती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य काव्यों के साथ भी कालिदास का नाम जोड़ा जाता रहा है–जैसे श्रृंगारतिलक, श्यामलादण्डक आदि। ये काव्य या तो कालिदास नामधारी परवर्ती कवियों ने लिखे अथवा परवर्ती कवियों ने अपना काव्य प्रसिद्ध कराने की इच्छा से उसके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया।

अपने कुमारसम्भव महाकाव्य में पार्वती के रूप का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है कि संसार में जितने भी सुन्दर उपमान हो सकते हैं, उनका समुच्चय इकट्ठा करके, फिर उसे यथास्थान संयोजित करके विधाता ने बड़े जतन से उस पार्वती को गढ़ा था, क्योंकि वे सृष्टि का सारा सौन्दर्य एक स्थान पर देखना चाहते थे। वास्तव में पार्वती के सम्बन्ध में कवि की यह उक्ति स्वयं उसकी अपनी कविता पर भी उतनी ही खरी उतरती है। 'एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षा' उसकी कविता का मूल प्रेरक सूत्र है जो सिसृक्षा को स्फूर्त करता है। इस सिसृक्षा के द्वारा कवि ने अपनी अद्वैत चैतन्य रूप प्रतिमा को विभिन्न रमणीय मूर्तियों में बाँट दिया है। जगत की सृष्टि के सम्बन्ध में इस सिसृक्षा को अन्तर्निहित मूल तत्व बताकर महाकवि ने अपनी काव्यसृष्टि की भी सांकेतिक व्याख्या की है।

कालिदास को सर्वाधिक प्रसिद्धि नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् से मिली है जिसका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनके दूसरे नाटक 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'मालविकाग्निमित्र' भी उत्कृष्ट नाट्य साहित्य के उदाहरण हैं। उनके केवल दो महाकाव्य उपलब्ध हैं–'रघुवंश और कुमारसंभव' पर वे ही उनकी कीर्ति पताका फहराने के लिए पर्याप्त हैं। काव्यकला की दृष्टि से कालिदास का 'मेघदूत' अतुलनीय है। इसकी सुन्दर सरस भाषा प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति से पाठक मुग्ध और भावविभोर हो उठते हैं। 'मेघदूत' का भी विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनका 'ऋतु संहार' प्रत्येक ऋतु के प्रकृति चित्रण के लिए ही लिखा गया है। कालिदास के काल के विषय में काफी मतभेद हैं। पर अब विद्वानों की सहमति से उनका काल प्रथम शताब्दी ई.पू. मान जाता है। इस मान्यता का आधार यह है कि उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के शासन काल से कालिदास का रचनाकाल सम्बद्ध है।

महाकवि कालिदास प्रकृति के उपासक हैं। वे प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं, उन्होंने अंतः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति दोनों का चित्रण किया है। उनका यह चित्रण आत्मानुभूति एवं सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित हैं। यद्यपि महाकवि ने कहीं–कहीं प्रकृति का भयावह रूप भी चित्रित किया, किंतु प्रकृति का सुकुमार रूप उन्हें अधिक प्रिय हैं।

कालिदास ने अपने समस्त काव्यों एवं नाटकों में प्रकृति का निरूपण तो किया ही हैं, किंतु स्वतंत्र रूप से प्रकृति के चित्रण के लिए ऋतुसंहार की रचना की। ऋतुसंहार में कवि ने बाह्य प्राकृतिक सौन्दर्य के निरूपण की अपेक्षा मानव–मन पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन अधिक किया है, फिर भी ऋतुओं का स्वतंत्र चित्रण उनके प्रकृति–प्रेम का द्योतक हैं। ऋतुसंहार के प्रथम पद्य में ग्रीष्म ऋतु का बड़ा ही सजीव चित्रण हैं–

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः
सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः।
दिनांतरम्योस्मुपशांतमन्मथों
निदाघकालोस्यमुपागतः प्रिये।।

प्रिये ! ग्रीष्म ऋतु आ गयी हैं। सूर्य की किरणें प्रचण्ड हो गयी हैं। चन्द्रमा सुहावना लगने लगा है। निरंतर स्नान के कारण कुँओं–तालाबों का जल प्रायः समाप्त हो जाता है। सायंकाल मनोरम लगने लगा है तथा काम का वेग स्वयं शांत हो गया है। इसी प्रकार कवि का वर्षा तथा अन्य ऋतुओं का वर्णन भी सजीवता एवं कमनीयता से परिपूर्ण है। मेघदूत में तो कवि ने प्रकृति एवं मानव में तादात्म्य स्थापित कर दिया है। पूर्वमेघ में प्रधानतया प्रकृति के बाह्य रूप का चित्रण है, किंतु उसमें मानवीय भावनाओं का संस्पर्श है, मेघदूत तो वर्षा ऋतु की ही उपज है। वहाँ वर्षा से प्रभावित होने वाले समस्त जड़–चेतन पदार्थों का निरूपण है। मेघ जिस-जिस मार्ग से होकर आगे निकल जाता है, उस-उस मार्ग में अपनी छाप छोड़ जाता है–

मेघालोके भवति सुखिनोस्प्यन्यथावृत्ति चेतः।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।

मेघ को देख लेने पर तो सुखी अर्थात् संयोगी जनों का चित्त कुछ का कुछ हो जाता है फिर वियोगी लोगों का क्या कहना। कालिदास ने प्रकृति को मनुष्य के सुख–दुःख में सहभागिनी निरूपति किया है। विरही राम को लताएँ अपने पत्ते झुका–झुका कर सीता के अपहरण का मार्ग बताती हैं, मृगियाँ दर्भांकुर चरना छोड़कर बड़ी–बड़ी आँखें दक्षिण दिशा की ओर लगाये टुकुर–टुकुर ताकती रह जाती हैं।

कालिदास प्रकृति को चेतन एवं भावनायुक्त पाते हैं। पशु–पक्षी आदि तो चेतनवत व्यवहार करते ही हैं, सम्पूर्ण चराचर प्रकृति भी मानव की भाँति व्यवहार करती दिखायी देती हैं। महाकवि ने मेघ को दूत बनाकर धूम, अग्नि, जल, पवन के सम्मिश्रण रूप जड़ पदार्थ को मानव बना दिया है। वे प्रकृति में न केवल मानव की बाह्य आकृति का आरोप करते हैं अपितु उसमें सुख दुःखादि भावों की भी सम्भावना करते हैं। वे प्रकृति को प्रायः प्रेमी अथवा प्रेमिका के रूप में देखते हैं। मेघदूत उज्जयिनी की ओर जाते हुए मेघ को मार्ग में पड़ने वाली निर्विन्ध्या नदी विभिन्न हाव–भाव से आकृष्ट करेगी–

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणि काञ्चीगुणायाः
संसर्पंत्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायःपथि भव रसाभ्यंतरः संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।

हे मेघ ! तरंगों के हलचल के कारण शब्दायमान पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी को धारण करने वाली, स्खलित प्रवाह के कारण सुन्दरतापूर्वक बहने वाली अर्थात् मस्त होकर चलने वाली और भँवर रूप नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी रूपी नायिका से मिलकर तुम रस अवश्य प्राप्त करना, क्योंकि कामिनियों का हाव–भाव प्रदर्शन ही रति प्रार्थना वचन होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महाकवि कालिदास ने प्रकृति के श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण कर उनकी अप्रस्तुत रूप में योजना की है। वे पात्रों को उपस्थित करने के लिए प्रकृति के सुन्दर तत्वों से सादृश्य स्थापित करते हैं। रघुवंश में राजा रघु के मुख–सौन्दर्य के वर्णन के लिए वे प्रकृति के सुन्दरतम एवं प्रसिद्ध अपमान चन्द्र का आश्रय लेते हैं।

महाकवि कालिदास प्रकृति को उपदेशिका रूप में भी पाते हैं। वे प्रकृति से प्राप्त होने वाले सत्य का स्थान–स्थान पर उल्लेख करते हैं, जो मानव जीवन का मार्ग–निर्देश करती हैं एवं आदर्श उपस्थापित करती हैं। मेघ बिना कुछ कहे चातकों को वर्षा जल प्रदान कर उनका उपकार करता है–

निशब्दोस्पि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः।
प्रत्युक्त हि प्रणयिषु सताभीप्सितार्थक्रियैव।।

पपीहे के जल माँगने पर मेघ बिना उत्तर दिये उन्हें सीधे जल दे देता है। सज्जनों का यह स्वभाव होता है कि जब उनसे कुछ माँगा जाय तो वे मुँह से कुछ कहे बिना, काम पूरा करके ही उत्तर दे देते हैं।

रघुवंश में कालिदास को जल के स्वभाव से शिक्षा मिलती है। जल तो प्रकृत्या शीतल है, उष्ण वस्तु के सम्पर्क से भले ही कुछ क्षण के लिए जल में उष्णता उत्पन्न हो जाए। इसी प्रकार महात्मा भी प्रकृति से क्षमाशील होते हैं। अपराध करने पर वे कुछ क्षण के लिए ही उद्विग्न होते हैं।

प्रकृति के सहज सौन्दर्य मानवीय राग, कोमल भावनाओं तथा कल्पना के नवनवोन्मेष का जो रूप कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग में मिलता है, वह भारतीय साहित्य का शिखर कहा जा सकता है। कवि ने सन्ध्या और रात्रि का वर्णन हिमालय के पावन प्रदेश में शिख के गरिमामय वचनों के द्वारा पार्वती को सम्बोधित करते हुए कराया है और प्रसंग, पात्र देशकाल के अनुरूप प्रकृति का इतना उदात्त और कमनीय वर्णन विश्व साहित्य में दुर्लभ कहा जा सकता है। पश्चिम में डूबते सूर्य की रश्मियां सरोवर के जल में लम्बी–लम्बी होकर प्रतिबिंबित हो रही है तो लगता है कि अपनी सुदीर्घ परछाइयों के द्वारा विवम्वान भगवान ने जल में सोने के सेतुबन्ध रच डाले हों।

कालिदास की कल्पना खेतों और खलिहानों में रमती है, प्रकृति के सहज सौन्दर्य का मानव–सौन्दर्य से और कृत्रिम साज–सज्जा से उत्कृष्ट पाती है। कुमार सम्भव में चन्द्रमा किरणों के लिये जौ के ताजा अंकुर का उपमान देकर उन्होंने मानो स्वर्ग को धरती से मिला दिया है।

प्रकृति में मानवीय राग, करूणा और हृदय की कोमलता के दर्शन कालिदास अपनी विश्वदृष्टि के द्वारा ही कर सके हैं। अंधेरा रात्रि रमणी का जूड़ा है, जिसे चन्द्रमा अपने करों से बिखेर देता है, और फिर उस रमणी के सरोज लोचन वाले मुख को उठा कर वह चूम लेता है–

अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं
सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुडमलीकृतसरोजलोचन
चुम्बतीव रजनीमुखं शशी।।

उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति उत्कृष्ट संसृष्टि कवि ने इस प्रकार के प्रकृति–चित्रणों में की है। उक्त पद्य में कुण्डली कृतसरोजलोचन कामिनी का लज्जा से नेत्र मूंदने का चित्र होने से वल्लभदेव के अनुसार स्वभावोक्ति है, जबकि 'चुम्बतीव' में समासोक्ति तथा उत्प्रेक्षा दोनों अलंकार आ गये हैं।

महाकवि कालिदास ने यद्यपि प्रायः प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है, किंतु कुमारसम्भव के वर्षा चित्रण में भयावहता दर्शनीय है–

घोरान्धकारनिकरप्रतिमो युगांत–
कालानलप्रबलधूमनिभो नभोसन्ते।
गर्जारवैर्विघटयन्नवनीधराणां
श्रृङ्गाणि मेघनिवहो घनमुज्जगाम।।

मेघदूत के यक्ष को धीरललित नायक की कोटि में रखा जा सकता है। वह युवा है और उसे अपनी पत्नी से प्रगाढ़ प्रेम है। देवयोनिज होने के कारण सर्वत्र विचरण सामर्थ्य से युक्त है, अतएव उसका भौगोलिक ज्ञान यथार्थ है। वह संगीत एवं चित्रकला का प्रेमी है। रघुवंश में चाहे दिलीप हों अथवा रघु गुरु के आज्ञापालक एवं धर्मपरायण है।

महाराज दिलीप सर्वगुण सम्पन्न आदर्श राजा हैं। रामचन्द्र का चित्रण कवि ने बड़ी सावधानी से किया है। उनके अन्दर दिलीप, रघु और अज के गुणों का समन्वय है।

कालिदास रमणी रूप के चित्रण में ही समर्थ नहीं है, अपितु नारी के स्वाभिमान तथा उदात्त रूप के प्रदर्शन में भी कृतकार्य हैं। रघुवंश के चतुर्दश सर्ग, श्लोक में चित्रित, राजा राम के द्वारा परित्यक्ता जानकी का चित्र तथा उनका राम को भेजा गया सन्देश अत्यंत भावपूर्ण, गम्भीर तथा मर्मस्पर्शी है। राम के लिए 'राजा' शब्द का प्रयोग विशुद्ध तथा पवित्र चरित्र धर्मपत्नी के परित्याग के अनौचित्य का मार्मिक अभिव्यञ्क है–

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स
राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षं।
मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य।।

सीता की चारित्रिक उदात्तता का परिचय इसी घटना से स्पष्टतः मिलता है कि इतनी विषम परिस्थिति में पड़ने पर भी वह राम के लिए भी अपशब्द का प्रयोग नहीं करती, प्रत्युक्त अपने ही भाग्य को कोसती है तथा बारम्बार अपनी ही निन्दा करती है।

मेघदूत में उपमा का प्रयोग तो श्लाध्य है ही, किंतु वहाँ उत्प्रेक्षा का बाहुल्येन प्रयोग है। मेघ के रामगिरि से अलकानगरी की ओर प्रस्थान करने पर मार्ग में पड़ने वाले नगरों, पर्वतों एवं नदियों में मेघ के सम्पर्क से कैसी अपूर्व शोभावृद्धि होती है, कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से चित्रित किया है। कृष्णवर्ण मेघ जब विश्राम करने के लिये पके आम वृक्षों से घिरे हुए आम्रकूट पर्वत पर बैठेगा तो पृथ्वी के स्तन जैसी दिखायी देने वाली यह शोभा देवताओं के द्वारा देखने योग्य होगी।

उपमा के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कालिदास की उपमा बाणभट्ट प्रभृति कवियों की भाँति श्लेषानुप्राणित नहीं है फलतः पाठकों को अर्थावबोध में क्लिष्टता का सामना नहीं करना पड़ता।

महाकवि के काव्यों में अर्थातरन्यास का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थल सूक्तियों के निदर्शन है, जहाँ कवि ने साररूप में अपना लौकिक अनुभव व्यक्त किया है। मेघ तो धूल, अग्नि, जल और वायु का सम्मिश्रण है, अचेतन है और सन्देश तो कुशल इन्द्रियों वाले लोग ही ले जा सकते हैं फिर भी उत्सुकतावश यक्ष ने मेघ से प्रार्थना की क्योंकि कामपीड़ित लोगों को चेतन–अचेतन का ध्यान नहीं रहता।

कालिदास ने अपनी विराट कल्पना और सौन्दर्य दृष्टि के द्वारा सारे भारत की अपार सुषमा तथा इस देश की वसुन्धरा के प्रतिक्षण परिवर्तमान अपूर्व रूप से पूरी गत्यात्मकता के साथ साक्षात्कार कराया है। उनके अप्रस्तुत विधान में रंगों की परख के साथ रंगों के मिश्रण से उत्पन्न छटाओं को शब्दचित्रों में साकार कर दिया गया है। रघुवंश के तेरहवें सर्ग में पुष्पक विमान से लौटते हुए राम के द्वारा लंका से अयोध्या तक के तीर्थस्थलों, नदियों, पर्वतों और रमणीय प्रदेशों का वर्णन इस दृष्टि से बड़ा मनोरम है। प्रयाग में गंगा– यमुना के संगम का चित्र है–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्वचित् प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तमयी
यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला
सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितांतरेव।।
क्वचित् खगाना प्रियमानसानां
कादम्बसंसर्गवतीत पङ्क्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपन्ना
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पिदेव।।
क्वचित् प्रभा चान्द्रमसी
तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रो शरदभ्रलेखा
रन्धेष्पिवालक्ष्यनभः प्रदेश।।
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव
भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा
भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः।।

कहीं तो प्रभाओं में लिपटे इन्द्रनीलमणियों में गुंथी सफेद मोतियों की लड़ी सी, कहीं सफेद कमलों की उस माला के जैसी जिसमें बीच–बीच में नीलकमल गुंथे हों, कहीं कादम्ब पक्षी के साथ उड़ते राजहंसों की कतार के समान, तो कहीं धरती पर चन्दन से बनी भक्ति–रेखा के समान जिसमें काले अगरु की थाप दी गयी हो, कहीं चन्द्रमा की प्रभा के समान, जिसमें छाया में दुबका अंधेरा मिला हुआ हो, तो कहीं शरद के स्वच्छ मेघों की कतार सर्प के आभूषण से युक्त शिव की देह के समान–इस प्रकार यमुना के तरंगों से भिन्न प्रवाह वाली यह गंगा सुशोभित हो रही है। यहाँ कवि ने गंगा की शुभ्रता और यमुना के नील वर्ण के समिश्रण के लिये उपमानों की जो माला गूंथी है, वह संगम के दृश्य के सर्वथा अनुरूप है।

इसी प्रकार कालिदास अपने वर्ण्यविषय की अपूर्वता का अनुभव देने के लिये कहीं उपमानों को एक दूसरे से जोड़ देते हैं, तो कहीं किसी प्रचलित उपमान में अपनी ओर से कोई विशेषता जोड़ कर उसे प्रस्तुत करते हैं। पार्वती के ओठों पर थिरकती मुस्कान की तुलना किस वस्तु से हो सकती है? यदि फूल को प्रवाह (मूंगे) पर रखा जाय, या सफेद मोती को विद्रुम मणि पर तो उसमें शुभ स्मित का वे अनुकरण कर सकते हैं।

कहीं कालिदास नैसर्गिक पदार्थों को मनुष्य जगत् के उपादानों या अलंकरणों से उपमित करते हैं, तो कहीं मनुष्य के लिये वे नैसर्गिक उपमान लाते हैं। यक्ष के भवन के बाहर पक्षियों के बैठने के लिये सोने की वासयष्टि है, जो नीलम मणियों से जुड़ी हुई है। कवि ने यहाँ मणि के लिये उपमान दिया है– 'अनतिप्रौढ़वंशप्रकाशैः'–हरे बाँस की कांति वाले। कहीं कालिदास वर्ण्य की चेष्टा, गति और आकृति को साकार करते हुए अपमान में भी तदनुरूप चेष्टा, गति आदि का अपनी कल्पना से आधान कर देते हैं। पार्वती लता मात्र न होकर 'संचारिणी पल्लविनी लता' है। इन्दुमती भी संचारिणी दीपशिखा है। यौवन के आगमन पर पार्वती की देह चतुरस्त्र शोभा से युक्त हो जाती है।

कालिदास काव्यरचना में समाधिगुण की अभिव्यक्ति के साथ प्रायः अछूते उपमान उठा कर लाते हैं। ये उपमान उनकी मौलिकता और प्रतिभा के नवोन्मेष का अनुभव कराते हैं। इन्दुमती के दिवंगत होने पर अज का हृदय शोक से ऐसे ही विदीर्ण हो गया, जैसे छत पर फूट आये पेड़ से छत दरक जाती है। कैकेयी के मुख से दो वरदानों की बात ऐसे ही निकली, जैसे वर्षा होने पर धरती में बिल से दो साँप बाहर आये हों।

कालिदास के अप्रस्तुत विधान में मानव स्वभाव तथा प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण, नवीन परिकल्पनाएं, सौन्दर्य–वृष्टि तथा गहन संवेदनशीलता ने उनकी कविता को अतिशय सम्पन्न बना दिया–इसमें कोई सन्देह नहीं।

कालिदास हृदयपक्ष अथवा भावपक्ष के कवि हैं। इसीलिये उनकी कविता द्राक्षापाक है। वे व्यंजनावादी हैं। रसोदबोध में अत्यंत सक्षम हैं। रसों में भी कोमल रसों के संयोजन में वे सिद्धहस्त हैं। यद्यपि उन्होंने वीर, भयानक आदि रसों का भी चित्रण किया है किन्तु श्रृंगार, करुण एवं शांत प्रभृति सुकुमार रसों की अनुभूति कराने में वे जितने प्रवीण हैं, उतने प्रौढ़ रसों की अनुभूति में नहीं।

श्रृंगार के वर्णन में तो कालिदास अनुपम हैं। वस्तुतः वे श्रृंगार के कवि हैं। उन्होंने श्रृंगार के उभय पक्ष–सम्भोग एवं विप्रलम्भ का चित्रण किया है। किंतु उनका विपलम्भ श्रृंगार रस अद्वितीय है। मेघदूत में तो सम्भोग श्रृंगार विप्रलम्भ का पोषक बन गया है।

कालिदास के समस्त काव्यों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है। ऋतुसंहार, मेघदूत आदि ग्रंथों में सम्भोग श्रृंगार का भरपूर चित्रण है किंतु कुमारसम्भव में शिव–पार्वती के सम्भोग वर्णन में श्रृंगार की अभिव्यक्ति अत्युत्कृष्ट है।

कालिदास का सौन्दर्य–चित्रण अभीष्ट होता है। प्रकृति–सौन्दर्य एवं मानवीय सौन्दर्य का वर्णन काव्य का अभिन्न अंग है। महाकवि कालिदास सौन्दर्य के उपासक कवि हैं। कालिदास नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रेमी हैं। कृत्रिम और दिखावटी श्रृंगार उन्हें नहीं रुचता। वे प्रकृति के द्वारा दिये गये सहज उपादानों से अपनी परिकल्पना की नायिकाओं में अनिद्य सौंदर्य का आविष्कार करते हैं। कुमारसम्भव में पार्वती ने वसंत के फूलों से अपने आप को अलंकृत किया है। उसके अशोक ने पद्मराग मणि को धता बता दी है, कर्णिकार ने स्वर्ण की द्युति को खींच लिया है तथा सिंधुवार के पुष्प ही मुक्तामाला बन गये हैं–

अशोकनिर्भर्तिसतपद्मरागमाकृष्टहेमद्युतिकर्णिकारं।
मुक्ताकलापीकृतसिन्दुवारं वसंतपुष्पाभरणं वहंती।।

मेघदूत में अलका नगरी में मणि–माणिक्य, सोने–चांदी और धन–समृद्धि की कोई कमी नहीं। फिर भी वहाँ की सुन्दरियाँ फूलों से ही अपना अंग–प्रत्यंग सजाती हैं। हाथ में लीलाकमल, केश में बालकुन्द का अनुवेघ, तो कपोलों पर लोध्र के पराग से शुभ्र वर्ण का आधान, जूड़े में नये कुरवक के पुष्प, कानों में सुन्दर शिरीष और सीमंत में कदम्ब–इस तरह सारे देह में फूल सज उठते हैं।

वस्तुतः कवि ने अपने सौन्दर्यबोध के द्वारा मनुष्य को प्रकृति के निकट आने तथा सहज जीवन अपनाने का संदेश दिया है। इस सौन्दर्य की सर्वोच्च प्रतिमूर्ति तो स्वयं शिव ही है, जहाँ शिव हैं, वहीं सौन्दर्य है। यदि शिव हैं तो संसार की सारी वीभत्सता भी अलौकिक रम्यता में परिणित हो जाती है।

कुमारसम्भव में कवि पार्वती की मुस्कुराहट का वर्णन करता हुआ कहता है कि यदि लाल कोपल पर कोई उज्ज्वल फूल रखा जाय अथवा स्वच्छ मूंगे के बीच में मोती जड़ा जाय तभी ये पुष्प एवं मोती पार्वती की मुस्कुराहट की समानता कर सकते हैं।

निष्कर्षः–

कालिदास संस्कृत भाषा के सबसे महान कवि और नाटककार थे। कालिदास शिव के भक्त थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की। कालिदास अपनी अलंकार युक्त सुंदर सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके ऋतु वर्णन अद्वितीय है और उनकी उपमाएं बेमिसाल। संगीत उनके साहित्य का प्रमुख अंग है और रस का सृजन करने में उनकी कोई उपमा नहीं। उन्होंने अपने श्रृंगार रस प्रधान साहित्य में भी साहित्यिक सौन्दर्य के साथ–साथ आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। उनका नाम अमर है और उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में है।●

संपर्क : 28/11, अजीतगंज कालोनी,
टी.पी. नगर, कानपुर नगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

कालिदास एवं तुलसीदास कृत शिव–पार्वती–वन्दना : एक तुलनात्मक विमर्श

डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'

कालिदास ने रघुवंश के प्रथम श्लोक में 'जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ' इस कथन के द्वारा तथा तुलसीदास ने मानस के बालकाण्ड के द्वितीय श्लोक में इस कथन 'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ' द्वारा शिव–पार्वती की वन्दना की है। अद्भुत संयोग यह है कि दोनों स्थलों पर वन्दना के लिए 'वन्दे' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। दोनों कवियों का अभीष्ट पार्वती तथा शंकर की वन्दना है। दोनों कविर्मनीषी महाकृतिकार अप्रमेय पण्डित, अकुण्ठ काव्यशास्त्री तथा कुशल काव्यशिल्पी हैं। महाकवियों के प्रत्येक शब्द सार्थक एवं सोद्देश्य होते हैं। दोनों महाकवि पार्वती तथा शंकर को जगत् का माता–पिता मानते हैं। कालिदास की शिवभक्ति अनेकशः कथित है। कुमारसम्भव में पार्वती तथा शंकर की जो आध्यात्मिक विवेचना प्रस्तुत की गयी है, उसमें शैव एवं शाक्त दर्शन की अनुगूँज साफ सुनायी देती है। कालिदास शाकुन्तलम् में प्रथम श्लोक (नान्दीपाठ) में विश्व–रक्षा हेतु अष्टमूर्ति भगवान् शंकर का स्मरण करते हैं तथा अन्तिम श्लोक (भातरवाक्य) में नीललोहित भगवान् शिव से अपने पुनर्जन्म के समापन की प्रार्थना करते हैं। 'विक्रमोर्वशीयम के प्रथम श्लोक (नन्दीपाठ) में कालिदास 'ईश्वर' 'स्थाणु' (शिव) से कल्याण की कामना करते हैं। 'मालविकाग्निमित्रम्' के नान्दीपाठ में वे (कविकुलगुरु) अपने आठों रूपों से संसार के पालक 'अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो' शंकर से तामसी–वृत्ति के विनाश की प्रार्थना करते हैं। तुलसी के लिए शंकर इसलिए भी समादरणीय हैं। क्योंकि शिव राम–कथा के आदि गायक हैं। कथनीय यह है कि कालिदास तथा तुलसीदास पार्वती तथा शंकर के प्रति विशेष श्रद्धा, भक्ति एवं निष्ठा रखते हैं।

रघुवंश में पार्वती तथा शंकर का उल्लेख अत्यन्त सीमित स्तर पर मिलता है परन्तु जितना है, वह सूत्र–वाक्य है। मानस में भवानी तथा शंकर का चित्रण विस्तृत फलक पर उपलब्ध है। रघुवंश में वाणी तथा अर्थ की भाँति परस्पर सम्मिलित, जगत के माता–पिता पार्वती तथा परमेश्वर (शंकर) से वाणी तथा अर्थ की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की गयी है–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।
(रघुवंश 1–1)

कवि, अपने कवि–कर्म (काव्य–रचना)

> तुलसी महेश तथा भवानी को 'गुरुपितु मातु' कहते हुए प्रणाम करते हैं क्योंकि वे दीनो के बन्धु–बान्धव तथा नित्यदान करने वाले हैं। यहाँ पर 'गुरु पितु मातु' तुलसी के लिए भी हैं और संसार के लिए भी। तुलसी स्वयं के गुरु–माता–पिता के रूप में महेश–भवानी का स्मरण करते हैं। यहाँ यह भी अर्थ किया जा सकता है कि जगत् के गुरु पिता–माता, महेश तथा भवानी की वन्दना तुलसी को अभीष्ट है। पार्वती तथा शंकर सीतापति रामचन्द्र के सेवक, स्वामी तथा सखा हैं। वे दोनों तुलसी के सच्चे सर्वविध हितैषी हैं। हर तथा गिरिजा ने कलियुग को देखकर संसार के कल्याणार्थ शाबर मन्त्र–समूह की रचना की है जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप, परन्तु शिव–प्रताप से उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

हेतु वाणी (शब्द) तथा अर्थ का प्रयोग करता है। जिसे कवि का शब्दार्थ संयोजन–सन्तुलन जितना उत्तम होता है, उस कवि का काव्य उतना ही उदात्त होता है। कालिदास उस पार्वती–परमेश्वर की वन्दना करते हैं जो शब्दार्थ–सिद्धि प्रदायक हैं। 'शब्दार्थ सिद्धि' ही कवि–प्रसिद्धि (यश) का कारण होता है। वे स्वयं को यशःप्रार्थी (र. 1–3) यश का इच्छुक कहते हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजनों में यश को प्रथम स्थान 'काव्यं यशसे' (काव्यप्रकाश 1–2) दिया है। काव्य यश के लिए हैं। तुलसीदास उन भवानी शंकर की वन्दना करते हैं जिनके बिना सिद्ध जन अपने अन्तः करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः
स्वान्तस्थमीश्वरम्।।
(मानस बा.का. श्लो. 2)

कालिदास ने 'पार्वतीपरमेश्वरौ' इस समस्त पद का विशेषण रक्खा 'पितरौ' (माता तथा पिता) एक स्त्रीलिंग तथा एक पुल्लिंग शब्द। तुलसी ने 'भवानीशंकरौ के समानान्तर 'श्रद्धविश्वासरूपिणौ' (भवानी श्रद्धास्वरूपा हैं तथा शंकर विश्वासस्वरूप) यहाँ भी स्त्रीलिंग (श्रद्धा) पुल्लिंग (विश्वास) शब्दों का क्रम समान ही है।

शिव अथवा रुद्र का उल्लेख प्राचीनतम वाङ्मय में भी मिलता है। रुद्र की चर्चा ऋग्वेद (10–125–60) में है। यजुर्वेद का शतरुद्रीय अध्याय विख्यात है। तैत्तिरीय आरण्यक (10–16) समस्त जगत् को रुद्ररूप कहता है। श्वेताश्वेतर (3–13) के अनुसार भगवान् शिव सर्वाननिशिरोग्रीव, सर्वभूत–सर्वव्यापी तथा सर्वगत है।

तुलसी महेश तथा भवानी को 'गुरुपितु मातु' कहते हुए प्रणाम करते हैं क्योंकि वे दीनों के बन्धु–बान्धव तथा नित्यदान करने वाले हैं। यहाँ पर 'गुरु पितु मातु' तुलसी के लिए भी हैं और संसार के लिए भी। तुलसी स्वयं के गुरु–माता–पिता के रूप में महेश–भवानी का स्मरण करते हैं। यहाँ यह भी अर्थ किया जा सकता है कि जगत् के गुरु पिता–माता, महेश तथा भवानी की वन्दना तुलसी को अभीष्ट है। पार्वती तथा शंकर सीतापति रामचन्द्र के सेवक, स्वामी तथा सखा हैं। वे दोनों तुलसी के सच्चे सर्वविध हितैषी हैं। हर तथा गिरिजा ने कलियुग को देखकर संसार के कल्याणार्थ शाबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्त्र–समूह की रचना की है जिनका न कोई ठीक अर्थ होता है और न जप, परन्तु शिव–प्रताप से उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है। गोस्वामी जी भगवान् उमेश (शम्भु) से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रसन्न होकर श्रीराम कथा (मानस) को आनन्द तथा मंगल का मूल बना देगें। कालिदास शाकुन्तलम् के भरत वाक्य में प्रत्यक्षः शिव से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी (कालिदास की) पुनर्जन्म–प्रक्रिया समाप्त कर दें।

तुलसी शिव तथा शिवा का स्मरण कर और उनका प्रसाद पाकर प्रसन्नतापूर्वक मानस–रचना प्रारम्भ करते हैं–

गुरुपितु मातु महेस भवानी।
प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।
सो उमेस मोहि पर अनुकूला।
करिहिं कथा मुद मंगल मूला।।

(मानस बा.का. दो 14–15 के मध्य)

गोस्वामी तुलसीदास ने बालकाण्ड में मानस के रूपक के प्रारम्भ में उमावृषकेतु तथा समापन पर भवानी–शंकर का स्मरण किया है। तुलसी विश्रुत पण्डित हैं। उन्हें ज्ञात है कि शम्भु तथा भवानी के संवादों से रामकथा परिपक्व हुई है। ये दोनों ज्ञान के अधिष्ठान हैं और कालिदास के अनुसार जगत् के माता–पिता हैं, अतएव उमा वृषकेतु का स्मरण स्वाभाविक तथा प्रासंगिक है–

जस मानस जेहि बिधि भयउ
जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग
सब सुमिरि उमा वृषकेतु।।

(वही दो 35)

गोस्वामी तुलसीदास को पूर्ण विश्वास है कि भवानीशंकर का पावन स्मरण उनके व्यक्तित्व को निर्मल तथा कर्तृत्व को विशद बना देगा।

रघुवंश में शंकर पर अत्यल्प सामग्री है। परन्तु जितनी है, वह सूत्र रूप हैं। रघुवंश के द्वितीय सर्ग में दिलीप तथा सिंह के मध्य वार्तालाप में शंकर विषयक कतिपय उल्लेखनीय तत्त्व मिलते हैं, द्रष्टव्य–रघुवंश द्वितीय सर्ग श्लोक 35, 38, 39, 41, 42, 44 तथा 46।

दिलीप शंकर के लिये 'रुद्र' शब्द का प्रयोग करते हैं। (रघु. 2–54)। वस्तुस्थिति यह है कि दिलीप के अनुसार भगवान शिव ही संसार के उद्भावक, पालक तथा संहारक हैं। कालिदास का आशय है कि भगवान् शंकर तीनों कालों में जड़–चेतन के स्वामी हैं। इन कथनों का साम्य मानस के अनेक स्थलों पर मिलता है। मानस के उत्तरकाण्ड के रुद्राष्टक में उक्त कालिदासीय भावभूमि की समता विस्तार से देखी जा सकती है। रुद्राष्टक में प्रयुक्त ईश, विभु, व्यापक, निर्गुण, गोतीत, सर्वनाथ तथा सर्वभूताधिवास आदि शब्द शंकर के ईश्वरत्व के प्रवाचक हैं।

मानस में शंकर की 'ईश्वरता' अनेकशः कथित है। उदाहरणस्वरूप कतिपय अंश प्रस्तुत हैं–

भारद्वाज, याज्ञवल्क्य से कहते हैं कि–

संकरु जगतबंद्य जगदीसा।
सुर नर मुनि सब नावत सीसा।

(बा. दो 46–50 के मध्य)

संभु गिरा पुनि मृषा न होई।
सिव सर्वज्ञ जान सब कोई।।

(दो. 50–51 के मध्य)

जगदातमा महेसु पुरारी।
जगत जनक सबके हितकारी।।

(दो. 63–64 के मध्य)

यहाँ पर 'जगत–जनक' विशेषतः उल्लेख्य है। जिसका आशय है संसार के पिता–जन्मदाता।

पार्वती के शब्दों में शंकर वेदानुसार त्रिभुवन गुरु हैं–

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना।
आन जीव पाँवर का जाना।।

(दो. 110–111 के मध्य)

'गुरु' शब्द की महत्ता की इयत्ता नहीं है। जो श्रेष्ठ है आदरणीय है, वह गुरु है। 'गुरु' शब्द का पर्यायवाची ढूँढ पाना कठिन हैं। पार्वती ने शंकर को 'त्रिभुवन गुरु' कहकर जगद्गुरु जगत्–पिता का स्थान दिया है।

मानस में उमा को अनेकशः जगदम्बा कहा गया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं–

पार्वती तपस्या के समय मुनियों से कुछ कहती हैं। उस समय गोस्वामी जी पार्वती के लिए 'जगदम्बा' शब्द का प्रयोग करते हैं। उधर मुनिगण पार्वती के लिए ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं–

मैं पा परउँ कहइ जगदम्बा।
तुम्ह गृह गवनहु भवउ विलंबा।।
देखि प्रेम बोले मुनि ज्ञानी।
जय जय जगदम्बिके
भवानी।।

(बा.दो. 80–81 के मध्य)

जगदंबा जहँ अवतरी सो पुरु
बरनि की जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख
नित नूतन अधिकाई।।

(बा.दो. 94)

नारद के शब्दों में–

मयना सत्य सुनहु मम बानी।
जगदंबा तव सुता भवानी।।
अजा अनादि शक्ति अबिनासिनि।
सदा संभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव पालन लय कारिनि।
निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।

(वही दो. 17–18 के मध्य)

प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषा का कुलवाक्य रहा है 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' सभी सुखी रहें विश्व कल्याण हो। कल्याण के अधिष्ठाता देवी के रूप में शंकर को मान्यता दी गयी। कल्याणकारक (शंकर) में ही सम्पूर्ण शक्ति निहित होती है। रक्षक ही रक्ष्य का सच्चा अधिकारी होता है। शिव ही सृष्टि का आवश्यकतानुसार उद्भव पालन तथा विनाश कर्त्ता है। इसी अर्थ में वह ब्रह्मा–विष्णु–महेश होता है। शिव की शक्ति शिवा है और शिवा के अभाव में शिव निस्तत्त्व है। शिव को सृष्टि–सर्जना में शिवा का अनिवार्यतः सहयोग लेना ही पड़ता है। इसी दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में कालिदास पार्वती परमेश्वर' को जगत् का माता–पिता मानते हैं और इसी वचन के साम्य के परिसर में गोस्वामी तुलसीदास 'शिव–शिवा को जगत् का माता–पिता मानते हैं। तुलसीदास इन दोनों को गुरु भी कहते हैं। प्रस्तुत लेख का आशय यह कथमपि नहीं है कि तुलसी ने कालिदासीय वचन का ही उक्त प्रकरण में–अनुसरण किया हैं। गोस्वामी जी ने अपने कथ्य का चयन नानापुराणनिगमागम आदि से किया है। प्रकृत लेख का लक्ष्य मात्र दोनों महाकवियों की शंकर तथा पार्वती विषयक मान्यताओं को सामासिक रूप से एक स्थल पर उपस्थित कर पाठकों को आनन्द प्रदान करना है।●

संपर्क : पटेल नगर, कादीपुर,
सुलतानपुर (उ.प्र.)–228145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कालिदास के नाटकों में स्त्री पात्र

श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

महाकवि कालिदासकृत तीन नाटक उपलब्ध हैं–1. 'विक्रमोर्वशीय', 2. 'मालविकाग्निमित्र' और 3. 'अभिज्ञान शाकुंतल'। 'विक्रमोर्वशीय' में या यों कहिये कि कालिदास के तीनों नाटकों में शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक की तरह कथाभाग का विशेष महत्व नहीं है। उनके तीनों नाटकों के कथानक सीधे–सादे और हृदयग्राही हैं। उनके स्त्री पात्र मुग्ध और शृंगार रस–प्रधान हैं। 'विक्रमोर्वशीय' नाटक की नायिका उर्वशी और उपनायिका काशिराज–दुहिता दोनों मुग्धा नायिका नहीं हैं, प्रौढ़ा हैं; परन्तु शृंगार रस में डूबी हुई हैं। उत्कंठिता नायिका उर्वशी का जैसा चित्र 'विक्रमोर्वशीय' में अंकित किया गया है, वैसा अन्य नाटकों में नहीं देखा जाता। कवि ने 'मालविकाग्निमित्र' में रानी इरावती के आगे अग्निमित्र को जैसा झुका दिया है, वैसा ही 'विक्रमोर्वशीय' में काशिराजदुहिता के आगे पुरुरवा को झुकाया है। यह कोमल भाव अपूर्व है। पुरुरवा का कहीं विक्रम के नाम से उल्लेख नहीं पाया जाता। कवि ने इस नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय' क्यों रखा, समझ में नहीं आता। फिर भी इस नाटक का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त है। विरह–वेदना का अनुभव नायक और नायिका दोनों को कराया गया है। उर्वशी की सखी चित्रलेखा पुरुरवा के पास आती है और उर्वशी का सन्देश सुनाती है कि, 'महाराज! उर्वशी आपको प्रणाम कर निवेदन करती है।'

'क्या आज्ञा करती है?'

'जब हम दैत्यों से हरी गयी थीं, तब महाराज ने ही हमारा उद्धार किया था। उस समय महाराज के दर्शन से मेरे हृदय में कामदेव ने प्रवेश किया, जो अब अदम्य हो रहा है। अतः इस समय महाराज ही मुझ पर दया कर सकते हैं।'

इस पर पुरुरवा कहता है–

पर्युत्सुकां कथयसि प्रियदर्शनां
तामात्तिं न पश्यसि पुरूरवसस्तदर्थाम्।
साधारणोऽयमुभयोः प्रणयो यतस्व
तां कौमुदीमिव समागमयेन्दुबिम्बे।।

'उत्कंठिता नायिका उर्वशी का जैसा चित्र 'विक्रमोर्वशीय' में अंकित किया गया है, वैसा अन्य नाटकों में नहीं देखा जाता। कवि ने 'मालविकाग्निमित्र' में रानी इरावती के आगे अग्निमित्र को जैसा झुका दिया है, वैसा ही 'विक्रमोर्वशीय' में काशिराजदुहिता के आगे पुरुरवा को झुकाया है। यह कोमल भाव अपूर्व है। पुरुरवा का कहीं विक्रम के नाम से उल्लेख नहीं पाया जाता। कवि ने इस नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय' क्यों रखा, समझ में नहीं आता। फिर भी इस नाटक का नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त है। विहर–वेतना का अनुभव नायक और नायिका दोनों को कराया गया है। उर्वशी की सखी चित्रलेखा पुरुरवा के पास आती है और उर्वशी का सन्देश सुनाती है कि, 'महाराज! उर्वशी आपको प्रणाम कर निवेदन करती है।'

हे सखि ! उस सुन्दरी को तुम उत्कंठिता नायिका बताती हो; परंतु इस पुरुरवा के दुःख को नहीं देखती! हम दोनों का प्रणय समान है। हम उसके लिए पागल हैं और वह हमारे लिए पागल है। इसलिए और विलंब न करो। जितना शीघ्र संभव हो, चन्द्रमा के साथ ज्योत्सना के मिलन की तरह हमारे साथ हमारे जीवन की ज्योत्स्ना उर्वशी को मिला दो। कौमुदी को छोड़कर चंद्रमा क्या क्षण काल भी रह सकता है।

उत्कंठा का यह भाव अनोखा है और वह कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नाटक की नायिका में देखा जाता है।

इसी तरह उपमान–उपमेय की कोमलता की झलक 'विक्रमोर्वशीय' में देख पड़ती है। राजा नायिका का इस प्रकार वर्णन करता है:–

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेःप्रसाधनविशेषः।
उपमानस्थापि सखे ! प्रस्युपमानं वपुस्तस्या।।

मित्र ! तुम्हारी प्रिय सखी के शरीरावयव इतने सुन्दर हैं कि आभरणों से वे अलंकृत नहीं होते; किन्तु उन्हीं से आभारणों की शोभा बढ़ती है। यही बात वेश–भूषा आदि की है। सुन्दरी के अंगों की उपमा देने के लिए संसार में कोई वस्तु ही नहीं है। संसार की समग्र मनोहर वस्तुएँ उसके अवयवों की उपमान हो रही हैं।

यह कालिदास की रसिकता और कल्पना के सौष्ठव का अनोखापन है। 'विक्रमोर्वशीय' के स्त्री पात्रों में इससे अधिक कुछ भी नहीं है। भूल से कुमार वन में प्रवेश करने से उर्वशी लता के रूप में परिणित हो जाती है। उस समय का विरह–वर्णन और संगमनी मणि के मिल जाने पर उर्वशी और पुरुरवा के मिलन का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही है।

'मालविकाग्निमित्र' का शृंगार 'विक्रमोर्वशीय' से अधिक उत्कट है; परन्तु संभोग शृंगार को विप्रलंभ में परिणित करने का कवि का कौशल अपूर्व है। दूती के द्वारा अग्निमित्र ने मालविका के साथ दिवासंकेत किया था। मालविका भी तदनुसार दिन में लताकुंज में आकर अग्निमित्र से मिल चुकी थी। इसी बीच में रानी इरावती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ आती हैं और उसकी दासियाँ द्वार पर ऊँघते हुए बैठे विदूषक से विनोद करती हैं। विदूषक 'साँप–साँप' कहकर चिल्लाता है और कुंज से बाहर आ जाता है। मालविका उसे रोकती है; पर वह नहीं रुकता और प्रकट हो जाता है। इरावती को सब भेद ज्ञात होने पर उसे ताना मारती और वह लज्जित हो जाता है। श्रृंगार रस मे संभोग पर विप्रलंभ की कैसी अच्छी मरहम–पट्टी की गयी है, जिसकी तुलना नहीं। कालिदास की लेखनी में यही कुशलता है। तीनों नाटकों की नायिकाओं में स्वयं प्रज्ञता नहीं देख पड़ती। तीनों प्रवाह पतित जान पड़ती है। मालविका की मुग्धता उर्वशी में नहीं है। सामाजिक सूक्ष्म दृष्टि मालविकाग्निमित्र में ही प्रकट हुई है।

शेक्सपियर के हेमलेट की तरह 'मालविकाग्नि मित्र' में भी नाटक में नाटक दिखाया गया है। पर रानी और इरावती नहीं चाहती कि मालविका अग्निमित्र के दृष्टिपथ में आ जाय; परन्तु विदूषक के भाव से नाटक के अन्तर्गत नाटक में वह सामने आ जाती है। दोनों एक दूसरे पर रीझ जाते हैं। मालविका नाचती है और फिर ठहर जाती है। उसके उस प्रकार के ठहरने की रमणयता का वर्णन राजा करता है। उस वर्णन में कवि की सूक्ष्म दृष्टि ने कमाल कर दिया है। स्त्रियों को स्वाभाविक रूप से खड़ी हुई सभी देखते हैं; परन्तु कैसे खड़े होने का स्त्रियों का स्वभाव होता है, यह कालिदास ने ही देखा। कवि लिखता है:–

वामं सन्धिस्तिमितवल्यं न्यस्तहस्तं नितम्बे।
कृत्वा श्यामाविटपसदृशं स्रम्तमुक्तं द्वितीयम्।।
पादांगुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं।
नृयादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्द्वम्।।

इसका अनुवाद लेखक ने इस प्रकार किया है:–

कर वाप कटि पै धरनसों झनकार
नहिं कङ्कन करें।
सिथलित सरल कर इतर सरला
लता की शोभा धरें।।
करिचरन अङ्गुलिसों कुसुमचय
चलित, भूमि निहारती।
अवनत कछुक यहि ठहरिबेसों नृत्य की छवि
हारती।।

कालिदास अपना वर्ण्य विषय भी अभिनव चुनते हैं। विदूषक के विनोद से मालविका मुस्कुरा देती है। यही कालिदास का वर्ण्य विषय हो गया।। नायक कहता हे–'अहा! मेरे नेत्रों को जो देखना था, सो देख लिया':–

स्मयमान मानयनाक्ष्याः
किञ्चिचभिव्यक्तदशनशोभि मुखम्।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पंकजं दृष्टम्।।

अर्थात्–

मृग नयनि के मुसकानसों,
मुख दसन युत दरसत भलो।
जांके क्छुक वेसर खुले हैं,
सोह मनु पंकज खिलो।।

'मालविकाग्निमित्र' नाटक की नायिका अंत तक मुग्धा ही रही है। 'अभिज्ञान शाकुंतल' की नायिका शकुंतला मुग्धा ही नहीं, अज्ञात यौवना है।

कालिदास स्वाभाविक सौंदर्य के बड़े पक्षपाती हैं। शकुंतला ऋषि के आश्रम में पली थी। उसके पास तड़क–भड़क की सामग्री कहाँ से आवे? परंतु उसका शरीर–लावण्य इतना मधुर था कि वल्कल पहनी हुई भी वह बड़ी मधुर मालूम होती थी। कवि कहता है–

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्।
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्।।

सेवार से घिरा होने पर भी जैसा कमल शोभा देता है, अथवा चंद्रमा का कलंक उसके सौंदर्य की अभिवृद्धि करता है, वैसी ही यह सुंदरी वल्कल पहनी हुई भी मनोहर दीख पड़ती है।

जो स्वभावतः सुंदर हैं, उनको अलंकारों की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी वस्तु उनको सुंदर बनाती है। स्वभाव और सौंदर्य को इससे बढ़कर उपासना अन्यत्र नहीं देख पड़ती। कालिदास के नाटकों के सब स्त्री पात्र इसी प्रकार सम्हाले–सुथरे हैं और बेजोड़ हैं। कवि ने अपने स्त्री पात्रों को सँवारने में अपने बुद्धिकौशल की सीमा पार कर दी है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कालिदास

प्रो० धर्मेन्द्र शास्त्री

जिस प्रकार विक्रमादित्य अनेक हैं, उसी प्रकार कालिदासों की भी संख्या कम नहीं हैं। वस्तुतः बात यह है कि जब कोई विशिष्ट व्यक्ति असाधारण उत्कर्ष का भागी होता है, तो समाज और राष्ट्र उसे अधिकाधिक गौरव प्रदान करने लगता है और ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं रहती, जो न केवल उसके काव्य–विषय और काव्यशैली का अनुकरण करने लगते हैं, अपितु, उसके नाम की भी टोपी पहन लेते हैं।* ऐसा करने में संभवतः उनकी आंतरिक अभिलाषा यह होती है कि ख्याति–देवी के वरपुत्रों में वे भी उसी प्रकार गिने जायँगे, जिस प्रकार उनके मूल संस्करण। कुछ ऐसे नाम यों ही बिना किसी मानसिक प्रेरणा के दे दिये जाते हैं, सिर्फ इस कारण कि नामों के चुनने के समय अनायास कुछ प्रसिद्ध नाम रसना की नोंक पर सवार हो जाते हैं। अनेकानेक राम, कृष्ण, अर्जुन, शंकर और सूरदास पटने की गलियों में मारे फिरते हैं। सच पूछिये तो इनके लिये उपर्युक्त संज्ञाएँ विडम्बना मात्र रह गयी हैं–अभिधाशक्ति शून्य अभिधाएँ कह लीजिये उन्हें। कुछ गौरवान्वित व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ तो खुले आम जातिवाचक संज्ञाओं के रूप में व्यवहृत होने लगी हैं। किसी अंधे आदमी को लकड़ी टेकते हुए सड़क पर जाते हुए देखिये, आप बोल उठते हैं–'सूरदास ! कुछ भजन तो सुनाओ।' इसमें कोई संदेह नहीं कि भक्त–शिरोमणि महाकवि सूरदास भी गाते थे, लेकिन सड़कों पर 'दे दे राम ! दिला दे राम !' की रट लगाते हुए जो हजारों 'सूरदास' आज नजर आवेंगे, वे कुछ भावनाओं के प्रतीक मात्र रह गये हैं–अंधी आँखें, मैले चिथड़े, विरूप बदन, टेढ़ी लकुटी, टूटा भिक्षा–पात्र, फूटी खंजड़ी, जीर्ण करताल और कुछ कण्ठस्थ गेय पद! किसी भी चमार भाई से पूछिये–'भई! आप?' वह अत्यंत दीन मुद्रा बनाकर हाथ जोड़कर आपकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देखेगा,–मानों वह किसी महान पातक के लिये क्षमायाचना करता हो–और दबी जुबान से कहेगा–'सरकार, रैदास!' तात्पर्य यह कि चूँकि एक चमार रैदास (रविदास) किसी जमाने में संत हो गया और दुनिया ने उसकी इज्जत की। अतः प्रत्येक चमार–चाहे वह असंत ही क्यों न हो–'रैदास' की उपाधि से विभूषित होगा।

जैसे 'सूरदास' अब व्यक्ति नहीं रहे, भावनापुंज हैं; 'रैदास' एक संत विशेष नहीं, अपितु व्यापकवर्ग के सूचक बन गये हैं; 'विक्रमादित्य' एक राजा न रहकर राजवंशों की उपाधि हो गये, वैसे ही 'कालिदास'–नामधारी कवियों की परम्परा ही चल पड़ी संस्कृत–साहित्य में[1]। यह भी एक कारण है कि कालिदास का समय निर्णय करने में आलोचकों के दल–के–दल खड़े हो गये हैं, जो षष्ठ शताब्दी पू०[2]ई० से लेकर पंचम शताब्दी ई० तक का कुलाबा मिलाते हैं। वस्तुतः कालिदास के काल–निर्णय और व्यक्तित्व–निर्णय में अनेकानेक बाधाएँ हैं, यथा–

क. अनेक विक्रमादित्यों का होना; क्योंकि बहुत विद्वानों ने पहले विक्रमादित्य का निर्णय करना चाहा है, और उसी निर्णय पर उसके दरबारी कवि कालिदास का; फलतः "छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा'।

ख. अनेक कालिदासों का होना।

ग. 'कालिदास'–नामधारी कवियों की रचनाओं का विषय–वैविध्य और बहुरंगी शैली, जिसके कारण अंतःसाक्ष्य (Internal evidence) पर किसी निष्कर्ष का निकलना अत्यंत कठिन हो जाता है।

कालिदास का सर्वप्रथम प्रामाणिक और ऋजु उल्लेख मिलता है पुलिकेशी द्वितीय के आइहोलवाले लेख (Insoription)[3] में। इस लेख का काल है 634 ई०। इसी काल में सम्राट् हर्षवर्धन के राजकवि बाण ने भी कालिदास की प्रशंसा की है।[4] अतः किसी भी दशा में कम से कम एक कालिदास की प्रख्याति छठी शती ई० के अन्त तक इतनी अधिक हो गयी थी कि वे परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राजाओं के यहाँ भी समान रूप से स्मरणीय एवं अनुकरणीय समझे जाते थे। दो तीन शताब्दियों में ही–अर्थात् 8वीं 9वीं शती ई० तक–कम से कम तीन कालिदासों की प्रसिद्धि काव्य जगत् में हो गयी; क्योंकि प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री राजशेखर लिखता है–

एकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृंगारे ललितोद्गारे[+] कालिदासत्रयी किमु।।[5]

दुर्भाग्य का विषय है कि राजशेखर ने इस त्रयी का विश्लेषण नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं कि राजशेखर के समय में कम से कम तीन कालिदासों की विभिन्न रचनाओं का उलझाव हो सकता था और वे अभी स्मृति में अलग–अलग कोने में आसीन थे, किन्तु 'होइ है सोइ जो राम रचि राखा'; कालिदास के व्यक्तित्व की गुत्थी उलझती ही चली गयी। कुछ आधुनिक आलोचकों के मत में इस त्रयी का स्पष्टीकरण यों होगा–

---

* नाम की ही नहीं, उपाधि की भी। पद्मगुप्त परिमल नाम कवि ने अपनी उपाधि 'कालिदास' रख ली थी। देखो पं० सीताराम जयरामजोशी, एम०ए० कृत 'संस्कृत का इतिहास'

1. हिंदी साहित्य के कालिदासों की चर्चा प्रस्तुत निबंध में अपेक्ष्य नहीं है।
2. (पू०ई०=पूर्व–ईस्वी (B.C.)। नारायण शास्त्री (टी०एस०) का यह मत है।
3. येनायोजिनवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म। विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकांलिदासभारविकीर्तिः।।
4. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु। प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।

\+ एक कालिदास का प्रसिद्ध विक्रमादित्य के समय ईसवी पूर्व पहली सदी में होना निश्चित है। ऐतिहासिकों का एक दल इस पक्ष में है। दूसरे कालिदास पहली सदी में हुए थे। कुछ प्रमाण इसी अंक के मेरे एक लेख में मिलेंगे और तीसरे कालिदास का छठी शताब्दी के लगभग होना सिद्ध किया जाता है। ऐतिहासिकों का दूसरा दल इसके पक्ष में है।

5. देखिये, काव्यमाला, 108, सूक्तिमुक्तावली। ('हाराबली' में भी यह पद्य आया है।–सं०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१म–कालिदास–उपनाम मातृगुप्त–उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य के राजकवि–समय 6ठी ई०पू०। रचनाएँ–अभिज्ञान–शाकुंतल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र, ये तीन नाटक तथा[1] सेतुबन्ध नामक प्राकृत का महाकाव्य।

२य–कालिदास–उपनाम मेघरुद्र–मालव संवत् के जन्मदाता मालवराज विक्रमार्क के राजकवि–समय 57 पू०ई०। रचनाएँ–कुमारसंभव, रघुवंश, मेघदूत, ये काव्य और[+] ज्योतिर्विदा–भरण नामक ज्योतिःशास्त्र का प्रन्थ।

3य–कालिदास–उपनाम कोटिजित्। समय 397–430 ई०। रचनाएँ–ऋतुसंहार, श्रृंगारतिलक, श्यामलादंडक, नवरत्नमाला आदि कविताएँ, तथा श्रुतबोध नामक छन्दोग्रन्थ[x] आउफेस्ट[2] महोदय की सूची में कालिदासों और उनकी रचनाओं का जो उल्लेख है, उसके अनुसार निम्नलिखित कालिदास होंगे–

संख्या	कालिदास नामधारी	रचनाएँ	ग्रन्थ	विशेष संख्या
1.	कालिदास	वर्ग अ–अभिज्ञानशाकुन्तल, कुन्तलेश्चरदौत्य, कुमारसंभव, मालविकाग्निमित्र, मेघदूत, रघुवंश, विक्रमोर्वशीयम। वर्ग आ–अम्बास्तव, ऋतु संहार, कालीस्तोत्र, काव्य नाटकालंकार, घटखपर, चण्डिकादंडकस्तोत्र, दुर्घटकाव्य, नलोदय, नवरत्नमाला, पुष्पवाणविलास, राक्षमकाव्य, लघुस्तव, विद्वद्विनोदकाव्य, वृन्दावनकाव्य, श्रंगारतिलक, श्रंगारसार, श्यामलादंडक, श्रुतबोध, सेतुग्रन्थ।	7	इनमें कुन्तलेश्वरदौत्य अप्रसिद्ध है। इनमें ऋतुसंहार, नलोदय, श्रृंगारतिलक, श्रुतबोध और सेतुबन्ध (प्राकृत) ये अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध कवि कालिदास–रचित माने जाते हैं। अधिक लोग केवल ऋतुसंहार के पक्ष में हैं। सेतुबन्ध, रामसेतु और रावणवध, ये एक ही रचना के भिन्न नाम भी माने गये हैं और कवि का नाम प्रवरसेन भी लिखा मिलता है।
2.	कालिदास	गंगाष्टक, मंगलाष्टक	2	यह रचना भी कालिदासकृत प्रसिद्ध है और उच्चकोटि की है।
3.	कालिदास	ज्योतिर्विदाभरण	1	
4.	कालिदास	रत्नकोश	1	
5.	कालिदास	शुद्धि चन्द्रिका	1	
6.	कालिदास	कुन्दप्रबन्ध	1	
7.	कालिदास	त्रिपुरसुन्दरीस्तुतिकाव्य	1	ये पद्य क्षेमेन्द्र द्वारा उद्धृत है उपनाम नवकालिदास। माधव की उपाधि।
8.	कालिदास	स्फुट पद्य	1	
9.	अभिनव कालिदास	संक्षेपशंकराचार्य	1	

1. 'सेतुबन्ध' के सम्बन्ध में मेरा 'कालिदास कालनिर्णय के कुछ सूत्र' लेख पढ़िये।

\+ कालिदास को ज्योतिर्विदाभरण के कर्ता मानने में उसी का यह श्लोक है–काव्यत्रयं सुमतिकृद्रघुवंशपूर्वं जातं यतो ननु कियच्छ्रुतकर्मवादः।। ज्योतिर्विदाभरणकालविधानशास्त्रं श्रीकालिदासकवितो हि ततो बभूव।। इसी ग्रन्थ के इस श्लोक के प्रमाणानुसार ये कालिदास ईसा की प्रथम शताब्दी में उत्पन्न माने जाते हैं–वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौसम्मिते। मांसे माधवसंज्ञकेऽत्रविहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः।। इससे यह सिद्ध होता है कि कलियुगारम्भ के 3068 संख्यक वर्ष में कालिदास वर्तमान थे। यह ई०पू० सदी में पड़ता है। अब कई ऐसे कारण दिखलाये जाते हैं, जिनसे ज्योर्तिविदाभरण सुप्रसिद्ध कालिदासकृत नहीं माना जाता और ज्योर्तिविदाभरण का रचना–काल 1242 ई० के लगभग सिद्ध होता है (देखो श्री विश्वनाथ रेऊकृत 'राजा भोज' पृ० 208) इससे संभव है, इस समय कोई अन्य कालिदास हो और इससे उनका सम्बन्ध जुड़ गया हो।

x सिंहल दीप में एक कथा प्रचलित है। उससे ज्ञात होता है कि वहाँ के राजा कुमारदास ने, जिसका नाम 'कुमार पाण्डेय' भी था, अपने यहाँ कालिदास को बुलवाया था। कालिदास और कुमारदास में इतनी कविष्ठता थी कि कादिास के मारे जाने पर कुमारदास दाहक्रिया के समय उनकी चिता में स्वयं गिरकर भस्म हो गया था। सिंहल द्वीप के दक्षिणी प्रान्त के मांटर नामक ...में कालिदास का स्मारक भी बना हुआ है जिसकी पुष्टि 'में होती है। 'महावंश' के अनुसार कुमारदास की मृत्यु 524 ई० में हुई थी। इससे भी उस समय में एक कालिदास के होने की पुष्टि होती है। (देखो 'राजा भोज' पृष्ठ 209)

2. Thoodor Aufreeht : C

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

10.	अभिनव कालिदास	अभिनवभारत जम्मू, भागवत चम्पू	2	
11.	काश्यप अभिनव कालिदास	श्रृंगार कोशभाण	1	
12.	नव कालिदास	सारसंग्रहकाव्य	1	
13.	अकवरीय कालिदास	स्फुट पद्य	1	
14+	कालिदास गणक	शत्रुपराजयस्वरशास्त्रसार	1	क्रीडावली'–रचयिता योगानन्द के पिता। हृदयाभरण, देवदास और शंकर के पिता।
15.	(कालिदास)	शत्रुपराजयस्वरशास्त्रसार		
16.	(कालिदास)	रचनाओं की पूर्ण संख्या	41	

इस प्रकार हम देखते हैं कि कम–से–कम चौदह कवि कालिदास हुए हैं और कम–से–कम दो कालिदासों को कवियों के पिता होने का सौभाग्य है।●

+ उक्तसंख्यक कालिदासों में राजा भोज के समय में एक कालिदास का होना निश्चित है। क्योंकि राजा भोज और कालिदास के सम्बन्ध में जो इतनी कहानियाँ हैं; कालिदास और कवियों के सम्बन्ध में जो इतनी किवदंतियाँ हैं, वे निराधार नहीं हो सकतीं।
विविध विषयों के प्रामाणिक ग्रन्थों के रचयिता राजा भोज 11वीं सदी में हुए थे। यह उनके ताम्रपत्रों से ही प्रमाणित है। इनके समय में एक कालिदास के होने का एक पुष्ट प्रमाण भी मिलता है।
मद्रास सरकार के द्वारा प्रकाशित (1906 ई०) हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में 'नानार्थ शब्दरत्न' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख है। उसके आदि और अन्त से यह ज्ञात होता है कि टीकाकार निचुल ने अपने को भोज का कृपापात्र और कालिदास का मित्र बताया है। वह यों है–आरंभ–स्वमित्रकालिदासोक्तशब्दरत्नार्थ जृम्भिताम्"।
अंत–इति श्रीमन्महाराजशिरोमणि श्री भोजराजप्रबोधित निचुल कवि।

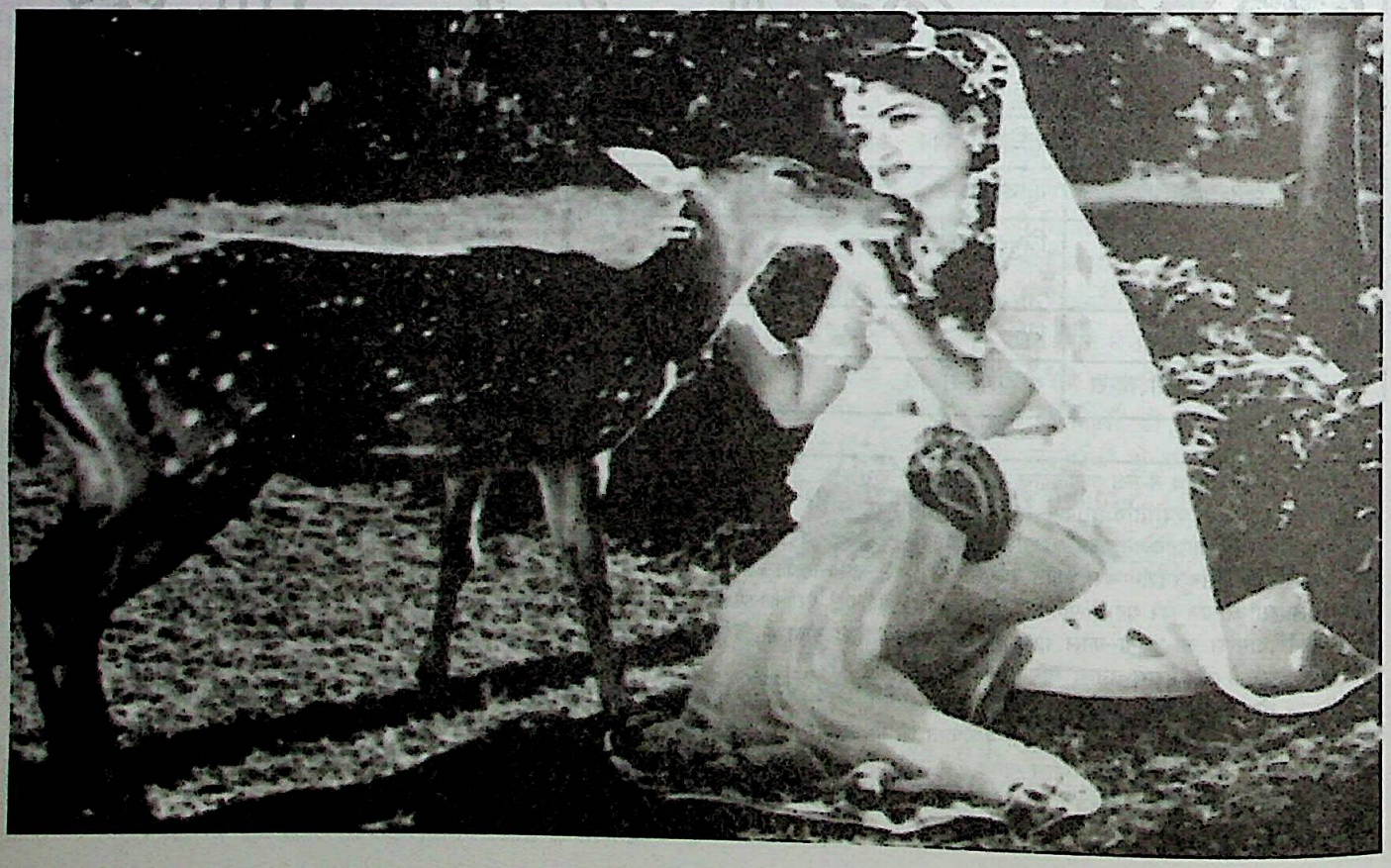

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि कालिदास के नाटकों की वर्तमान संदर्भ में मंचीय उपयोगिता

यशवंत उदयभान निकोसे

समय की आवश्यकता के कारण संस्कृत सरल और सुबोध बनी और उसने अपनी अनुकूलन क्षमता के अनुसार आधुनिकता को स्वीकार किया। 1950 के बाद से बंगाल में सबसे अधिक संस्कृत नाटक लिखे गये। नाटककार थे–विश्वेश्वर, विष्णुपद भट्टाचार्य, यतीन्द्र विमल, चौधरी ने लगभग चालीस 1800 से 1870 के बीच के प्रायः सभी संस्कृत नाटककार दक्षिण भारत के रहे। 1870 से 1920 के बीच इसका विस्तार हुआ और महाराष्ट्र से बंगाल तक के नाटककारों ने संस्कृत नाट्य साहित्य में अभिवृद्धि की।

हमारे देश में कालिदास का इतना अधिक अध्ययन हुआ कि उसकी सुगंध विदेशों तक फैली। सर विलियम जोन्स नामक एक जज कलकत्ता के उच्च न्यायालय में थे। जोन्स को संस्कृत पढ़ना था। आखिर में एक वैद्य जी ने पढ़ाना शुरू किया। एक दिन उन्होंने पढ़ाते–पढ़ाते नाटक का नाम लिया। जोन्स चौंक पड़े। उन्होंने पूछा, संस्कृत में नाटक भी है। वे तो समझते थे कि, संस्कृत मरी भाषा है, उसमें पूजा-पाठ के मंत्र ही है। वैद्य जी ने कहा, मैं तुम्हें अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक पढ़ाऊँगा। जोन्स ने अभिज्ञान शाकुन्तल-नाटक पढ़ा। उछल पड़े। धड़ से अंग्रेजी में अनुवाद कर डाला। अब यह नाटक पहुँचा योरोप। तहलका मच गया। दौड़ पड़े लोग संस्कृत पढ़ने। जर्मनी का एक कवि था–गेटे ने उसने जब अनुवाद पढ़ा, तो लटटू हो गया। इस नाटक की बड़ी तारीफ की और कहा–"अगर स्वर्ग और भूमि दोनों का ऐश्वर्य एक जगह चाहते हो, तो मित्र, अभिज्ञान शाकुन्तलम् पढ़ो, "अभिज्ञान शाकुन्तलम्"।

अब लोग दौड़े। तब से वेबर, लासन, याकोबी, मोनियर विलियम्स, मैकडानल्ड, विन्टर-नित्ज, क्रीथ आदि दर्जनों विद्वान कालिदास पर काम करते रहे है। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन आदि में कालिदास की रचनाओं के अनगिनत अनुवाद हुए है। उनके प्रदर्शन "शो" भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में हुये है।

कालिदास के समय का राजा–विक्रमादित्य

कालिदास का स्थिति काल–

(क) ईसा के पहले पहली शताब्दी

(ख) ईसा की चौथी शताब्दी

(ग) ईसा की पाँचवीं शताब्दी

अन्य मत प्रमुख नहीं है।

कालिदास का निवास स्थान–उज्जैन

कालिदास की रचनाएँ–

काव्यः–1. ऋतु संहार 2. मेघदूत 3. रघुवंश 4. कुमार संभव

नाटकः–5. मालविकाग्निमित्र 6. विक्रमोर्वशीय 7. अभिज्ञान–शाकुन्तलम्।

(१) ऋतु संहार–

हम अपने जीवन में जन्म से मृत्यु तक ऋतुओं को देखते आ रहे हैं। प्रकृति से तो हम भी बहुत प्यार करते है। परंतु जब कालिदास युवक थे तब उन्होंने नेचर को देखा। प्रकृति को देखा तब उनकी ऋतुओं के प्रति क्या संवेदनाएं थी। कैसा महसूस करते थे। उनकी कल्पनाओं की उड़ान का हृदय के कवि का यहां परिचय होता है। उन्होंने अपनी पहली कविता पहला काव्य लिखा। "ऋतु–संहार" इसके माध्यम से मानव जाति को ऋतुओं से परिचय करवाया। कालिदास से छहों ऋतुओं का वर्णन किया। गर्मी, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमंत और बसंत। कालिदास ने ऋतुओं को ज़रा ध्यान से देखा।

उन्होंने बताया, जेठ–आषाढ़ में गर्मी पड़ती है। सूरज तपने लगता है। बवंडर उठ रहा है, रेत जल रही है। ऐसे में साँप प्यास के मारे पागल होकर मोर की छाँह में बैठ जाता है?

मोर उसे मारता नहीं, वह भी व्याकुल है। शेर भी प्यास से बेहाल है। बगल खड़े हाथी से बोलता तक नहीं। गर्मी के मारे सब अपनी दुश्मनी भूल गए है।

गर्मी के बाद–उमड़ते–घुमडते बादल आसमान में आ जाते है। वर्षा का समय आता है, राजाओं की तरह। गरजते हुए, काले–काले बादल उसके हाँथी है। चमकती बिजली उसकी पताका है। बादल गरजते हैं। मेढक टर्र–टर्र करते है, ये अजीब से बाजे हैं, वर्षा महाराज से सारी धरती हरी है। नदियाँ उमड़ती बह चलती हैं। हँस अब मानसरोवर की ओर उड़ चले हैं। ऐसा है यह वर्षाकाल।

फिर आयी शरद–सुहानी–सारा आकाश नीला, साफ धरती का कीचड़ सूखा, आसमान के बादल साफ। दिन को सूरज चमकता है रात को तारे। कहीं–कहीं सफेद बादल के टुकड़े। वनों में सफेद फूल, खेतों में पके धान। यह शरद !

अगहन–पूस में हेमंत–कुहरा पड़ता है। अब रेशमी नहीं, ऊनी कपड़े चाहिए। कमल और कदम्ब फूलता है।

फिर आया शिशिर–खूब जाड़ा पड़ता है। भारी कपड़े ओढ़ने पड़ते है। आग तापना अच्छा लगता है। घाम में बैठना रुचिकर है। पान में केसर, कस्तूरी खायी जाती है। इसे कहते हैं जाड़ा।

फिर आया बसंत–आम के बौर, भौंरे की गुनगुन, कोयल की कूक, सरसों के पीले खेत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कितने अच्छे लगते हैं। फूल खिलते हैं, सुगंधित हवा बहती है। अजीब सी मस्ती है।

"ऋतु–संहार" के बाद लिखा "मेघदूत" मेघदूत की कहानी बहुत सुंदर है। हिमालय के पहाड़ पर यक्ष रहता था। कुबेर इनका राजा था। यक्ष इनके यहाँ नौकरी करता था। राजा कुबेर के यहाँ उसका विवाह हुआ, यक्ष का काम था राजा कुबेर के यहाँ फूल पहुँचाना, एक दिन देर रात तक जागता रहा। जिस कारण यक्ष देरी से सोकर उठा और अपना काम समय पर कर नहीं पाया। राजा कुबेर यक्ष पर गुस्सा हो गये। राजा ने यक्ष को सजा दी। एक बरस तक पहाड़ से नीचे रहने की, अलका में यक्ष रहता था। हिमालय के ऊपर बसी थी, कुबेर की राजधानी थी। यहाँ ऊँचे– ऊँचे घर थे। सफेद, बाग भी बहुत बड़ा था। इसी में शंकर जी के माथे पर चन्द्रमा है। उसकी किरण जब घरों पर पड़ती तो वे और भी सफेद हो जाते है। यही पर घर यक्ष का भी था। घर में उसकी सुंदर स्त्री थी। उसकी स्त्री वीणा भी बजाती थी। लेकिन यक्ष को घर छोड़ना पड़ा। वह आया रामगिरि पर। आठ महीने जैसे–तैसे बिता दिये। आषाढ़ आया।

पहला दिन था, आकाश में काले बादल दिखायी पड़े–दूर पर, ऐसे जैसे हाँथी खेल रहे हों। यक्ष ने बादल देखे। उसने सोचा, अरे ये तो उड़कर अलका जा रहे है! हम सब जानते है। बादल में कोई जान तो होती नहीं। सिर्फ धुँआ, पानी, हवा, बिजली यही तो सब कुछ होता है। लेकिन यक्ष को इसका कुछ ख्याल न आया। अरे भाई! दुःखी को सजीव–निर्जीव का ध्यान थोड़े ही होता है। यक्ष ने कुटज के फूल तोड़े, अँजुरी भर चढ़ाया, मेघ को।

फिर कहने लगा–सुनो ! तुम ऊँचे कुल में जन्मे हो, इन्द्र के दूत हो, जैसा, चाहो वैसा रुप भी बना सकते हो। मैं यहाँ दूर पड़ा हूँ, अपने घर से, अपने लोगों से। मेरे भाई हो तुम। अलका में मेरा घर है। तुम्हें वहाँ जाना है। वहाँ जाओगे, तो देखोगे अपनी भाभी को। वह हमारे आने के दिन गिन रही होगी। अच्छा! पहले अपने जाने का रास्ता समझ लो, फिर संदेश सुनना !

ये बाते यक्ष ने कही। फिर अलका का रास्ता बताने लगा। अब तुम समझ गये होगे, इस काव्य का नाम "मेघदूत" क्यों पड़ा? इसमें मेघ से संदेश कहलवाया गया है। इसलिए इस काव्य का नाम है–'मेघदूत'। जिसके माध्यम से महाकवि कालिदास ने यक्ष चरित्र के माध्यम से अपनी कल्पनाओं को बहुत ही खुबसूरती से अपनी कल्पनाओं को साकार किया है। सचमुच काव्य ऐसा लिखा है, जैसे वह कालिदास की आप बीती हो।

कालिदास का तीसरा महाकाव्य है "रघुवंश" महाकाव्य किसी एक आदमी के जीवन या उसके वंश को लेकर लिखा जाता है। "रघुवंश दूसरे तरीके का महाकाव्य है। प्रभु रामचन्द्र को हम सभी जानते हैं। उनके पूर्वजों में रघु बड़े महान थे। इस महाकाव्य में उनके वंश के विषय में लिखा है। रघुवंश को संस्कृत वाले सुंदरतम् महाकाव्य कहते है। इसमें सबसे पहले दिलीप की कथा है। ये दिलीप कौन थे?

राम का कुल सूर्यकुल कहा जाता है। इसी में दिलीप नाम के राजा हुए थे। उनकी रानी का नाम था सुदक्षिणा। इनकी कोई भी संतान नहीं थी। दिलीप और सुदक्षिणा अपने रथ पर बैठ कर गुरु वशिष्ठ के यहाँ गये। वशिष्ठ गुरु से पुत्र न होने का कारण पूछा। गुरु वशिष्ठ ने बताया कि तुमने एक बार स्वर्ग से लौटते समय स्वर्ग की गाय कामधेनु को प्रणाम नहीं किया। उसी के अभिशाप से तुम्हें सन्तान नहीं हुई। अब उसकी पुत्री नंदिनी मेरे यहाँ है, उसे तुम प्रसन्न करो। दिलीप राजा तैयार हो गये। राजा रानी दोनों नंदिनी की सेवा करने लगे। एक दिन नंदिनी ने उनकी परीक्षा ली। दोनों सच्चे सेवक निकले। नन्दिनी ने उन्हें वरदान दिया और उन्हें पुत्र हुआ, रघु। बड़ा वीर था। दिलीप राजा ने यज्ञ करवाया। रघु यज्ञ के घोड़े के पीछे-पीछे चले, उसकी रक्षा करने के लिए। इन्द्र ने घोड़ा पकड़ लिया। घोड़ा नज़र ही नहीं आ रहा था। रघु ने नंदिनी के दूध से अंजन करके देखा तो सामने इन्द्र घोड़ा लिये खड़ा था। इन्द्र ने घोड़ा छोड़कर और कुछ भी माँग लेने के लिए कहा। रघु ने वरदान माँगा, बिना घोड़े के ही यज्ञ का पूरा फल हो। यज्ञ सफल हुआ। इसके बाद दिलीप राजा तपस्या के लिए वन में चले गये। उसके बाद रघु राजा हुए। रघु राजा वीर और बहुत दानी थे। वर्तन्तु ऋर्षि थे। एक दिन उनके शिष्य कौत्स रघु राजा के पास धन माँगने आए, उन्हें गुरुदक्षिणा तो देनी ही थी। इधर रघु राजा सब कुछ दान कर चुके थे,। उनके पास मात्र मिट्टी के बर्तन बचे हुये थे। यह बात कुबेर देवता के समझ में आ गई। तो खुद ही रात को धन बरसा कर चले गये। तो रघु राजा ने फिर दान दिया। ऐसा था रघुराजा का प्रताप।

उनके बाद अज राजा हुए। उनकी रानी इन्दुमती बहुत सुंदर थी। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर का बहुत सुंदर वर्णन किया है। स्वयंवर के लिए दूर-दराज़ से बड़े-बड़े राजे-महाराजा आये। परंतु इन्दुमती ने अज को ही चुना। अंत में इन्दुमती का विवाह अज राजा से ही हुआ। एक दिन दोनों बैठे हुए थे कि अचानक ऊपर से एक माला गिरी, व माला की चोट से इन्दुमती का देहांत हुआ। अज राजा खूब रोये दुःखी हुए। उनसे दुःख सहा न गया। वे भी एक दिन मर गये।

फिर तो उनके पुत्र दशरथ राजा हुए इनके बाद रामचन्द्र ही राजा हुए। रामचंद्र की सारी कथा कालिदास ने बहुत ही सुंदर ढंग से विस्तार से लिखी है। राम का जन्म, ताड़का वध, स्वयंवर वनवास, सीताहरण राम–रावण की लड़ाई, राम की विजय, अंत में राम अयोध्या आये। फिर राजा बने।

सीता का त्याग, सीता बाल्मीकि महर्षि के आश्रम में पहुँचती है। लव–कुश का जन्म। राम ने यज्ञ किया सीता की सोने की मूरत बनाकर उसके साथ।

एक दिन लव–कुश अयोध्या गये। बाल्मीकि रामायण के गीत गाते हुए। राम ने सुना। सीता को दुबारा वापिस बुलाना चाहा। लेकिन सीता नही लौटी। धरती फट गयी। उसमें समा गयी। राम भी दुःखी हुए। राज–पाट लव–कुश को देकर खुद स्वर्ग चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके बाद लव–कुश राजा हुए। इनके बाद "रघुवंश" का अंतिम राजा अग्निवर्णा हुआ। यह राजा बड़ा ही विलासी राजा था। उसे क्षय–रोग हुआ और उसकी अचानक मृत्यु हुयी। उसकी रानी के गर्भ में बालक था। उस कारण रानी ने ही गद्दी संभाली। यहीं पर रघुवंश की कथा समाप्त होती है।

राम के समय तक उनका वंश ऊपर उठा। उनके बाद गिर गया। यही कथा है। कोई भी वंश जब तक कर्तव्य–पालन करता है, तब तक ऊपर उठता है, विलास में पड़ता है, तो गिर जाता है।

कालिदास ने अपने जीवन का अंतिम महाकाव्य लिखा जिसका नाम है–"कुमार संभव" इसमें शिव–पार्वती की कथा है। एक बार दैत्यों ने देवताओं को बहुत परेशान किया। उनका नेता था तारक/तारकासुर से इन्द्र भी हार गये। तब ब्रह्म ने बताया कि अगर शिवजी का विवाह पार्वती से हो जाए, और उनका कुमार देवताओं का सेनापति बने, तो वह तारकासुर को मार सकता है।

पार्वती हिमालय की पुत्री थी। हिमालय पर शिव रहते थे। समाधि में। पार्वती उनकी सेवा करती थी। इन्द्र ने कामदेव को भेजा कि जाकर शिव की समाधि तोड़ दो। उनके मन में विवाह की इच्छा पैदा करो। कामदेव आया।

कामदेव विवाह का देवता है। उसके फूल के धनुष-बाण होते है। उसने चढ़ाया बाण। तभी शिवजी की समाधि टूटी। उन्होंने सामने कामदेव को देखा।

गुस्से में आकर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया। अब हाहाकार मच गया। शिव समाधि में लीन हो गये।

परंतु पार्वती तो शिव से विवाह करना चाहती थीं। उन्होंने घोर तपस्या की। पत्ते खाये, गर्मी में आग तापी, भूखी रही। आखिर शिव जी आये। ब्रह्मचारी के वेश में। उन्होंने पार्वती को बहुत बहकाया। पर पार्वती अटल रही। अंत में शिव प्रसन्न हुए।

बारात आयी। धूमधाम से शिव का विवाह हुआ। पार्वती शिव के घर गयी। अब कुमार का जन्म संभव हो सका। जो आज कुमार संभव मिलता है। उसमें और भी जुड़ा हुआ है। लेकिन ऐसा लगता है कि कालिदास ने यहीं अपना काव्य समाप्त किया है।

***

कालिदास का पहला नाटक "मालविकाग्निमित्र" है इस नाटक में अग्निमित्र और मालविका की कहानी है। उन्हीं की कथा को लेकर नाटक लिखा गया है।

ईसा से लगभग दो सौ साल पहले तक मौर्यों का राज्य था। इसी वंश में अशोक हुआ था। इस वंश के आखिरी राजा को मार कर उसका सेनापति पुष्यमित्र शुंग राजा बन गया। उसी का लड़का था अग्निमित्र। मालविका भी एक राजकुमारी थी। इन्हीं की कहानी के आधार पर नाटक लिखा गया।

अग्निमित्र विदिशा में राज्य करता था। विदिशा को आजकल मिल्सा कहते है। उसके महल में बहुत सी रानियाँ थी। एक दासी भी थी। उसका नाम मालविका था। बड़ी सुंदर थी यह दासी। राजा ने पहले इसकी तस्वीर देखी, फिर इसे देखा। राजा मालविका से विवाह करना चाहता था। रानियों को यह मालुम हो गया। वे मालविका को छिपा कर रखने लगीं। राजा मालविका को पाने की कोशिश करता, लेकिन पा न सकता? आखिर में मालविका मिल ही गयी।

सिन्धु नदी के तट पर ग्रीस देश की सेना से अग्नि मित्र ने लड़ाई की और जीत भी गया। तभी यह पता चला कि मालविका सचमुच एक राजकुमारी है। डाकुओं ने राह में लूट लिया था। वहाँ से वह विदिशा के महल में चली आयी। यह पता चलने पर रानियों ने खुशी से मालविका का विवाह अग्निमित्र से करा दिया जीत की खुशी, सारे महल में आनन्द छा गया। कालिदास ने दूसरा नाटक लिखा। इस नाटक का नाम–"विक्रमोर्वशीय" इसकी कहानी खूब मनोरंजक है। यह कहानी "ऋग्वेद" से ली गयी।

"ऋग्वेद"?

वेदों का नाम तो सभी ने सुना है। हमारे देश की और सारी दुनियाँ की सबसे पुरानी किताबों में से है। इन्हीं में सबसे पुराना ऋग्वेद है। इनमें देवताओं की स्तुतियाँ और हमारे पुरखों की कथाएं है। हाँ, इसी ऋग्वेद से कालिदास ने अपने नाटक की कथा ली है। इसमें राजा पुरुरवा और उर्वशी की कहानी है।

राजा पुरुरवा बड़े ही वीर थे। बड़ी धाक भी थी उनकी। एक दिन स्वर्ग की अप्सारा उर्वशी को असुर उठाये लिये जा रहे थे। स्वर्ग, जहाँ देवता लोग रहते थे और अप्सरा, स्वर्ग लोक की नाचने–गाने वाली थी। तो उसी उर्वशी को असुर लिये जा रहे थे। उर्वशी की सखियाँ चिल्लायी। राजा पुरुरवा गये, असुरो को मार भगाया और उर्वशी को छुड़ा लिया। पुरुरवा और उर्वशी एक दूसरे से विवाह करने की सोचने लगे। लेकिन स्वर्ग के राजा इन्द्र ने उर्वशी को बुला लिया। वह स्वर्ग लौट गयी। पुरुरवा उर्वशी के विरह में विकल हो उठे। उर्वशी ने एक पत्र राजा पुरुरवा के पास भेजा। यह पत्र राजा की दूसरी पत्नी के हाथ लग गया। वह भी रुठ गयी। राजा साहब उसको मनाने में लगे।

इसी स्वर्ग में एक घटना घटी। वहाँ एक नाटक "लक्ष्मी–स्वयंवर" खेला गया। लक्ष्मी स्वयंवर नाटक में लक्ष्मी जी के विष्णु भगवान से विवाह की बात थी। उर्वशी लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी। उसका मन तो पुरुरवा में लगा था। जब उससे पूछा गया तुम किससे प्यार करती हो, तो उसने विष्णु नाम लेने के बजाय पुरुरवा का नाम ले लिया नाटक बिगड़ गया नाटक का निर्देशन भरत मुनि कर रहे थे, वे नाराज हो गये। उन्होंने उर्वशी को शाप दे दिया। उसे इन्द्र ने पृथ्वी पर भेज दिया।

शर्त यह थी कि जब तक पुरुरवा को अपना पुत्र न मिल जाए, उर्वशी उनके पास रहेगी। उर्वशी आयी।

पुरुरवा–उर्वशी कैलाश पर घूमने लगे। घूमते–घूमते उर्वशी एक बाग में घुस गयी, जहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने पर नारी लता हो जाती थी। उर्वशी लता हो गयी। पुरुरवा पागल से हो गये। उन्हें उर्वशी दिखायी न पड़ती। अंत में एक मणि मिला, उसका नाम था 'संगम मणि'। उसे लेकर छूने से लता फिर उर्वसी बन गयी। बहुत दिन बीत गये।

उर्वशी को एक पुत्र हुआ। उसने पुत्र को एक आश्रम में भेज दिया। वहाँ जाकर पुत्र बड़ा हुआ। एक दिन आश्रम में उसने शरारत कर दी। मुनि ने उसे फिर पुरुरवा के पास भेज दिया। पहली शर्त के अनुसार उर्वशी स्वर्ग लौट गयी। फिर दैत्यों से एक लड़ाई हुई। पुरुरवा ने इन्द्र को सहायता करके उन्हें जिता दिया। इन्द्र में भी खुश होकर उर्वशी को हमेशा के लिए पुरुरवा को दे दिया।

महाकवि कालिदास का महान नाटक 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' अर्थात् 'शकुन्तला की पहचान'

एक थे राजा दुष्यन्त। एक दिन वे जंगल में शिकार खेलने चले गये। एक हिरन का पीछा करते–करते वे एक आश्रम के पास जा पहुँचे।

वह आश्रम था कण्व ऋषि का। हिरन वहीं का था। लोगों ने राजा को हिरन मारने से रोका। राजा मान गये। उस दिन कण्व ऋषि बाहर गये थे। आश्रम में शकुन्तला थी, अतिथियों के सत्कार के लिए।

शकुन्तला का मतलब जिसे पशु–पक्षियों ने पाला हो। जब शकुन्तला पैदा हुई। तो उसे वहीं छोड़कर मेनका चली गयी। चिड़ियाँ शकुन्तला को रोती देखकर छाया कर बैठ गयी। ऋषि कण्व ने शकुन्तला को देखा, शकुन्तला को आश्रम ले आये। शकुन्तला वही पली बड़ी हुयी।

शकुन्तला ने दुष्यन्त को देखा, दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखा। एक दूसरे पर मोहित हो गये। शकुन्तला की सखियाँ थी, अनसुया और प्रियम्बदा। उन लोगों ने कोशिश करके दोनों को मिलाया। छिपे–छिपे गंधर्व–विवाह हो गया। दुष्यन्त ने शकुन्तला को एक अंगूठी दी। जब कोई पुरुष और स्त्री छिपे–छिपे विवाह कर लेते है, तो गंधर्व–विवाह होता है। दुष्यन्त चले गये अपनी नगरी हस्तिनापुर। इधर शकुन्तला दुष्यन्त के चले जाने से अनमनी थी। आश्रम में ऋषि दुर्वासा आये। शकुन्तला देख न सकी, अतिथि का सत्कार न हुआ। ऋषि दुर्वासा क्रोधित हो उठे। झट से शाप दे दिया। 'जा! जिसके बारे में सोचती हुई बैठी है। वही तुझे भूल जायेगा। अब तो अनर्थ हो गया। अनसूइया ने जाकर मनाया, तब कहा कि अच्छा अंगूठी दिखा देने पर याद आ जाएगा। शकुन्तला की जान में जान आ गयी।

कण्व ऋषि आश्रम आये। आते ही अपने आप उन्हें सब कुछ मालुम हो गया। उन्होंने शकुन्तला को विदा किया।

शकुन्तला जा रही है। हिरनों के मुँह का कौर गिर पड़ा, मोरों ने नाचना बंद कर दिया। लताओं से बूँदें टपक रही है,। ऐसा लग रहा है, मानो वो रो रही हों।

ऋषि कण्व की आँखों में आँसू थे तथा आश्रम रो रहा था। शकुन्तला के जाने से आश्रम में उदासी छा गयी।

चलते–चलते वह थक गयी। रास्ते में एक तालाब नज़र आया, वह वहाँ रुक गयी। उसने उस तालाब में नहाया परंतु नहाते वक्त तालाब में उसकी अँगूठी गिर गयी। शकुन्तला पहुँची दरबार में, लेकिन राजा दुष्यन्त तो शकुन्तला को भूल चुका था। लाख याद दिलाने पर भी न माना। अँगूठी गिर गयी थी।

शकुन्तला अपमानित हुई। न लौट सकती न रह सकती थी। दुष्यन्त के मंत्री ने कहा और निर्णय लिया, 'शकुन्तला के गर्भ में बालक है। अगर वह आपका पुत्र होगा, तो आप जैसा होगा। उसके जन्म तक मैं इसे अपने पास ही रखूँगा।

एक अप्सारा यह सब देख रही थी। उसने शकुन्तला को आकाश मार्ग से मरीचि ऋषि के आश्रम में पहुँचा दिया। वहाँ शकुन्तला को पुत्र हुआ। जिसका नाम रक्खा गया भरत। उस पुत्र के नाम पर देश का नाम भारत हुआ। भरत बड़ा होने लगा। वह शेर के बच्चों से खेलता था।

दुष्यन्त के राज दरबार में एक दिन एक मछुआरे को पकड़कर लाया गया। उसके पास दुष्यन्त की अँगूठी मिली। उससे पूछा गया तो फिर उसने बताया कि मैंने उस तालाब की मछली के पेट के अंदर से यह अँगूठी निकाल अब दुष्यन्त को होश आया। दुष्यन्त को शकुन्तला की याद आने लगी।

राजा दुष्यन्त बैचेन थे। विकल थे। इसी बीच स्वर्ग असुरों ने उधम मचाया। दुष्यन्त का बुलावा आया। दुष्यन्त इन्द्र की सहायता के लिए गया। यहाँ कई साल बीत गये। राजा दुष्यन्त ने अपनी शक्ति से असुरों को जीता। स्वर्ग से लौटे।

लौटते समय मरीचि के आश्रम में आये। वहाँ भरत को खेलते हुए देखकर उनके दिल में प्यार उमड़ पड़ा। बाद में उन्हें पता चला, यह तो उन्हीं का पुत्र है, और शकुन्तला भी यहीं है। दोनों का मिलन हुआ, मरीचि ऋषि ने शकुन्तला को दुष्यन्त के साथ भेज दिया इस तरह से नाटक का सुखांत हुआ। कहते है समय इतिहास को दुहराता है। इसलिये आज के समसामासिक समय में महान कवि कालिदास के काव्य की और नाटकों की मंचीय उपयोगिता बढ़ जाती है। कवि कालिदास के काव्य और नाटक अमर है। आज के पर्यावरण के विषय में आज के युग के चरित्र के बारे में व्यक्ति के चरित्र के विषय में/स्थान/नैतिक मूल्य/आदर्शवाद/प्रेम–वासल्य, समर्पण, त्याग की कहानी है निसर्ग से प्रेम प्राणी पशु पक्षियों पर मनुष्य का प्रेम आज की आवश्यकता है।

अर्थात् वर्तमान संदर्भ में नाटकों की मंचीय उपयोगिता बढ़ जाती है।●

संपर्क : 823, सेक्टर–19,
इन्दिरा नगर, लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अभिज्ञान शाकुंतल' पर एक पाश्चात्य मत

प्रो. नन्ददुलारे वाजपेयी

संस्कृत साहित्य और विशेषतः संस्कृत–नाटकों पर जिन पाश्चात्य विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है, उनमें ए. बेरीडेल कीथ का नाम विशेष ख्यात है। 'संस्कृत–नाटक' (The Sanskirat Drama) नामक उसका ग्रंथ अत्यधिक प्रामाणिक माना जाता है और जहाँ कहीं प्राच्य विद्याओं की चर्चा होती है, वहीं सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। इस ग्रंथ में लेखक ने संस्कृत नाटकों का क्रमबद्ध विवरण दिया है और उनकी साहित्यिक विशेषताओं का विस्तृत विवेचन किया है। कीथ यह मानता है कि भारतीय नाटकों का स्वतंत्र विकास हुआ था, उन पर किसी दूसरे की छाप नहीं पड़ी है। यह बात दूसरी है कि कभी किसी संस्कृत नाटककार ने कहीं कोई बात यूनानी नाट्यकला से ले ली हो, पर इस प्रकार का आदान अनुकृति नहीं कहा जा सकता।

भारतीय नाटकों की स्वतंत्र विशेषता को स्वीकार करता हुआ भी कीथ उनका प्रशंसक नहीं है। यूनानी नाटक की तुलना में वह भारतीय नाटक को महत्व नहीं देता। उसका कथन है कि भारतीय नाटक यूनानी नाटकों की भाँति जन–समाज के लिए नहीं लिखे गये। उनका प्रसार जनता में नहीं हुआ। केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्गों के मनोरंजनार्थ उनकी सृष्टि हुई, इसी उच्चवर्गीय एकान्तिक वातावरण में उनका प्रचलन हुआ। ब्राह्मण जाति आरंभ से ही आदर्शवादी थी। वस्तु और चरित्र का यथार्थ चित्रण उसकी प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण असंभव था। केवल भाव–विशेष की सृष्टि साहित्य का और नाटकों का भी लक्ष्य थी। कथानक का निर्माण इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए किया जाता था और प्रायः कोई सुप्रसिद्ध पौराणिक कथा ही इसके लिए उपयुक्त समझी जाती थी। कथा को ऐसे साँचे में ढाल लेते थे, जिसमें किसी रस–विशेष की सर्वांगीण अनुभूति करायी जा सके।

रसों में भी ब्राह्मण जाति के आदर्शों का बोलबाला था। ब्राह्मणों के सिद्धान्त के अनुसार कोई भी मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही इस जन्म में सुख–दुःख का भागी होता है। अतः भारतीय नाटक में यूनानी दुःखान्त नाटकों की भाँति ऐसी शक्तियों और स्थितियों का चित्रण नहीं किया जा सका, जो स्वतंत्र हैं और जिन पर मानव–बुद्धि का कोई वश नहीं। इसी कारण संस्कृत नाटक में किसी सत्पुरुष का भाग्य के दुर्दमनीय चक्र में पड़कर विफलताओं से टक्कर खाना और अंत तक भटकना नहीं दिखाया गया, न उसमें किसी खास पुरुष का अंत तक विजयी होना चित्रित किया गया है।

संस्कृत नाटक सदैव सुखान्त रहे हैं। वे ब्राह्मण विचारों की आदर्शवादी परंपरा पर चलते गये हैं। केवल वीर और श्रृंगार रस ही की सृष्टि नाटक में है और घटना–चमत्कार की सृष्टि के लिए अद्भुत रस के प्रसंग भी आ सकते हैं। अद्भुत रस की योजना में भारतीय नाटककार बेखटके स्वर्ग और पाताल लोक के संभव–असंभव दृश्य नाटकों में लाते रहे हैं। अस्वाभाविकता की ओर कभी उनका ध्यान नहीं गया।

कीथ के कथनानुसार भारतीय नाटक में चरित्र–सृष्टि के लिए भी यथेष्ट स्थान न था। चरित्रों का स्वतंत्र स्वरूप भी नाटक की रसात्मकता में बाधक ही हो सकता था; इसलिए पात्रों का चरित्र–चित्रण भी रसानुयायी ही रहा है। रावण का चरित्र एक दंभी और मूर्ख व्यक्ति का सा प्रायः सभी नाटककारों ने अंकित किया है। राम के महान् चरित्र के समीप वह किसी भी अवस्था में नहीं पहुँचता। संघर्ष की यथार्थता की अनुभूति कराने में संस्कृत नाटककार इसीलिए असफल रहे हैं। आदर्शवादी प्रकृति और रस–सृष्टि के लक्ष्य के कारण यह गड़बड़ी हुई है।

नाटक की शैली पर महाकाव्य की शैली का प्रभाव बराबर बना रहा– यही नहीं, प्रगीतात्मक मुक्तक पद्य, प्रकृति–वर्णन और कथात्मक प्रकरण (Narration) भारतीय नाटकों में भरे हुए हैं। ये तीनों ही वस्तुएँ नाटकीयता के अनुकूल नहीं पड़तीं। किन्तु रसोद्रेक के लिए इनका उपयोग किया गया है। इसी प्रकार नृत्य, गान, वाद्य और अभिनय का प्रयोग भी रस–सृष्टि के ही लिए हुआ है।

'नाटक' में तो राजपरिवार और उच्चवर्गीय समाज के चित्रण का प्रतिबंध था ही, 'नाटिका' में भी सामान्य जीवन की वास्तविकता चित्रित न हो सकी। यद्यपि 'नाटिका' में और उससे भी अधिक 'प्रकरण' में मध्यवर्गीय समाज के चित्रण का अवकाश रहा है, पर वह चित्रण भी रूढ़ि के आधार पर ही हुआ। रति भाव के परंपरा प्राप्त प्रदर्शन के लिए भवभूति ने 'मालतीमाधव' नामक प्रकरण–रूपक लिखा। 'प्रहसन' और 'भाण' नामक रूपक हास्यरस की सृष्टि के लिए थे– वह भी एक बँधी हुई लीक पर।

कीथ साहब ने भारतीय नाटक में ये मूलभूत दोष गिनाने के पश्चात् भारतीय नाटक की भाषा पर आपत्ति की है। आपका मत है कि संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के जो स्वरूप नाटकों में मिलते हैं, वे जन–भाषा से बहुत भिन्न थे और उस भाषा–स्वरूप को समझना जनता के लिए असंभव था। केवल अल्पसंख्यक उच्चपदस्थ वर्ण ही उस भाषा को समझ सकता था और उसी के लिए वे नाटक रचे भी गये थे। इस प्रकार संस्कृत नाटक केवल एक अल्पसंख्यक वर्ग विशेष की कलाभिरुचि हास्य और मनोविनोद के विषय रहे हैं। उनका संबंध सामान्य भारतीय समाज से नहीं था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' तथा राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' में राजश्रित समाज और दरबारी कवियों का जो स्वरूप दिखाया गया है, संस्कृत का नाटककार उसी श्रेणी का व्यक्ति था। वह सामान्य जनता और उसके जीवन के संपर्क में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कभी रहा और न कभी उस ओर उसका ध्यान ही गया।

ये आरोप कीथ साहब ने संस्कृत नाटक मात्र पर किये हैं। इसलिए इन आरोपों से न तो कालिदास बचे हैं और न उनकी कोई नाट्य–कृति। अवश्य संस्कृत के अन्य नाटककारों की तुलना में कीथ ने कालिदास की श्रेष्ठता स्वीकार की है। उसने लिखा है कि कालिदास प्रसाद गुणसंपन्न वैदर्भी शैली के प्रधान नाटककार हैं। भास और मृच्छ कटिककार शूद्रक की ही भाँति सरल भाषा का प्रयोग करते हुए भी कालिदास उक्त दोनों लेखकों से कहीं अधिक आकर्षक और परिष्कृत शैली में लिख सके। अश्वघोष से वे प्रभावित हुए थे; किन्तु उनकी सुरुचि और परिमार्जना उनकी अपनी वस्तु है। अश्वघोष में वह बात नहीं। परवर्ती लेखकों की कृत्रिम अलंकारिकता का भद्दा प्रदर्शन कालिदास में नाम को भी नहीं है। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के पंचम अध्याय में तो वे संस्कृत नाटककारों की वस्तु–वर्णनात्मक काव्य–शैली को छोड़कर विशुद्ध नाट्य–व्यापार की ही योजना करने में सफल हुए हैं।

कालिदास में व्यंजना पद्धति का बड़ा सुंदर स्वरूप विकसित हुआ। भवभूति जिसका वर्णन करने में श्लोक–के–श्लोक लगा देते हैं, कालिदास उसे एक छोटे–से आधे वाक्य में पूरा कर देते हैं। भाषा के प्रयोग में भी कालिदास की सूक्ष्मदर्शिता प्रकट हो जाती है। सिपाही की भाषा, मछुए की भाषा, स्त्रियों की भाषा–सबके सूक्ष्म भेदों की ओर उनकी पैनी दृष्टि गयी थी। भवभूति की भाषा में यह बारीकी मिलती ही नहीं। श्रृंगार रस की उद्भावना में कालिदास अद्वितीय हैं। किशोर–हृदय में रति की स्थापना से लेकर उसके विकास और परिपाक की समस्त अवस्थाओं का चित्रण करने में वे सिद्धहस्त हैं। वियोग–श्रृंगार और करुण रस की कोमल भावना 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अंक में जैसी प्रस्फुटित हुई है, वह अपने ढंग की अनुपम है। शकुंतला के कण्व के आश्रम से विदा होते समय का यह दृश्य है। वृक्ष और लता–गुल्म भी शकुंतला के वियोग से विक्षुब्ध दिखाये गये हैं। कालिदास में प्रकृति–चित्रण भी उच्च कोटि का पाया जाता है। हास्य रस की योजना में भी कालिदास कहीं भद्देपन का नाम नहीं आने देते। नृत्य और संगीत आदि कलाओं के भी वे ज्ञाता थे।

कालिदास के नाटकों में कीथ ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' को सर्वोच्च पद प्रदान किया है। उनके दो अन्य नाटक 'मालविकाग्निमित्र' और 'विक्रमोर्वशी' कला की दृष्टि से 'शाकुंतल' की बराबरी नहीं कर सकते। कीथ ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' की श्रेष्ठता दिखाते हुए लिखा है कि महाभारत की मूलकथा तो बहुत ही सीधी–सादी है। उसे कालिदास ने अपने नाटक में रूपों–रंगों से सुसज्जित कर दिया है। महाभारत में कथा इस प्रकार है कि शकुंतला के आश्रम में दुष्यंत आये। कुमारी शकुंतला अपने उच्च वंश का वर्णन दुष्यंत से करती है। दुष्यंत विवाह का प्रस्ताव करते हैं। शकुंतला चतुर नारी की भाँति यह वचन उसी समय ले लेती है कि उसी का लड़का राज्याधिकारी होगा। दुष्यंत इसे स्वीकार करते हैं और शकुंतला से मिलकर अपनी राजधानी वापस जाते हैं। शकुंतला को पुत्र उत्पन्न होता है। कुछ काल पश्चात् माता और पुत्र दुष्यंत के यहाँ उपस्थित होते हैं। साथ में आश्रम के साधु भी हैं। राजा दुष्यंत राजनीतिज्ञता का परिचय देते हैं–शकुंतला को पहचान कर भी नहीं पहचानते। शकुंतला कठोर अभिशाप की धमकी और अपने उच्च कुल की बार–बार दुहाई देती है। अंत में आकाशवाणी होती है कि शकुंतला दुष्यंत की परिणीता पत्नी है और उसका पुत्र राज्याधिकारी है। यही दुष्यंत को अभीष्ट था। वे अपनी पत्नी और पुत्र को ग्रहण करते हैं–यह कहते हुए कि आकाशवाणी की ही वे प्रतीक्षा कर रहे थे, अब शकुंतला के पुत्र को युवराजपद देने में कोई आपत्ति न हो सकेगी। कहाँ यह मोटी कथा और कहाँ 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक में उसका सँवारा हुआ अनुपम स्वरूप। नाटक की लज्जावती नायिका अपने उच्च कुल का निर्देश करने में भी हिचकती है। उसकी सखियाँ तक स्पष्ट नहीं कह सकतीं। नवोढ़ा शकुंतला का नवोदित प्रेम अनुपम क्षमता के साथ चित्रित किया गया है। दुष्यंत का शकुंतला को न पहचानने की जो मोटी कथा महाभारत में आयी है, उसे सुंदर और सार्थक बनाने के लिए कालिदास ने दुर्वासा के श्राप की योजना की है और श्राप भी अकारण नहीं है। शकुंतला के प्रेमोन्माद का फल है–कर्तव्य–सूचना का स्थायी स्मारक है। अस्वीकृति के समय नाटक में शकुंतला का व्यवहार अत्यंत शिष्ट और प्रसंगानुकूल है। नारी और वनवासिनी नारी के लिए सर्वथा समीचीन है। दुष्यंत का चरित्र सदोष नहीं है, अतः उसे अंत में शकुंतला उसकी परिणीता भार्या मिलनी चाहिए। इसीलिए आप की रक्षा भी हुई और अंत में अँगूठी मिल जाने पर अभिज्ञान भी हुआ। यहाँ से अंत तक का दृश्य पवित्र प्रेम की तपोमयी ज्योति से ज्योतित है– न केवल दुष्यंत के पक्ष में, शकुंतला के पक्ष में भी। और अंतिम मिलन नारी और पुरुष का–सुंदर वीर बालक उपहार के साथ–क्या ही सुंदर है!

केवल कथा में तथा नायक–नायिका के चित्रण में ही विशेषता नहीं है। कालिदास की कला नाटक के अन्य पात्रों को सृष्टि में भी देखी जाती है। कण्व का चित्रण दुर्वासा के विपरीत, एक सरल संतानहीन साधु का वात्सल्यमय स्वरूप दिखाता है। इसी प्रकार मारीच के चित्रण में भी कवि की सुंदर कला प्रदर्शित है। शकुंतला की सखियाँ अनसूया और प्रियम्बदा कवि की कोमल लेखनी की उपज हैं–अनसूया अनुभूति प्रबल और गंभीर है, प्रियंवदा मिष्टभाषणी और हँसमुख। इसी प्रकार शार्ङ्गरव और शारद्वत के चित्रणों में भी सन्यासी स्वभाव की दो पृथक–पृथक विशेषताएँ परिलक्षित हैं।

अद्भुत रस की योजना के लिए अलौकिक दृश्य विक्रमोर्वशी की भाँति सीमा के बाहर नहीं गये। केवल एक स्थान पर नाटक के अंत में स्वर्ग में शकुंतला का आश्रम दिखाया गया है। प्रतीकात्मक दृष्टि से भी शकुंतला और दुष्यन्त का यह स्वर्गीय मिलन अत्यंत स्वाभाविक है। अँगूठी के खोने और फिर से मिल जाने की योजना भी कथा–सूत्र में सुंदर विधि से गुम्फित हुई है। किसी अंश में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती।

किंतु, इतनी प्रशंसा करने के पश्चात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीथ साहब को सहसा यूनानी नाटक फिर याद आ गये और वे एक बार फिर भारतीय नाटकों पर उबल पड़े। 'अभिज्ञान शाकुंतल' की मृदुल कल्पना और मनोरम रचना भी उनका परितोष न कर सकी। पश्चिम को पूर्व से श्रेष्ठता दिये बिना कैसे काम चलता! फलतः बहुत कुछ अप्रासंगिक रूप में और ऊपर की प्रशंसा से किसी प्रकार मेल न खाने वाली बात कीथ साहब के मुँह से निकल पड़ी। वे कहते हैं:–

"कालिदास की रचना अत्यंत प्रशंसनीय है; किंतु इस तथ्य को भुला देना अनुचित होगा कि उनके नाटकों में तथा काव्यों में जीवन और भाग्य की महान् समस्याएँ उपस्थित नहीं हुईं। जर्मनी के महाकवि गेटे ने कालिदास के संबंध में प्रशंसा के जो महान् शब्द लिखे हैं और अँग्रेजों में भी सर विलियम जॉन्स ने कालिदास की जो तुलना शेक्सपियर से की है, वे भी ठीक हैं; किंतु अपने समय की ब्राह्मण–जातीय विशेषताओं के अनुयायी होने के कारण कालिदास की रचना में जो अनिवार्य संकीर्णता आ गयी है, उसकी ओर से हम अपनी आँख मूँद नहीं सकते। कालिदास को यह विश्वास था कि एक न्यायकारिणी अदृष्ट सत्ता का अस्तित्व है, जो सृष्टि पर शासन करती है। अतः वह संसार के दुःखों और वैषम्यों से भरे भयावह स्वरूप को नहीं देख पाए। बहुसंख्यक मनुष्य की आर्त्त जीवनी के प्रति सहानुभूति से प्रेरित न हो सका और संसार में फैले हुए व्यापक अन्याय की ओर दृष्टि न दौड़ा सके। वह अपनी ब्राह्मण–दार्शनिकता के संकुचित दायरे से ऊपर न उठ पाए। फिर भी हम कृतज्ञ हैं (किसके?) कि सिद्धान्तों से अवरुद्ध होते हुए भी कालिदास ने 'शकुन्तला' जैसी स्थायी गुणोंवाली और लोकव्यापी प्रभावशाली रचना की, जो निष्प्रभ अनुवादों में भी संसार द्वारा एक महान् कलाकृति स्वीकार की जा चुकी है।"

"कालिदास में व्यंजना पद्धति का बड़ा सुंदर स्वरूप विकसित हुआ। भवभूति जिसका वर्णन करने में श्लोक–के–श्लोक लगा देते हैं, कालिदास उसे एक छोटे–से आधे वाक्य में पूरा कर देते हैं। भाषा के प्रयोग में भी कालिदास की सूक्ष्मदर्शिता प्रकट हो जाती है। सिपाही की भाषा, मछुए की भाषा, स्त्रियों की भाषा–सबके सूक्ष्म भेदों की ओर उनकी पैनी दृष्टि गयी थी। भवभूति की भाषा में यह बारीकी मिलती ही नहीं। श्रृंगार रस की उद्भावना में कालिदास अद्वितीय हैं। किशोर–हृदय में रति की स्थापना से लेकर उसके विकास और परिपाक की समस्त अवस्थाओं का चित्रण करने में वे सिद्धहस्त हैं। वियोग–श्रृंगार और करुण रस की कोमल भावना 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अंक में जैसी प्रस्फुटित हुई है, वह अपने ढंग की अनुपम है। शकुंतला के कण्व के आश्रम से विदा होते समय का यह दृश्य है। वृक्ष और लता–गुल्म भी शकुंतला के वियोग से विक्षुब्ध दिखाये गये हैं। कालिदास में प्रकृति–चित्रण भी उच्च कोटि का पाया जाता है। हास्य रस की योजना में भी कालिदास कहीं भद्देपन का नाम नहीं आने देते। नृत्य और संगीत आदि कलाओं के भी वे ज्ञाता थे।"

ये पंक्तियाँ अपनी कथा आप ही कहती हैं। टिप्पणी अनावश्यक है। कीथ का हृदय, 'अभिज्ञान शाकुंतल', से अभिभूत होता हुआ भी, उसकी लेखनी जो कुछ लिख जाती है उसका उत्तरदायित्व किस पर है? उसका उत्तरदायित्व है पूर्व और पश्चिम के बीच एक काल्पनिक विभेद–रेखा खींचने वाली साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पर। दूसरे क्षेत्रों से यह मनोवृत्ति चाहे जब हटे, साहित्य–क्षेत्र से इसका शीघ्र से शीघ्र दूर होना अवश्यंभावी है। जब तक यह मनोवृत्ति है तभी तक कीथ–जैसे विद्वानों की लेखनी भी परस्पर विरोधी तथ्यों का निरूपण करने को बाध्य रहेगी। विद्या के क्षेत्र में यह वैसा शोभा नहीं देता।

संस्कृत नाटकों के स्वरूप पर कीथ का जो मत ऊपर उद्धृत है, वह उसके पांडित्य का परिचायक है; किंतु भारतीय नाटकों के इस स्वरूप में जो विशेषताएँ हैं उनकी ओर कीथ की निगाह न गयी और न तब तक जा सकती है जब तक वैषम्य बना है। पाश्चात्य और प्राच्य नाटक के स्वरूप में भेद होते हुए भी दोनों के अपने अलग–अलग गुण भी हैं। कीथ की दृष्टि केवल त्रुटियों पर गयी है, किंतु उसने पाश्चात्य नाटक और विशेषतः यूनानी नाटक की स्थूल संघर्ष में टिकनेवाली भावना में कोई त्रुटि नहीं देखी। पाश्चात्य विद्वानों के ही प्रामाणिक ग्रंथों में यूनानी नाटक की इस स्थूलता का (Force against force की मूल भित्ति का) उल्लेख किया गया है। यदि हममें एक प्रकार की त्रुटियाँ हैं, सो आप में दूसरे प्रकार की। किंतु, सच पूछिए तो यह बहुत कुछ पूर्व और पश्चिम की अपनी–अपनी प्रकृति है। एक दूसरे के दोष–दर्शन की अपेक्षा यदि तटस्थ और वैज्ञानिक दृष्टि से गुणों और विशेषताओं का अनुशीलन किया जाय, तो साहित्य का ही नहीं, मनुष्यता और मानव–संस्कृति का कहीं अधिक कल्याण हो सकता है। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

कालिदास की आत्मकथा

जयशंकर द्विवेदी

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

संसार में मैं कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हूँ, पर यह मेरा नाम नहीं। कालिदास मेरा नाम कैसे पड़ा, इसकी एक कथा है। भारतीय परम्परा के अनुसार आज तक मैंने आत्म विषय में कुछ प्रकाशन करना ठीक नहीं समझा, किन्तु अनेक कारणों से इस इतिहास को अब छिपाना युक्ति–संगत नहीं समझता।

मेरा जन्म दशार्ण जनपद की चलोर्मिवती वेत्रवती के तट स्थित प्रयित विदिशा राजधानी में हुआ।[1] दश क्षिप्र–गामिनी सरिताओं द्वारा अनुप्लावित होने वाला यह दशार्ण–जनपद के रैवतक, विन्ध्य, ऋक्ष तथा महेन्द्र पर्वतों से परिवेष्ठित हैं। इसके पश्चिम छोर पर वाणास की धाराएं बहती हैं। इसके पूर्व सीमान्त भाग में हिरण्यवाह नद अपने प्रबल तथा उद्याम वेग के लिए प्रसिद्ध है। इस नदी और नद के बीच में अंशुवती, केन वेत्रवती, सिन्ध, चर्मण्यवती, पार्वती, शिप्रा, दशार्णा आदि नदियां अत्यन्त द्रुत गति से बहती हुई यमुना तथा गंगा के दक्षिणी कांठे को सिक्त करती रहती हैं। नदियों और पर्वतों का यह भूभाग मध्य देश का अलंकार है।[2] सप्तकुल पर्वतों में[3] से तीन की श्रेणियों का तो मानों यह उद्‌गमस्थल ही है। सहस्त्रां गिरि–श्रृंगों के अधिष्ठान होने के कारण तथा इन तरल–वीचि–संकुल वन–नदियों[4] की प्रवहमान शिराओं से युक्त होकर यह समस्त पृथ्वी की प्रतिकृति के समान है। दशार्णा वेत्रवती की एक साधारण सहायक निर्झरिणी है किन्तु वर्षा ऋतु में इसके अपूर्व सौन्दर्य से आकृष्ट हो आदि कवि ने इसी के नाम पर इस समस्त देश का नाम प्रख्यापित किया। नदियों तथा पर्वतों के बीच रहने वाला मैं, आदि कवि के प्राकृतिक वर्णनों को जब बाल्यावस्था में पढ़ने लगता तो आत्म विस्मृत हो जाया करता। उनकी मानसिक प्रेरणाएं मेरे अन्तःकरण में इतनी स्पष्टता से आविर्भूत होती थीं कि मैं एक अपूर्व उन्मेष से भर मन्त्र–मुग्ध, की भांति इन नैसर्गिक छटाओं के निरीक्षण के लिए, और दशार्ण की उन्मुक्त वनस्पतियों में भ्रमण करने के लिए निकल पड़ता था। सम्भवतः महाकवि–

दशार्णा तथा वाणास की वन–स्थलियों में भ्रमण किया करते थे। उनके प्रत्येक शब्द–चित्र की प्रतिकृति इन सुरम्य गिरिजों की उपत्यकाओं में मिलती थी। मैं महर्षि के पदों को गाया करता था। महर्षि के वाक्य प्रतिक्षण मुझे भावों से अनुप्राणित करते थे। मुझे उनके महाकाव्य को कभी–कभी पढ़ते–पढ़ते ऐसा भी भान होता मानों वह मुझे रघुकुल का पुनः वर्णन करने के लिए कह रहे हों। अपने महाकाव्य का नाम मैं रघुवंश रखूं, इस विषय में तो एक दिन, उन्होंने, मुझे ऐसा जान पड़ा कि अपनी पंक्तियों द्वारा संकेत किया–

स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महात्मना।
रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः।।

(रामायण 1–3–9)

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षितः।।

(रामायण 6–1–11)

महर्षि के प्रति मेरी कितनी श्रद्धा है, इसे कैसे प्रकट करूं। मणि के समान कान्तिमान तथा मणि के ही समान गौरव–युक्त कुल के वर्णन में मैं कितना अपने को अक्षम समझता हूँ,

---

1. पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैर्नीडारम्भैर्गृ हवलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।
त्वय्यासन्नै परिणतफलश्यामजम्बूवनान्तः संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।25।।
तेषां दिक्षुप्रथितविदिशा लक्षणां राजधानीं, गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादुयस्मा
त्सभ्रूजभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।।24।।–पूर्व मेघदूत।
(दशार्णाः = दश+ऋण = (जल+नदी) दश नदियों वा जलों से सिक्त होने वाला देश।

	प्राचीन नाम		आजकल के प्रचलित नाम
(1)	वाणास	–	बनारस
(2)	अंशुवती	–	टोंस
(3)	केन	–	केत
(4)	वेत्रवती	–	बेतवा
(5)	सिन्ध	–	सिन्ध
(6)	चर्मण्यवती	–	चम्बल
(7)	पाविती	–	पार्वती
(8)	शिप्रा	–	सिप्रा
(9)	दशार्णा	–	धसान
(10)	हिरण्यवाह–नद	–	शोण, सोनभद्र

2. मध्यदेशालंकार–कादम्बरी (विन्ध्याटवी वर्णन)
3. सप्त कुलपर्वत–महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्ति माननृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल–पर्वताः।।
इवीचिक्षोभस्तनि तविहगश्रेणि काञ्चीगुणायाः, संसर्पन्त्याः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।30।।
4. विश्रान्तः सन्व्रज नवनदीतीरजाता निषिञ्चन्–मुद्यानां नवजलकणैरुथिका जालकानि।।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोतपलानां छायादानत्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानां ।।28।।–पूर्व मेघदूत
1–नवनदी, वा नगनदी 2–जाता निविच्चत् के भी पाठ मिलते हैं। इसी नगनदी का नाम आजकल पार्वती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसको भला मेरे अतिरिक्त और कौन जान सकेगा। उन्होंने अपने काव्य में राम–चरित का वर्णन कर मानों मेरे लिए वर्णन करने का वाग्द्वार खोल दिया। अब तो उसमें मेरी गति वैसी ही है जैसे किसी वज्रद्वारा समुत्कीर्ण मणि में सूत्र की गति–

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेस्मिन पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति में गति।।
– *रघुवंश*

यह दशार्ण–जनपद उपवनों वनों का देश है। इसके छोरों पर परिणत फल वाले जम्बू बन के अतः भाग दिखाई पड़ते हैं। यदि कोई आकाश से विमानरुढ़ हो देखे तो इसको वह एक अत्यन्त सुन्दर श्यामावरण से आच्छन्न हुआ देखेगा। स्थान–स्थान–पर छाया बहुल उपवनों की राजियां दृष्टिगोचर होंगी जिनमें केतकी पुष्पों के मुकुलाग्रों के विकसित होने के प्राचुर्य से दिक्–प्रान्त सुरभित होकर गमकता रहता है। ग्रामों में विशाल पिप्पल वृक्षों पर काकचटकादि पक्षी इतनी अधिक संख्या में नीड़–निर्माण में व्यस्त हैं कि समस्त वृक्ष उनके नीड़ों से भर उठा है, विशाल होते हुए भी अत्यन्त संकीर्ण जान पड़ता है। हंसों की सुरम्य पंक्तियां तो दशार्ण–जनपद की विशिष्ट विशेषता हैं। इसके कासार सरोवर, नदी तट सभी शिशिर ऋतु में हंस–श्रेणियों के लिए भारत मात्र में प्रख्यात हैं।

आज जब अपने जीवन की कथा लिखने बैठा हूँ तो इस चिरंतन तथा मानव जीवन के विकास–स्थल–स्वरूप भारतवर्ष का, जहाँ से संसार मात्र को आलोक मिला, संसार मात्र में सभ्यता की कौमुदी विकीर्ण हुई, जिसके प्रतापी, तेजस्वी[1] पुरुषों की वाणी तथा विचारधाराओं से इस संसार को प्रेरणा प्राप्त हुई, संसार नमित हुआ, कैसे वर्णन न करूं। इस भारत भूमि का गुणगान तो देवता भी करते हैं। स्वर्ग तथा अपवर्ग दोनों को ही प्रदान करने वाले भारत की यह भूमि है। यहीं मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है। अन्य देशों में देवत्व को महिमा प्राप्त हुई, देवत्व की धाक रही, मनुष्य उसके समक्ष नतमस्तक हुआ किन्तु यहां देवत्व मनुष्यत्व के समक्ष नतमस्तक हुआ। यहां के मनुष्यों की मैत्री को,[2] उनके साहचर्य को, देवता भी अपनाने में, अपने को धन्य मानते रहे। उनके गुणगान के लिए गीतों की[3] रचना करते रहे। मनुष्यता, मानवता तथा करुणा के स्रोत, इसी देश की हिमाद्रिवेष्ठित उपत्यकाओं से समस्त संसार में प्रसृत हुए। ऐसे देश का निवासी मैं हूँ, यह भाव हमारे मन को उल्लसित करता रहा है। मैं अपनी कल्पना के पंखों पर बैठ इस पुण्य देश के चित्र को अपने मानस–पटल पर सदैव अंकित करता रहा हूँ। उत्तर की दिशा में महान् हिमालय की असंख्य तुषार–धवल श्रेणियां फैली हैं। जब प्रातः कालीन सूर्य की रश्मियों से वेष्ठित हो ये जगमगाने लगतीं हैं, तो इनकी छटा अवर्णनीय हो उठती है। इन्हीं में से पारियात्र की तथा नाग और सुल पर्वतों की श्रृंखलाएं निकल कर पश्चिमी तथा पूर्वी उदधि में घुसती चली गयी हैं। तब इन पर्वतों की तलहटी को स्पर्श करता हुआ तोयनिधि विशाल तुला के पलड़ों[4] की भांति दिखता है। महा–हिमालय के कुषाण पर्वतों से लेकर लोहित की धाराओं से सिक्त होने वाले पर्वतों की श्रेणियों तक की लड़ी, एक अति महान् तुला–दण्ड के सदृश्य प्रतीत होती है और ऐसा जान पड़ता हैं कि समस्त भूमण्डल को तुलित करने के लिए ब्रह्मदेव ने एक अपूर्व तुला का निर्माण किया है।

यह हिमालय देवताओं के निवास का स्थान ही नहीं वरन् उनकी आत्मा है, ऐसा मैं मानता हूँ। इस हिमालय से निःसृत कुम्भा, सुवास्तु, सिन्धु, ऐरावति, अश्किनी, वितस्ता, शतद्रु, विपाशा, गंगा, यमुना, द्वषद्वती, ब्रह्म नद, लोहित इत्यादि जब तक इस आर्यावर्त को परिप्लावित करती रहेगी तब तक इस देश की श्री अविचल रहेंगी।

उस समय मैं एक बालक था। हूणों से यह देश पदाक्रान्त हो रहा था। समस्त भारतवर्ष अनेक जनपदों में विभक्त था। ये जनपद थे– (1) काम्बोज, (2) गान्धार, (3) कुरु, (4) मल्ल, (5) शूरसेन, (6) शिवि, (7) सौराष्ट्र, (8) पाञ्चाल, (9) अवन्ती, (10) उत्तर कोशल तथा दक्षिण कोशल, (11) काशी, (12) चेदि, (13) अंग, (14) बंग, (15) कलिंग, (16) कपिश, (17) उत्कल, (18) प्रागज्योतिष, (19) कामरूप, (20) दशार्ण, (21) जन स्थान, (22) महिष, (23) केरल, (24) पाण्ड्य, (25) सुह्म, (26) वाह्लीक, (27) वृजि।

इन जनपदों में शासन व्यवस्था गणतंत्र तथा प्रजातंत्र प्रणाली पर निर्भर थी। ये गणतंत्र बड़े प्रबल थे। किन्तु इनका दृष्टिकोण नितान्त संकुचित था। इन गणतन्त्रों को अपने जनपदों की सीमा ही समस्त भारतवर्ष की गरिमा लगती थी। इसका दुष्परिणाम यह हुआ था कि कपिश से लेकर पाण्ड्य तक तथा शिवि देश से लेकर सुह्म देश तक का समस्त भू–भाग जिसे भारत के नाम से अभिहित किया गया था, अनेक परस्पर संघर्ष युक्त जनपदों में विभक्त हो गया था। मुझे आज भी सभी बातें स्मरण हैं, किस प्रकार बौद्ध संघ की विदेशियों के साथ दुरभिसन्धि होने के कारण दिन प्रति–दिन देश दुर्दशा ग्रस्त होता जा रहा था, तथागत के नाम पर, अहिंसा तथा करुणा के नाम पर, यहाँ का राजन्य वर्ग हाथ पर हाथ रख कर, उत्कोच देकर, विदेशी दस्युओं को सन्तुष्ट कर, विलासिता के गर्त में गिरता जा रहा था, अशोक की प्रणाली अपनाते हुए इन नृशंस और विलासी राजाओं को, तथा मिथ्याचार–युक्त मदान्ध गणतंत्रों को लज्जा का अनुभव नहीं होता था। वे कहते थे "जब महाप्रतापी महाराज अशोक ने कलिंग युद्ध के उपरान्त शस्त्रबल को गर्हित मान, कभी शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा कर ली तो साधारण लोग किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं।" इस प्रकार के अनेक भ्रमपूर्ण तथा मिथ्या तर्क युक्त विचार बौद्ध विहारों से समुद्भूत हो अखिल भारत में प्रचारित किये जाते थे। इसका परिणाम विषम हो रहा था। बौद्ध विहारों में मैं मन्त्र मुग्ध की भांति बौद्ध आचार्यों के तर्कों को सुना करता था। कभी–कभी मेरी चेतना जाग्रत होती और उनकी सभी धर्मादेशनाएं आडम्बर–युक्त तथा मिथ्या प्रतीत होने लगतीं।

1. धातु ताम्रधरः प्रशिर्वेवदारुवृहद्भुजः। प्रकृत्यैच शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति।।5।। (कुमार, सर्ग 6–51)
नमयन् सारगुरुभिः पादन्यासैः वसुन्धराम्। (कुमार, सर्ग–50)
2. ऐरावता ऽऽऽस्फालनविश्लयं यः संघट्टयन्नङ्गदमङ्दमङ्देन। उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्याम्अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितष्ठौ।।73।। रघुवंश, सर्ग 6
3. विच्छित्ति शेषैः सुरसुन्दरीणाम् वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु। विचिन्त्य गीत क्षममर्थजातं, दिवौकसस्त्वचरितं लिखन्ति।। – शाकुन्तल सप्तम अंक–5
4. अस्त्युत्तास्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितो पृथिव्या इव मानदण्डः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मैं घुमक्कड़ तो था ही, भारत ही नहीं वरन् विशाल भारत के प्रत्येक प्रान्त का दर्शन करना तो मेरी बाल्यावस्था का संकल्प था। नील–लोहित कण्ठ की कृपा से यह मेरी इच्छा पूरी भी हुई। मैंने विशाल भारत का पर्यटन किया। नाट्य–कला, संगीत–कला, मूर्ति–कला स्थापत्य–कला, चित्र–कला, नृत्य–कला, काव्य–कला की ओर मेरा मन इतना आकर्षित रहा करता था कि मुझे लोग 'कला–दास' कहने लगे थे। मेरा मन न जाने क्यों, जब कभी सुन्दर दृश्य को देखता, सुन्दर संगीत सुनता, अथवा सुन्दर अभिनय देखता तो अनिर्वचनीय भावनाओं से विभोर हो उठता था और मैं आत्मविस्मृत हो जाता। मैं पर्वत्सुक[1] हो उठता। मेरे समक्ष अपने जन्मान्तर के स्थिर–सौहार्द्र–भाव उपस्थित हो उठते। मैं एक ऐसी कल्पनातीत अवस्था का अनुभव करता जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना कठिन नहीं तो दुष्कर तो अवश्य ही है।

अति बाल्यावस्था से ही मैंने श्रमणों के साथ घूमना आरम्भ किया। कैसे उनके सम्पर्क में आया, कैसे जीवन का एक श्रेष्ठ अंश अत्यन्त उन्मन तथा उत्सन्नावस्था में बिताना पड़ा, इस प्रकार वह सम्मोहित उत्सन्नावस्था दूर हुई तथा पुनः मैं स्वस्थ हुआ उसे आज बताना है। कभी–कभी मैं श्रमणों के साथ मुण्डित केश भिक्षा पात्र हाथ में लिये सद्गृहस्थों, सार्थवाहों, श्रेष्ठियों के गृहों पर भिक्षा प्राप्त करने के लिए जाया करता था। ऐसे अवसरों पर प्रायः मैं अर्धचे तनावस्था में रहा करता था। एक अवसर पर मैं अपने साथ के श्रमणों की टोली से भटक कर न जाने किस प्रकार एक अत्यन्त निर्जन प्रान्त में पहुँच क्षुत्पिपासा से अति संज्ञाहीन हो एक वृक्ष की छाया में बैठ गया। जब मेरी आंख खुली तो मैं सम्पूर्ण चेतनायुक्त था किन्तु शिथिलता के कारण पुनः मेरी आंखें बन्द हो गयीं। इस समय मैं एक वयस्क तरुण था। मुझे आज भी स्मरण हो रहा है कि उस समय किस तीव्रता के साथ मेरे मानस–पटल पर सभी पूर्व स्मृतियां आती थीं, और क्षण–मात्र उपरान्त विलुप्त हो जाती थीं। मैं कितनी देर तक इस मुमुर्षावस्था में रहा इसका तो अब स्मरण नहीं, पर सहसा एक अति मृदु अमृतवर्षिणी वाणी के आह्वान से उद्बुद्ध हुआ। उस वाणी में कितनी मिठास थी, कितनी वत्सलता थी, कितनी प्राणदायिनी शक्ति थी, इसे कैसे वर्णन करूं। चक्षु–पटल के खुलने पर जो मूर्ति समक्ष दृष्टि–गोचर हुई वह अपूर्व थी। जान पड़ता था मानों मेरी रक्षा के निमित जगन्माता ने अवतार ग्रहण किया है, उनके अंग–प्रत्यंग से छवि की आभा फूट रही थी। मेरे स्नायु–दुर्बल चक्षुओं की शिराएं इस दर्शन से तृप्त हो मानों बल पा रही थीं।

उनके गौरवर्ण वाले अंगों से तथा उनके मुख से चन्द्रकान्ति की छटा उद्भासित हो रही थी। अधरों पर हलके ताम्बूल की रेखा प्रस्फुटित हो रही थी। उनके दीर्घ केश बिखरे हुए थे। वे उनके बाहु तथा अंश प्रदेशों को आच्छादित कर रहे थे। शुभ्र वस्त्र से सारा शरीर वेष्ठित था। शुभ्र धवल इन्दीवर की अत्यन्त कमनीय मल्लिका उनके कण्ठ प्रदेश को सुशोभित कर रही थीं। समस्त शरीर चन्दन लेप से चर्चित था। उनकी स्मिति से प्रकटित दशन पंक्तियों की रश्मिराजि द्वारा आविर्भूत ज्योति से हृदय की समस्त मोह–तमिस्रा न जाने कहां विलीन हो गयी। आज इतनी अवस्था प्राप्त हो जाने पर भी उस दिन की सौन्दर्य धारणा मेरे मन में जैसी की तैसी बनी हुई है। सम्भवतः ऐसा अनिर्वचनीय सौन्दर्य ही मनुष्य के हृदय में त्रैलोक्य को उन्मीलिन करने वाली शक्ति प्रदान करता है।

ऐसा भव्य रुप–सम्पदा कभी आंखों के समक्ष उपस्थिति न हुई थी। 'वत्स, उठो' इस वाणी को सुनते ही शरीर मात्र में एक अपूर्व शक्ति के संचार का अनुभव हुआ, मैं मुमुर्षावस्था की जडिम्ना का परित्याग कर सकपका कर उठ बैठा। अनायास ही माता के चरणों में शिरनत हो गया। न जाने कहां से अविरल अश्रु की धारा बह निकली। माता के चरण भींग गये। उन्होंने अत्यन्त स्नेह से मेरे समस्त शरीर पर, शिर पर, अपने तामरस–पाणि पल्लवों से स्पर्श किया। उस स्पर्श से मेरे शरीर की नाड़ियां स्वस्थ हो उठी। मस्तिष्क जो निर्विण्ण हो रहा था स्फूर्ति युक्त हो गया। मुझे आभास मिला जैसे मैं एक महामोह निद्रा से जाग रहा हूँ। कब तक माता के चरणों में मैं इस प्रकार पड़ा रहा, उसका ज्ञान नहीं; पर पुनः 'वत्स–उठो'! की पुकार से चैतन्य हो शिर उठाया। माता ने स्निग्ध सहानुभूति–युक्त स्वरों में कहां–पुत्र! शीघ्र ही तुम पूर्ण–स्वस्थ हो जाओगे।' इतना कहते–कहते उन्होंने एक अति रमणीकं उटज की ओर संकेत किया और कहा–"वत्स आज से तुम्हारे सभी ग्रह शान्त हुए। कुटी में मंजुश्री तुम्हारे भोजन, सम्मार्जन आदि की व्यवस्था किये बैठी है। उनसे मिलो"। इतना कह माता गम्भीर गति से पास के ही गगन–चुम्बी हिम–शुभ्र तथा हिम–श्रृंखलाओं से वेष्ठित मन्दिर में प्रविष्ट हो गयीं।

मैं भ्रमित–सा, चकित–सा, उसी ओर देखता रह गया। किचिंत् कालोपरान्त मैं उसी उटज की ओर बढ़ा। ससम्भ्रम मंजुश्री का साक्षात्कार हुआ। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ की भांति उस नवीना को निर्निमेंज नयनों से देखता रह गया। मैं कुछ बोल न सका। मंजुश्री ने ही शालीनता से कहा–"आर्य ! स्त्रियों के लिए तो लज्जा ही धन है। यदि मैं ही पहले पहल आपके समक्ष कुछ निवेदन करूं तो यह मेरी अशालीनता होगी। विशेष कर मुझ जैसी वन–मृगी–मुग्ध–कुल–कुमारी के लिए ऐसा आचरण और भी अशोभनीय है। किन्तु आपकी मुमुर्षावस्था से ही महामाया ने आप की शुश्रूषा का भार मुझको सौंपा है। अभी आप अस्वस्थ हैं। आपके समक्ष यदि कुछ मेरी चपलता हो जाय तो आप क्षमा करेंगे। यद्यपि आपके दर्शन से यह चक्षु कृतार्थ हैं, पर अब चक्षुओं की तृप्ति–जन्य आनन्द की ईर्ष्या करती हुई, हमारी श्रोत्र–वृत्ति कौतूहल–युक्त हो गयी है। वह कुछ आपकी पवित्र वार्ता सुनने के लिए के लिए उत्सुक है। सज्जन लोगों के प्रथम दर्शन पर उनका सद्भाव ही उपायन के समान प्राप्त होता है। आप के अभाव से अनायास ही यह मन आप में आकृष्ट हो गया है। आपकी छवि से स्रवित होने वाले मधु को प्राप्त कर ही यह मन अब वाचाल होता जा रहा है। नहीं तो मैं इतना भी कैसे व्यक्त कर पाती। सृष्टि में अत्यन्त धीर बुद्धि वाले भी, विधि की उन निर्मितियों को जो सृष्टयातिशय कोटि की है; देखकर चकित हो जाते हैं। फिर मेरी क्या गणना ! और आप जैसे सज्जनों में तो अनायास ही हृदय विश्वास करने लगता है। आपका रूप त्रिभुवन को अभिभव देने वाला है।

1. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नुनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।।–शाकुन्तल, 5–2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आप की आकृति से प्रगट होने वाली शालीनता से ही मेरे मन में ऐसी तरलता उत्पन्न हो गयी है कि मैं अपने को रोक नहीं पा रही हूँ। कहिये, आज आपके आगमन से कौन सा देश शून्य हो रहा है। आप कहां जा रहे थे। ऐसी दशा आपकी कैसे हुई? कौस्तुभ मणि के समान आप किस समृद्ध तपस्या वाले पिता के वक्षःस्थल को शोभा प्रवृद्ध करने वाले पुरुष–रत्न हैं। प्रभात संध्या के समान किस तेजस्विनी माता के क्रोड़ के आप अलंकार रहे हैं। वे कौन से पुण्य अक्षर हैं जो आपकी अभिख्या के लिए प्रयुक्त होते हैं।" मंजुश्री की वाणी क्या थी मानो मधुर वीणा की ध्वनि। मधु में उतनी मिठास कहां? संभवतः कोकिला सुन ले तो मूक हो जाय, भ्रमर मधुर गुंजार करना परित्याग कर दें। मैं अब से पूर्णरूप से चैतन्य था। किन्तु बहुत कुछ सोचने पर भी मुख की वाणी अवरुद्ध थी। किसी प्रकार साहस कर मैंने कहा–

"देवि मैं क्या कहूँ, कौन हूँ, इसे तो मैं स्वयं नहीं जानता। आज आप लोगों के सम्पर्क में आकर ऐसा जान पड़ता है कि अब मैं एक स्वस्थ मनुष्य हूँ, उस सबका कुछ स्मरण नहीं हो रहा है। आपने मुझसे वन्दनीया माता तथा देवतुल्य पिता के सम्बन्ध में पूछा, ऐसा भी प्रश्न कभी किसी ने मुझसे पूछा था सो स्मरण नहीं आता। प्रश्न का उत्तर देने के लिए जब सोचता हूँ मानस पटल धूमिल हो उठता है, सब शून्य–सा जान पड़ने लगता है। प्रतीत होता है कि वह कुछ निविड़ विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया है।"

इतना कहते–कहते आंखों के समक्ष अंधेरा छा गया। वाणी अवरुद्ध होने लगी। मैंने अपने को किसी प्रकार संभाला और पुनः कहना प्रारम्भ किया–

"मुझे विंदिशा का नाम आज स्मरण आ रहा है। मैं वहीं का हूँ। पूजनीया माता का तो कुछ भी ज्ञान नहीं। पर अपनी अति किशोरावस्था में जब था उस समय की मुझे एक धीर–गम्भीर आकृति का कुछ अस्पष्ट आभास प्रत्यक्ष हो रहा है। स्मरण है, उनके उत्संग में मैं बैठता था। उनके करतल–स्पर्श से मुझे ऐसा जान पड़ता मानो अनन्त शक्ति का प्रवाह मेरी धमनियों में हो रहा हो। जब वह मुझे अपनी गोद में उठा लेते तो मुझे ऐसा भान होता जैसे मुझे संसार का सार पदार्थ प्राप्त हो गया हो। किन्तु मेरे जैसे हतभाग्य का इतना सुख बहुत समय तक न चला। एक दिन वह भी हमकों छोड़कर चले गये। उस दिन का शोक आज तक बना है। घर मुझे अच्छा न लगता था। बिदिशा की रम्य वनस्थली मेरे शोकानल दह्यमान हृदय की शांति प्रदान करती थी। मैंने किसी–किसी प्रकार कुछ दिन बिताये, फिर इसके उपरान्त कहां–कहां मैं घूमता रहा हूँ, क्या–क्या करता रहा हूँ, वह सब मैंने एक आविष्ट की भांति किया है।"

कपिश ! पृथ्वी का स्वर्ग ! मंजुश्री ! कपिश की शोभा! ऐसे सुन्दर आश्रय में ऐसा कौन है, जो प्रसन्न न हो? मैं सुखी था। मैं प्रकृतिस्थ हो रहा था। बलखाती हुई वितस्ता की एक सहायक निर्झरिणी सामने से बह रही थी। इसका जल वैदूर्य के समान विमल था। इसके तट पर महामहिम महाप्रभु का प्रासाद बना था। प्रासाद की भित्ति ठोस काले पत्थरों की बनी थी। इसके चारो कोनों पर गगनचुम्बी स्तूपों के शिखर हिमाच्छादित दिक्प्रान्तों के गिरि शिखरों से मानो होड़ कर रहे थे। दुर्भेद्य पर्वत श्रृंखलाएँ ही इस प्रासाद की मानों प्राचीरें थीं। इन श्रृंखलाओं के पीछे उत्तर–पूर्व की ओर अभ्रभेदी तुषाराच्छन्न दरद–पर्वत के ऊँचे श्रृंग दिखाई दे रहे थे। नीचे की श्रेणियाँ वृक्षों, तृणों और गुल्मों की घनी हरीतिया से आच्छन्न थीं। विभिन्न तरुपंक्तियाँ विभिन्न वर्णों और आकारों के पत्रों तथा पुष्पों से लदी हुई थीं। इन हरित वृक्षों की पंक्तियों से ढकी पर्वत श्रेणियों के अन्तरालों से जल–प्रपात गिर रहे थे। प्रातः काल उदय होते हुए सूर्य्य की स्वर्णिम किरणें तुहिनमण्डित श्रृंगों को और उनसे सहस्रत्रा शिराओं में बिखर कर गिरने वाले जल–प्रपातों को सुवर्ण के समान बना रही थीं।

श्रृंगों के वृक्षों के मसृण पल्लव, कुसुम समूह और तृण मंद गति से चलने वाले वायु में लहराते हए रविंकरों से इस समय अद्भुत रंग पा रहे थे। ध्यानमग्न तपस्वी के समान शान्त अभ्रंकष पर्वतों के क्रोड में स्थित कपिश मेरे मन में एक अपूर्व आह्लाद उत्पन्न कर रहा था। इन पर्वतों की अर्जुनच्छवि के दर्शन मात्र से मस्तिष्क आलोकमय हो रहा था। पुराणों में हिमालय–संबंधी कथाएँ हैं। इन कथाओं के गर्भ से कितनी महान् कल्पनाओं के संकेत ध्वनित हो रहे हैं, इस पर विचारमार्ग से जब चेतना स्वतः प्रसृत होती है, तो उन पूर्व महर्षियों के प्रति श्रद्धा से मस्तक नत हो जाता है। और मैं कितना मन्द हूँ, कितना अज्ञ हूँ? इसकी क्या कल्पना? मैं कवि यश का लोलुप हूँ।[1]

किन्तु मेरी अल्प बुद्धि का रहस्य कोई क्या जाने? प्रेरणा तो मुझे प्राप्त हुई है पुराणों से, मातृभूमि दशार्ण की नैसर्गिक वनस्थलियों से, पिता–तुल्य हिमालय के हिमाच्छन्न शिखरों से, प्रेयसी के श्रृंगार–सदृश फैली हुई विस्तीर्ण कपिश की प्रफुल्ल कुसुमावलियों से। इनके प्रति अपने आभार को कैसे प्रकट करुँ। उन पुराण–मुनियों के समक्ष यथार्थ में यह तो मेरी चपलता ही है कि मैं उन्हीं पुराण–मुनियों के ही समान महान् हिमालय के संबंध में कुछ कहूँ। आज अपनी इस अपार उत्सुकता को संवरण न करने के कारण मैं वैसा ही उपहास का पात्र हूँ, जैसे प्रांशु–लभ्य फल को प्राप्त करने की इच्छा से हाथ उठाने वाला बौना।

इन व्योमस्पर्शी पर्वत–शिखरों से प्रभव पाने वाली असंख्य निर्झरिणियों द्वारा विशाल आर्यावर्त का भू–भाग सिक्त होता है। इसे देख मन में पुराणों की कल्पना सार्थक जान पड़ने लगी है। ऐसा [2]जान पड़ता है मानो महामेरु, महाराज पृथूपदिष्टा गोरूपा–धरित्री के समक्ष, हिमालय रूपी वत्स को खड़ा कर, सर्व–शैल

1. मन्दः कवि यज्ञः प्रार्थी, गमिष्यामि उपहास्यताम्।
प्रांशु लभ्ये फले लोभाद्–उद्वाहृरिण बाभनः।।–रघु. 1–3

2. यं सर्व शैलाः परिकल्प्य वत्सं
मेरी स्थिते दोग्वरि दोहदक्षे।
भास्वन्तिरत्नानि महौषधीश्च,
पृयूपदिष्टां दुषुहुर्धरित्रीम्।।–कुमार. 1–2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समूह की अनुमति से पृथ्वी से दक्षतापूर्वक भास्वर, रत्न तथा अमृतोपम महौषधियों की दुह रहे हैं। बज्र–सदृश शिलाओं का भेदन कर निःस्थूल होने वाली अगणित विमल उज्जवल पयस्विनियों द्वारा माता धरित्री अपने प्रिय वत्स हिमालय को मानों दुग्ध–पान करा रही है।

मैं अपने शयन–कक्ष के गवाक्ष से इसी कल्पना में तल्लीन हो अपलक नयनों से कपिश की शोभा निरख रहा था। उसी समय दौवारिक ने आकर महाप्रभु के आने का संदेश दिया। अभिवादनार्थ मैं कक्ष से बाहर निकल आया। वह साक्षात् शिव के समान प्रतीत होते थे। मेघ–घटा सदृश पिशंगवर्ण की पिङ्गल जटाएँ उनके उज्जवल, भव्य, प्रभामय उन्नत ललाट पर लटक रही थीं। उनका पृष्ठ–प्रदेश रंकु–मृगाजिनावृत था। कर्पूर–गौर–वर्ण वाले शरीर से शरच्चन्द्र–मरीचि की कान्ति बरस रही थी। प्रशस्त वक्ष–स्थल विस–तंतु–निभ सूक्ष्म तन्तु निर्मित धवल यज्ञोपवीत से सुशोभित था। अति कमनीय स्फटिकाक्षमाला कंठ–प्रदेश से लटक रही थी। मौञ्जी–मेखला से उनके कटि–प्रदेश का अधराम्बर बँधा था। प्रातः–संध्या के उपरान्त शक्ति–नाथ अम्बरेश्वर के गगनस्पर्शी मंदिर के सोपानों से उन्हें उतरते हुए देख जान पड़ता था कि धूसर–पयोद–वेष्टित–शिखर युक्त धराधरेन्द्र हिमालय ही उतरता चला आ रहा है। उस मूर्ति को देखकर अनायास ही मन अनिर्वचनीय शान्ति, उल्लास, आनन्द से भर उठा। श्रद्धा से मस्तक अवगत हो गया। मैंने प्रणाम किया। आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए अपने साथ आने के निमित्त संकेत किया। उनकी वात्सल्ययुक्त इंगित में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मैं अपने पिता के साथ हूँ। उनकी स्नेहमयी वाणी में अपूर्व रस था, वात्सल्य–भाव था। मैं विह्वल हो उठा। मंत्रमुग्ध की भाँति उनके पीछे चलता हुआ प्रासाद के मंत्रणा–गृह में पहुँचा।

यह मंत्रणा–गृह बहुत विशाल न था, फिर भी इसकी सुचारुता प्रशंसनीय थी। इसकी छत काष्ठ के स्थल स्तम्भों पर आधारित थी। प्रत्येक स्तम्भ के नीचे एक वृत्ताकार अष्टदल कमल की कुंभी थी। इसके ऊपर भरणी थी। भरणी के दोनों ओर कालागुरु के कमनीय गज–शुण्ड बने हुए थे जो ऊपर की ओर उठकर छत को उठाये हुए थे। इन कुम्भियों, भरणियों तथा स्तम्भों पर कपिश की काष्ठ–कला का चातुर्य सम्पूर्ण रीति से प्रदर्शित हो रहा था। भित्तियाँ केशर वर्ण की मसृण प्रभा से उद्दीप्त हो रही थीं। भित्तियों में द्वार थे, जिनसे बाहरी उद्यान की छटा दिखाई दे रही थी। उद्यान के पुष्प निकलते हुए सूर्य की किरणों से देदीप्यमान हो चमक रहे थे। द्वार के कपाटों पर भी सुन्दर खुदाई का काम था। इन पर हाथी दाँत के काम बने हुए थे। भूमि पर कपिश का बहुमूल्य ऊर्ण–निर्मित बृहदास्तरण बिछा हुआ था। इस पर अनेक प्रकार के पुष्प तथा लताओं की बेलें कढ़ी हुई थीं। मुख्य द्वार के सामने पृष्ठ–देश की भित्ति को स्पर्श करता हुआ एक स्वर्ण–जटिल सिंहासन रखा हुआ था। सिंहासन के पाये सिंहाकार थे। सिंहासन में यथास्थान अनेक बहुमूल्य मणि जरिल थे। सिंहासन पर सुनहरे काम की गद्दी बिछी हुई थी। इस पर सोने के तार से अनेक सुन्दर पुष्प स्तवकित थे। पृष्ठ देश की भित्ति में सिंहासन के पीछे एक शलाका–युक्त वातायन था। उससे तिरस्करिणी लटक रही थी। तिरस्करिणी के किनारे हलके लाल रंग की निवीति से सुशोभित थे। उसके मध्यभाग में एक पुष्करिणी में तैरता हुआ हंस चित्रित था। सिंहासन के नीचे पैर रखने के लिए स्वर्ण पाद–पीठ रखा हुआ था। सिंहासन के पृष्ठ देश से सटी हुई, चीनांशुक से ढकी, पृथक्–पृथक् दो गद्दियाँ लगी थीं। स्वर्ण पाद–पीठ रक्त वर्ण की फूलदार गद्दी से ढका था। सिंहासन के दाहिनी तथा बायीं ओर काष्ठ की आसंदियाँ रखी थीं। इन पर भी सुन्दर पत्र भंगों के उरेह थे। इन पर की गद्दियाँ श्वेत वस्त्राच्छादित थीं, उपधान पृष्ठ–देश से सटे पड़े थे। सिंहासन और सिंहासन के आसपास की आसंदियों के सामने कुछ दूर आगे हटकर दाहिनी ओर व्यास–पीठ बना हुआ था। इसकी ऊँचाई सिंहासन के ही समान थी। यह काष्ठ का था। इस पर एक बहुमूल्य कम्बल के मध्य भाग में अञ्जनद्युति मृगचर्म बिछा था। इस व्यास–पीठ के सामने चन्द्राकार रूप काष्ठ की आसंदियाँ रक्खी थीं। पीतवर्ण के रेशमी–वस्त्र से वेष्ठित गद्दियाँ तथा उपधान इन पर लगे थे। इन आसंदियों के ठीक बीचोबीच सिंहासन तक जाने के मार्ग पर रक्त–पीत–कर्वुर रेशमी आस्तरण बिछा था, जिससे आसंदियों की पंक्तियाँ दो भागों में विभक्त हो गयी थीं। स्थान–स्थान पर रजत की ऊँची धूपदानियों में तुरुष्क–धूप जल रही थी जिसकी गंध से समस्त मंत्रणा–गृह सुरभित हो रहा था। सिंहासन रिक्त था। सिंहासन की दाहिनी ओर की आसंदियों के पार्श्व भाग में सैनिक वेश में दो व्यक्ति प्रहरी के रूप में खड़े थे। यही महाराज नन्दिवर्धन का गुप्त मंत्रणा–गृह था। यहीं से समस्त उत्तरापथ की राज्य–व्यवस्था का सूत्रपात्र हुआ करता था। किन्तु आज शून्य पड़ा था। शत्रुओं के लिए महाराज नंदि काल थे।[1] मित्रों को अशोक करने वाले थे। कालाशोक का विरुद उन्होंने यथार्थ ही प्राप्त किया था। अवन्ति की विदिशा से, तुरुष्क–देश के मृग नगर तक की शासन–व्यवस्था करने वाले का नाम तक आज इतिहासकारों के समक्ष लुप्तप्राय था। पुराणों के काकवर्ण कालाशोक का राजसिंहासन शून्य था। यवनों का दर्पदलन करने वाला दिग्विजयी–वर्धन नन्दि का प्रताप–अस्त हो चुका था। प्रहरियों ने शिरसावनत प्रणाम किया, संकेत पा वहाँ से हटकर वह मुख्य द्वार पर जा खड़े हुए। व्यास–पीठ पर के रखे हुए मृगचर्म पर बैठते हुए, सामने की आसंदी पर मुझे बैठने के लिए महाप्रभु ने संकेत किया। उनके सान्निध्य–मात्र से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेरी प्रत्यभिज्ञा उद्बुद्ध हो रही हो, मेरे स्मृति–पटल पर क्रमशः पूर्व की बातें उभर रहीं हो। स्नेह तथा आदर भरे आश्वस्त स्वर में वह बोले–"वत्स कलादास। क्या सोच रहे हो? मस्तिष्क को अधिक बोझिल करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे संबंध में बातें ज्ञात हो रही है। शास्त्रबल, बुद्धिबल, क्या नहीं कर सकते? कुछ ही दिनों में तुम्हारी मोह–मूर्छित पूर्व–स्मृतियाँ पुनः उद्बुद्ध होंगी और अपने संबंध में अपने आप सब कुछ विदित हो जायगा। मंजुश्री को मैंने तुम्हारे अति पूर्व–जीवन का

1. (1) अशोकावदान, तुलनीय (2) आश्चर्य कुतूहली च चण्डीपतिदंण्डोपनत यवननिर्मिजेन, नभस्तलयायिना यन्त्र–थानेनानीयत, क्वापि काकवर्णःशैशुनागिश्च नगरोकण्ठे निचकृते निस्तिशेन। (हर्ष–चरित)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृतान्त बताया है। जो कुछ अब तक ज्ञात हो पाया है। उसे तो वह तुम्हें ज्ञात करा ही चुकी हैं।

"हे आयुष्मन! दैवगति अनुल्लंघनीय है। पुरातनी स्थितियों को अन्यथा कौन कर सकता है। जो कुछ हुआ है उसे मैं दैवगति ही कहूँगा। मेरे ऐहिक कार्यों का अवसान–काल सन्निकट है। मुझे अपनी कथा सुनाना है। अपना परिचय देना है। विदिशा के सुज्येष्ठ मित्र का मैं कनीयान्–भ्राता त्रिविक्रम–मित्र हूँ। हूणों के आक्रमण से कपिश के संकटापन्न होने पर मैं अपने भाई की आज्ञा से यहाँ आया। अपने करद कुषाण शासकों के सहयोग से हूणों की बाढ़ रोकने की चेष्टाएँ कीं। पर सभी प्रयास निष्फल हुए। प्रायः दो दशकों से भी ऊपर हो गये कपिश हूणों द्वारा रौंदा गया। शनैः–शनैः सारा देश हूणों से पदाक्रान्त हो गया। जिस दिन गिरि–गह्वरों से चर तुम्हें बौद्ध भिक्षु समझ कर उठा लाये, उस दिन मैं तुम्हारी आकृति देख विस्मयाभिभूत हो गया।

"मेरे भाई का पंचवर्षीय शिशु, जिसे मैं भाई के अंक में छोड़कर आया था, वही मेरे सामने था। भाई के अस्त हो जाने के उपरान्त उसके लुप्त हो जाने का समाचार मैंने सुना था, मेधावी–श्रेष्ठ–कुलों के बालकों को भिक्षु बना, उसके उर्वर मस्तिष्क के विकास से बौद्ध–संघ को समुन्नत रखना संघ का सदैव से उद्देश्य रहा है। उस बालक के अलौकिक सामुद्रिक लक्षणों की विज्ञप्ति बौद्ध–संघ को थी। किसी दिन संसार उसकी शक्ति के समक्ष नतमस्तक होगा, इसे वे जानते थे। हमारे कुल का वह बालक एक रत्नदीप था। भाई सुज्येष्ठ के देहावसान से मैं निर्विराण हो चला था। अपने कुल के एकमात्र अवलंब के लुप्त हो जाने से मेरी निर्विण्णता और भी बढ़ गयी। इसी बीच महाराज भीम कुशल कुशल कुषाण, जिन्होंने मेरा आधिपत्य स्वीकार कर लिया था, हूण–युद्ध में मारे गये। उनकी अनाथ पुत्री मंजुश्री का संरक्षण–भार भी मेरे ऊपर आ पड़ा। *वंक्षु तथा सीता के काँठों में विहार करने वाली इस मात्–पितृहीना बालिका की संरक्षता में न जाने कौन–सा आकर्षण मिला कि मैं इसकी देखभाल करने लगा। दैवगति गहन तथा अति निगूढ़ हुआ करती है। काकवर्ण शशुनागनन्दि द्वारा संचालित कपिश का राज्य आज विदेशी बर्बर हूणों के अधिकार में है। मेरे प्रयास निष्फल हैं। राज्यलक्ष्मी चंचल हो रही है। बौद्धों के ही बीच मेरे कुल का प्रदीप है, इसका भी अनुमान मैं सहज ही करता था। किन्तु इन षडयंत्रियों से उसका उद्धार कैसे हो, इस पर बहुत विचार करने पर भी हो कुछ न पाया। कोई ऐसा बौद्ध–विहार नहीं जहाँ मेरे चरों ने छानबीन न की हो। कोई संधाराम नहीं जहाँ के समाचार मुझे विदित न हों, पर फल कुछ न निकला। मैं नितान्त हताश हो चला था। किन्तु भावी की प्रबलता अनिर्वचनीय है। इस देश में इस समय अनेक परिवार हैं, जिनके रत्न, जिनके घर के कुलदीप इन्हीं मुण्डित केशों के बीच हतबुद्धि हो, भ्रमित हो, घूम रहे हैं। उनके घर वाले उनके विछोह–दुःख से मूर्छित हैं, स्तब्ध हैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं। इस अभिशाप को दूर करने के लिए मैं कितने समय से प्रत्यनशील हूँ। पर अभी तक तो असफल ही रहा।

"तुमको उस दिन मूर्च्छितावस्था में देखा, अकारण ही हृदय विह्वल हो गया। मैं परवश हो गया। जान पड़ता था हृदय का खण्ड ही बाहर पड़ा है। तुम्हारा अनुहार प्रत्यभिज्ञा को उद्बुद्ध करने मे सहायक हुआ। मैंने अनुमान किया जैसे हमारी लुप्त निधि मिल गयी।

तुम्हारी आयु का आकलन किया, मन की बात ठीक होती–सी ठहरी। तुम्हारे शरीर के वस्त्र अस्त–व्यस्त हो गये थे। अकस्मात् तुम्हारे दक्षिण कटि प्रदेश के अधोभाग में एक किसी अतिपूर्व समय के ब्रण–चिन्ह को मैंने देखा, मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। यह चिन्ह तुम्हारी पहचान का सूत्र था। उसे देख मैं अपने में न रहा। मेरे सुख, आनन्द, उल्लास, उन्माद, मोह, सब कुछ उमड़ पड़े। मैंने अपने आपको किसी प्रकार प्रकृतिस्थ किया।

महामाया ने सहारा दिया। उन्होंने तुम्हारी मूर्छावस्था को दूर करने का प्रयत्न किया। तुम्हारी यह मूर्छा भयंकर थी। तुम्हारी आकृति पर विकृत–सम्मोहन का आवेश था। स्वस्त्ययन अनुष्ठान से तुम्हारी बाधा शांत हुई है। देवी मंजुश्री को जब विदित हुआ कि तुम हमारे कुल–रत्न हो, हर्षतिरेक से वह भर उठीं। शुश्रूवा में तन्मय हो गयीं। शक्तिनाथ की करुणा से चेतना आयी।

तुम्हारे इस व्रण–चिन्ह का कारण तो मैं ही थी। एक बार जब तुम्हें अपने बड़े भाई की गोद से ले, शस्त्रागार का निरीक्षण कर रहा था, मेरी ही कृपाण की निश्रित धार पर तुम गिर पड़े थे। चोट काफी गहरी थी और उसके अच्छे हो जाने पर भी उसका चिन्ह अमिट रहा। चर लोगों को संभवतः कटि–प्रदेश के निचले भाग को देखने का अवसर ही न मिला होगा।

इसी कारण वे अपने प्रयत्न में असमर्थ रहे। मेरी तपस्या, मेरी साधना, सभी आज सफल हुई है। मेरा ऐहिक कार्य समाप्त है। श्रामुष्मिक लोक के कार्य करने का समय प्रस्तुत है।

देवादिदेव त्रिभुवन गुरू त्र्यम्बक शक्तिनाथ की अमोध शक्ति से यह सब निष्पन्न हुआ है। आज से विश्व तुम्हें कालिदास के नाम से स्मरण करे, यही मेरा आशीर्वाद है। 'इ' कार शक्ति आह्वान का एकाक्षर मंत्र है।" इतना कहते–कहते वह एक अपूर्व उन्मेष से भर उठे। उस समय ऐसा जान पड़ा मानो वह किसी महाशक्ति के सामने बोल रहे हों। वह कहते ही गये–

"जैन कालकाचार्य, शून्यविद, मिथ्या तर्क–कुशल प्रपंच बुद्धि, आदि अनेक जैन तथा बौद्ध श्रमणों ने देश में दुर्व्यवस्था उत्पन्न कर दी है। भविष्य आज संकटापन्न है। ब्राह्मण किसी की अपेक्षा नहीं करता। वह सदैव से समाज का व्यवस्थापक रहा है। दुर्व्यवस्था समय के समय के फेर में उत्पन्न होती है। इन्हें शाश्वत नियमों के भीतर रखना ही ब्राह्मण का सनातन कर्म है। आज की देशव्यापी अव्यवस्था के मूल कारण बौद्ध हैं। ये महात्माबुद्ध की निष्ठा, सत्यप्रियता, शम, संयम को भुला बैठे हैं। इंद्रिय–परायणता, विदेशियों से दुरभि संधि, इनका कार्य हो गया है। दिन–प्रति–दिन प्रत्यन्त दस्युओं की बाढ़ बढ़ती जा रही है। मंदिर, विहार, ब्राह्मण, श्रमण, स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध कोई सुरक्षित नहीं हैं।

* प्राचीन नाम आज–कल के प्रचलित नाम
वंक्षु–अम् (Oxus)- यह पामीर (मेरु) से निकल कर अरल सागर में गिरती है।
सीता–दरिया थारकन्द, यह तारिम नदी में मिल जाती है। दरद पवतमाला के उत्तर काराकोरम (कारा) पर्वत माला इसका उद्गम स्थान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतीय गणतंत्रों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, मिथ्याभिमान देश के लिए घातक है। प्रबल यौधेयों की नीति राष्ट्रीय न होकर प्रांतीय है। आज सिंह–पराक्रम चन्द्रगुप्त कहाँ है? जिसका यशःगंध प्रत्यन्त प्रदेश से पूर्वोदधि तथा तुरुष्क से दक्षिणोदधि पर्यन्त फैला था, जिसकी पीन भुजाओं की छत्रछाया में समस्त भातरवर्ष सुख की नींद सोता था, जिसकी धनुष की टंकारों से यौधेयगण काँप उठते थे, जिसने म्लेच्छों का मान–मर्दन किया और मंदिरों, मठों, विहारों, संघारामों को धराशायी करने वालों का सर्वनाश किया, जिसकी गर्जना मात्र से प्रत्यन्त सामन्त नतमस्तक हो गये। आज आर्यावर्त, दक्षिणापथ सब मायाभिभूत हैं। जैन तथा बौद्ध आचार्यों की कुटिल नीति, मालव दलों का दर्प, अनेक राजन्यवर्ग का पारस्परिक विद्वेष, श्रमणों का व्यभिचार, जनसाधारण के बीच फैली हुई भोगविलास की लोलुपता, सभी देश–विनाश के चिन्ह हैं। पिपीलिकाओं से भी बहुसंख्य, भेड़ियों से भी वह्राशी, गृध्रों से भी दुर्गन्धमय, कौलेयकों से भी हीन, श्रृंगालों से भी कुटिल, महाशीविषों से भी द्विजिह्व, कृकवाकों से भी अधिक जिह्मगामी, हूण दस्युओं से इस पवित्र आर्यावर्त को बचाने की शक्ति आज किसमें है? हे कल्याणभिविवंशी, तुम्हारे समक्ष महान् कार्य है। मैं सप्ततिपर वृद्ध हूँ। मेरा ऐहिक कार्यकाल समाप्त है। इन दस्युओं के करालपाश से आर्यावर्त, दक्षिणापथ की रक्षा तुम्हें करनी होगी। भारतवर्ष में अनादि युग से ब्राह्मणों का कर्त्तव्य समाज में सुव्यवस्था स्थापित करना रहा है। मैंने, तुम्हारे पूर्वजों ने, पुष्यमित्र के सभी संतानो ने किया है। मेरे संन्यस्त ग्रहण करने का समय उपस्थित है। प्रवज्या–ग्रहण में विलम्ब, मोह का द्योतक होता है। मेरा कार्यकाल निश्चपूर्वक समाप्त है। वत्स! यदि तुम्हें न पा सका होता तो संभवतः वह अभी समाप्त न होता। मैंने देश–सेवा में ही ब्रह्मचर्य युक्त जीवन बिताया, किन्तु अब जो देश से भी महान् कार्य है, जिसमें स्वदेश–शांति से भी ऊँची विश्व–शांति की कामना सन्निहित है, उसे ग्रहण करना है। जिस आश्रम को अब मैं ग्रहण कर रहा हूँ उसमें न देश–भिन्नता है न जाति–वैषम्य। विश्व–मानवता एक है। हिमालय की गहन उपत्यकाओं में प्रवेश करने का समय उपस्थित है। वत्स कालिदास! अधीर होने की आवश्यकता नहीं, भगवती सरस्वती तथा आशुतोष–त्र्यम्बक भगवान् की अमोघ कृपा से तुम हमारे उद्देश्य को, हमारी मनोकामनाओं को, चिरेप्सित अभीष्ट को सम्पूर्ण कर सकोगे।

"वत्स मेघरुद्र! नालन्दा तथा तक्षशिला के गुरुकुलों के तुम सरीखे अन्तेवासी को, जिसने अखिल वेदितव्य को विदित कर लिया हो, उसे तो अल्पमात्र भी उपदेश की आवश्यकता नहीं। फिर भी यौवन–प्रभूत–तम, निसर्गतः अति गहन होता है। किसी भी रत्न का आलोक उसका उच्छेदन नहीं कर सकता।

इस अवस्था में उत्पन्न होने वाले दर्प की उष्मा दाह ज्वर के समान तीव्र होती है। वह किसी भी शिशिरोपचार की अपेक्षा नहीं करती। विषय–वासनाओं के आस्वाद का मोह विषम होता है। इस मोह पर किसी मंत्र का प्रभाव नहीं। यौवनोत्थित सुख की निद्रा सन्निपात–निद्रा से भी भयंकर होती है, घोर होती है। रात्रि के अवसान होने पर भी प्रबोध प्राप्त नहीं होता। तुम्हारे सामने विस्तृत भविष्य है। भावी आपदाओं का सामना करना है। इसी आशंका से अभिभूत हो विस्तार से यह सब कह रहा हूँ।

"युवावस्था के आरम्भ में शास्त्र–जल के प्रक्षालन से भी निर्मल की हुई बुद्धि कलुषित हो जाती है। युवकों की आँखें कुन्दकुड्मल धवलिम्ना से युक्त होने पर भी रागयुक्त होती ही हैं। यौवन समय में पुरुष को उसकी प्रकृति उसी की इच्छा से उसमें रजोभ्रांति उत्पन्न कर उसे अति दूर उसी प्रकार उड़ा ले जाती है जैसे शुष्क पत्र को बात–भ्रमि। विषयोपभोगी की तृष्णा अति दुखान्त होती है। यह सदैव वाह्यन्द्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती हैं। नवयौवन द्वारा कषायितात्मा वाले को विषयास्वाद रूपी सलिल अत्यन्त मधुर जान पड़ता है। विषयों की अति आसक्ति मनुष्य को उन्मार्गगामी वैसे ही बना देती है जैसे उद्भ्रांत पथिक को दिग्मोह। तुम्हारे ही जैसों को उपदेश की आवश्यकता होती है। स्फटिक मणि के समान अपगत मल वाले मन में गुणों का समावेश रजनिकर किरणों के समान अति सरलता से होता है। अभव्य बुद्धि वालों के कानों में पड़ा हुआ शुभ्र अमल गुरुपदेश भी, शूल उसी प्रकार उत्पन्न करता है जैसे कर्ण–कुहरों में प्रविष्ट होने वाला विमल शीतल जल।

"अभी तुमने विषय–रसों का आस्वाद नहीं पाया है। इसीलिए यही समय उपदेश के लिए उपयुक्त है। कुसुम शर के प्रहार से जर्जरित हृदय में छलनी के जल समान सभी उपदेश बह कर बहिष्कृत जो जाता है। इस अवस्था में अकारण ही दुष्प्रकृति की ओर अन्वय हो सकता है और साथ ही साथ सम्भावना भी रहती है कि मनुष्य विनयी तथा श्रुति–सम्पन्न हो जाय, तुम तो जानते ही हो। क्या चन्दन से उत्पन्न होने वाली अग्नि नहीं जलाती? क्या समुद्र के भी अन्तराल में रहने वाली बड़वाग्नि वारि के ही सम्पर्क से अधिकतर प्रचंड नहीं हो जाती। गुरु का उपदेश तो पुरुषों के लिए अखिल मल–प्रक्षालन की क्षमता रखने वाले अजल स्नान के सदृश है। पलितादि विरुपता विरहित वृद्धता है। यह वह आलोक है जिसने सभी आलोकोद्गमों को पराभूत कर दिया है। यह वह जागरण है जिसके द्वारा मनुष्य की बुद्धि सभी विषयों में जागरूक हो जाती है।

"हे शुभानुकारिन्! इस महामोहकारी युवावस्था में आकर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। इसलिए ऐसा आचरण रखना चाहिये जिसमें जनसाधारण निन्दा न करे, साधू लोग धिक्कार न दें, गुरुओं द्वारा उपालम्भ प्राप्त न हो। मित्र लोग तुम्हारे आचरण पर पश्चात्ताप प्रकट न करें, सुहज्जन आदरपूर्वक नाम लें। विद्वज्जन दर्शनार्थ उत्सुक रहें।

"प्रायः युवकों को धूर्तजन वंचित करते हैं, वनिताएँ आकृष्ट करती हैं, मिथ्याभिमान उनकी विडम्बना करता है, लक्ष्मी उन्हें नचाती है, काम उन्हें उन्मत्त करता है, विषय–वासनाएँ उन्हें खींचती हैं, राग उनके मन को रंगीन बना देता है। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी प्रकृति गंभीर है। तुम्हारे पिता ने तुम्हारी पंचवर्षीयावस्था में ही विद्याओं का संस्कार कराया। सभी विद्याओं तथा कलाओं की शिक्षा में तुमने अपनी असाधारण मेधा का परिचय उसी समय दे दिया था। किन्तु कुटिल दैव–चक्र से तुम्हें हम खो बैठे। आज मुझे कितना हर्ष है, कितना सुख है, क्या इसका वर्णन कतिपय वर्णों के आधार पर खड़ी होने वाली वाणी द्वारा कभी किया जा सकता है?" इतना कह वह चुप हो गये। उनकी अमल उपदेश वाणी से मेरा मन, अन्तःकरण, शरीर सभी धुल कर निर्मल हो गये, स्वच्छ हो गये। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेरे अन्तस् के चक्षु–पटल अनावृत हो गये हैं, मानो मेरा नवीन संस्कार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ हो मेरे अन्तरालों में प्रविष्ट भाराक्लांति न जाने कहाँ विलीन हो गयी। मेरा रोम–रोम उल्लसित हो गया। मैंने पितृव्य की ओर श्रद्धा, आदर, प्रेम भरी आँखों से देखा।

एक महूर्त्त ठहरकर उन्होंने कहा– "वत्स, मध्याह्न हो चला है। ज्योत्सिनका भोजन वेला की सूचना देने के लिए प्रतीक्षा कर रही है।" इतना कह वह पुनः शक्तिनाथ अमरेश्वर के मंदिर की ओर चल पड़े। मैं कुछ कह न सका, केवल अति विनीत प्रणति द्वारा अपने हृदय के उल्लास को इंगित कर सका।

उनके चले जाने पर, मुझे अपने मुमर्षित जीवन की, अपने स्तब्ध जीवन की घटनाएँ, एक–एक कर स्मृति–पटल पर आने लगीं। कुछ क्षणों तक मैं वहीं खड़ा रहा। वैतालिक का स्वर सुनाई पड़ा, उसने मुझे मानो पुनः उद्बुद्ध किया–"आमत्य कुमार की जय हो! मध्यांह्न वेला आरूढ़ है।[1] अन्तःपुर की दीर्घिकाओं के कोमल विसनी पत्रों की छाया में मध्याह्न के ताप से संतप्त अर्ध्यनिमीलित नेत्रों वाली हंसों की श्रेणियाँ विश्राम कर रही हैं। सौधों की बलभियों से स्नेह रखने वाले पारावत–मिथुन उनके उत्तप्त हो जाने के कारण उनसे द्वेष कर रहे हैं। इस समय की आह्लादिनी भावनाओं के उन्मेष से आप के उद्दीप्त मुख के ही समान सूर्य अपनी समग्र किरणों से आकाश में चमक रहा है।" उसकी अन्तिम बातें सुन मुझे खीझ सी हुई। वैतालिक कुछ और भी कहता, किन्तु उसे बोलने का अवसर न दे ज्योत्स्निका ने संयत स्वर से कहा–"आर्य, आहार की उचित वेला के अतिक्रमण से शरीर की स्वाभाविक क्रियाएँ क्लांत हो जाती हैं।" मैंने स्वप्निल आँखों से ज्योतिस्नका की ओर देखा, वह मेरे समक्ष अंजलिबद्ध खड़ी थी। लगता था वह मुझ मुकुलित[2] पद्म–कुड्मल का उपहार प्रदान करने को अग्रसर हो रही हो। उसकी कोमल उँगलियों में रत्नजटित मुद्रिकाएँ पड़ी हुई थीं।

चतुर शिल्पियों की कल्पना से विनिर्मित इन अँगुलीपकों से स्फुटित होने वाली स्निग्धांशु माला से उसकी बद्धाञ्जलि विकंचमान इंदीवर के समान प्रतीत हुई। मेधा की दुर्बलता के कारण जिसे इतने दिनों से खोज रहा था उसे भी पहचान न सका। उसी की ओर विसंज्ञ दृष्टि से देखते हुए, उसकी बातों का उत्तर न देते हुए मैंने उससे पूछा–"ज्योत्स्निके! देवि मंजुश्री कहाँ हैं?" उसने उत्तर दिया–"आपकी ही प्रतीक्षा करती हुई वह महानस में बैठी हुई हैं। आप मेरे साथ चलें। इतना कह वह आगे बढ़ी। जैसे उसकी आँखें छलछला उठी हों। मुझे पीछे आने का उसने संकेत किया। देवि मंजुश्री का नाम सुनते ही, क्यों ज्योत्स्निका अन्यमन्स्क हो उठी, यह मैं समझ न सका। मैंने पूछा–"ज्योत्स्निके! तुम कौन हो?" उसने जैसे मेरे प्रश्न को सुना ही नहीं। महानस में बैठी हुई देवि मंजुश्री की ओर संकेत कर मेरे लिए जल लाने के लिए दूसरी ओर चली गयी। मैंने मंजुश्री को, श्री के समान ही प्रतीक्षा करते हुए पाया। महामाया भी महानस से संलग्न कक्ष में शिव की अभ्यर्चना करती हुई शांत मुद्रा में बैठी हुई थीं। देवि मंजुश्री ने एक मीठी झिटकी देते हुए कहा– "देव! दुर्बल शरीर के साथ अनाचार ठीक नहीं। दिनचर्या की बेलाओं का अतिक्रमण उचित नहीं। उस वैतालिक की बातों में आप न पड़ा करें।" इतना कह परिजनोपनीत पाद्य–आर्घ्य को देकर आसन पर बैठने के लिए कहा। मैंने देखा ज्योत्स्निका मेरे बैठने के लिए आसन और आचमनीय आदि मनोयोगपूर्वक सजा रही है। मैं आसन पर बैठ गया। देवि मंजुश्री आसन के पास ही बैठी हुई एक कांचन–थाल में अनेक प्रकार के व्यंजनों को सजाने में व्यस्त थीं। उनकी छरहरी उँगलियाँ तेजी से चलती हुई सुरभिमय व्यंजनों को थाल में सुचारुता से सजा रही थीं। मैं मंत्रमुग्ध देख रहा था। मुझे इस प्रकार देखते हुए उन्होंने किंचितस्मित् के साथ कहा–"आर्य, ये देखने के लिए नहीं हैं।" इतना कह उन्होंने थाल मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने ग्रास ग्रहण करते हुए कहा–"देवि इतने सरस पदार्थ तो अमरों को भी दुर्लभ हैं, फिर आपके कर–स्पर्श से तो ये अमृतमय हो रहे हैं।" कल्पवृक्ष से जब मनुष्य के इप्सित फल च्यवित होते होंगे तो क्या वे इससे अधिक तृप्तिदायक होते होंगे? कपिश के नलिनी–दल के समान हरित कापिशायिनी द्रक्षा के अति मधुर रस को मैंने पिया। मेरी तृप्ति हो चली। मैंने केतकी पुष्प–सुरक्षित जल से उठकर हाथ–मुँह धोया। पास में ही दासी एक अति स्वच्छ धवल वास–शकल लिये खड़ी थी। उससे हाथ–मुँह सम्मार्जित कर चलने को ही था कि ताम्बूल बीटकों से भरी चाँदी की पुटिका लिये हुए देवी मंजुश्री आयीं। उन्होंने गरिमा भरी वाणी से कहा–"आर्य! अभी आप सम्पूर्ण रीति से स्वस्थ नहीं हैं। आप शयन–कक्ष में विश्राम करें।" बीटक उठाते हुए मैं विमुग्ध–सा हो उठा, अनायास ही मुख से निकल पड़ा–"देवी का प्रसाद पा कोई कैसे अस्वस्थ रह सकता है।" मैं अपने विश्राम–गृह में आया। शयनीय पर पड़ा हुआ सोचने लगा–आज कितनी बातें ज्ञात हुई हैं। विधि का विधान कितना विस्मयकारी है। पितृव्य को पाकर मैं आज सनाथ हूँ, पर पितृव्य प्रव्रज्या के लिए उद्यत हैं। उनके बिना क्या मैं उनके निर्देशों का पालन कर सकूँगा। मेरे में इतनी शक्ति कहाँ! उनको प्रव्रज्या–संकल्प से विरत करना ही होगा। क्या वे मेरा प्रणय, मेरा विनय, मेरा अनुरोध स्वीकार न करेंगे। मैं कहाँ था, कहाँ आ पहुँचा! मंजुश्री कितनी शालीन हैं। उनकी मेरे ऊपर कितनी कृपा है।

क्या मैं उनका कृपापात्र बनने योग्य हूँ? उनकी सुन्दरता अपूर्व है। लगता है जैसे त्रिलोक सौन्दर्य ही[3] उनके शरीर में उदति हुआ है। अवश्य ही विधि ने[4] एक अपर स्त्रीरत्न की सृष्टि की है। इससे पूर्व अपने आदेश से तिलोत्तमा के

1. पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां,
सौवान्यत्यर्यतापद्वलभिपरिचयद्वेषिपादावतानि।
विन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिपतिति शिखी भ्रान्तिमद्वारियन्त्रम्
सर्वेयस्त्रैः समग्रस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः।।–मालविकाग्नि मित्र, 2–12
2. अनेनाङ्ग लीयकेनोन्निकिरण केसरेण कुसुमित इव तेऽग्रहस्ता इव तेऽग्रहस्तः प्रतिभाति। –मालविकाग्नि मित्र, 1
3. कुले प्रसूतिः प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसःस्त्रिलोक सौन्दर्यमिवोदितं वपुः।
प्रमृग्यमैश्वर्सुखं नवं वयः तपः फलं स्यात्किमितः परं वद।।
4. चित्रेनिवेश्य परिकल्पित सत्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिता कृतान।
स्त्री रत्नसृष्टिरपरा प्रतिभातिसा में धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप में विश्वकर्मा द्वारा निरतिशय सौन्दर्य की रचना करा चुके थे, किन्तु उससे उन्हें सन्तोष न हुआ, मानो इसीलिए उन्होंने इस स्त्री–रत्न की रचना की। प्रथमतः अपनी मानसिक कल्पना की तूलिका से त्रिलोक रूपोच्चय को उपादान बना इस मनोमुग्धकारी रूप की रेखाएँ खींची और तदुपरान्त उसमें प्राण स्पन्दित कर दिया। निश्चय ही विधाता के निर्माण–कौशल की देवि मंजुश्री विस्मयकारी प्रसूति हैं। इस अपूर्व रूप–माधुर्य की यही आलोचना हो सकती है।

मन में आया न जाने कौन–सा पुण्यभागी इस अद्भुत रूप की खानि का उपभोग करेगा।[1] यह तो अखण्ड पुण्यों का फल ही कामिनीरूप में साकार हो उठा है। निष्कलंक भावनाओं की प्रतिमूर्ति ही सामने आ गयी है। नखों की क्षति–विक्षति अम्लान नवकिसलय के समान कोमल उनके अंग हैं। अनाविद्ध रत्न–निभ–प्रजा उनके देह से विच्छुरित होती रहती है। अनास्वदित मधु के अनिर्वचनीय रस–तुल्य सरस हैं। अनघात पुष्प की सुरभि है।

इन्हीं कल्पनाओं में लीन मैं सो गया। जब आँखें खुलीं तो सामने ज्योत्स्निका को भी रजत हंसाकृति राजहंस पात्र[2] में सुरभित जल लिये खड़ी देखा। उठ बैठा। उसने कहा–"आर्य, दिन अल्प–शेष है। देवार्चन–विधि बेला समीप है। आप उठें।" गवाक्षों से विकरित होने वाली संध्या की अरुण रश्मियाँ ज्योत्स्निका के मुख पर पड़ रही थीं। उसकी मनोहारी मुखकान्ति से मानो मेरा मुमूर्षित स्मृति–पटल उद्वेलित हो उठा। मैंने सहसा पुनः ज्योत्स्निका से पूछा–"ज्योत्स्निके! तुम कौन हो?"

ज्योत्स्निका के चले जाने पर, मैंने सन्ध्योपासना समाप्त की। हठात् मेरी दृष्टि सुदूर प्रान्तों में फैले विशाल पर्वतों की ओर पड़ी। इन अभ्रंकष पर्वतों से पर्वतों से व्यवहित इन्दुमण्डल की विशद प्रभा से शक्रदिङ् मण्डल प्रकाशित हो उठा था। ऐसा जान पड़ता था मानो शक्र दिशा का मुख अप्रकाशदशन स्मयमान विलास से विभासित है। तुषार–किरण की कला से ईषत् परिभिन्न–तिमिर–गगन–मंडल एक क्षण के लिए चन्दीधिति से उद्भासित तिमिरौध–कल्प–जटाजूटयुक्त शंकर के समान जान पड़ा। लगता था मानो मदन दहनोपरान्त गणाधिपतिमूर्ति चन्द्रशेखर क्षपाकर की अंशुओं से प्रभिन्न्र कंकुभमण्डल सहित महाशून्य में ऊपर की ओर उठ रहे हैं।

वितस्ता की निर्झरिणियों में उगने वाले वानीर–कुञ्जों के प्रसूनों से, उसकी आमोदित प्रवहमान जलधार निशाकर की किरणों के बीच थिरक रही थी। तटस्थ गगनभेदी साल के वृक्षों से लिपटने वाली यूथिकाबल्लरियों के स्तवकों से उच्छ्वसित होने वाले परिमल से समस्त वन प्रान्त सुरभित हो रहा था। पर्वतों के व्योमस्पर्शी शिखरों पर अपनी उन्मीलित कलियों के ब्याज से कुटज पुष्प हँस रहे थे। मानों वे गिरि सानुओं की पेटियों में नाचने वाले मयूरों के नृत्य से प्रसन्न हो उठे हैं।

अनायास ही ज्योत्स्निका को देखकर मेरा मानस–पटल धूमिल हो उठता था। किसी बिछड़े हुए की सुधि आने लगती। किन्तु मुझ जैसे अभागे का कौन अपना था? यही तो नहीं स्मरण होने से प्रायः मन बोझिल हो उठा करता था। मैं शिर थाम कर रह जाता था। आज इन मयूरों को नृत्य करते देख अकस्मात् उरगपुरी की रजनिका का चित्र मानस–पटल पर छा गया। उरगपुरी की नृत्यशाला की सुप्त स्मृति जाग पड़ी। रजनिका के मयूर नृत्य का दृश्य आँखों के सामने छा गया। उसकी छोटी भगिनी ज्योत्स्निका तो मेरे साथ अभिनय कर चुकी थी। पर मन मे आया, कहाँ उरगपुरी, कहाँ कपिश और कहाँ ज्योत्स्निका। वह मेरे जीवन में एक क्षण के लिए आयी और पुनः स्वप्न के समान विलीन हो गयी।

किन्तु शनैःशनैः बाल्यकाल का जीवन सामने नाचने लगा। वेत्रवती की वक्र धाराओं में उगने वाले नरकुलों के झुरमुटों में बैठ कर कलरव करने वाले कृकवाँक और कारण्डव पक्षी मुझे कितना आकृष्ट करते थे। एक बार, न जाने वह कैसी कुघड़ी थी कि मैं इन कृकवाकों के पीछे दौड़ पड़ा। ये मेरे हाथ न लगे। शरीर–रक्षक वल्लभ की आँखों से ओझल हो गया। वेत्रवती की कुटिल धार को पकड़ें हुए कितनी दूर निकल आया हूँ, इसका कुछ ध्यान ही न रहा। थक कर किनारे बैठ रहा। मन ही मन सोचने लगा। मेरी मूर्खता का भी कोई ठिकाना है। व्यर्थ के लिए इतनी दूर निकल आया। वल्लभ मुझे खोजते–खोजते खिन्न हो रहा होगा। मैं क्यों उसे छोड़ इतनी दूर चला आया। यदि इन कृकवाकों को मैं पकड़ लेता तो क्या, और नहीं ही पकड़ पाया तो क्या? आश्चर्य है, वह मेरे बाल्यकाल की कैसी चपलता थी। पिता की मृत्यु के उपरान्त मैं उन्मत्त रहा करता था। वेत्रवती के कछारों में मैं बैठा रह जाया करता था। किन्तु उस दिन तो आविष्ट के समान मानो भागता हुआ अपने परिवार तथा परिजनों को छोड़ इतनी दूर भाग निकला था कि पुनः लौटकर उन तक पहुँचना सम्भव न दिखता था।

दशार्णा जनपद की यह वेत्रवती सरिता भी एक अनोखी, चंचल, विलासवती तरंगिणी है। इसने माता पृथ्वी की अतलस्पर्शी दरारों में प्रवेश कर उन्हें भी सुरम्य बना दिया है। इसकी उर्मिमालाएँ तो इतनी चंचल हैं कि सुन्दरियों के भ्रूभंगों को भी मात करती हैं। जब कभी जल धरों की घटा झुक पड़ती है, तो दूर से देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो वे कामुकों के समान किसी भ्रूभंगवती नायिका के अधरास्वाद में मग्न हैं। तट प्रान्त पर अवनमित पयोद पंक्ति के कर्ण–सुभग स्तनित को सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता था मानो अपनी प्रिया को कुटिल भ्रू–युक्त देख रति लम्पट पयोद रति–फल को अविकल रूप से प्राप्त करने के लिए अपनी मानिनी प्रिया शैवालिनी वेत्रवती के कानों में कुछ चाटुकारिता के शब्द कह रहा हो।

नीचैराख्यम् गिरिमधिवसेस्तत्र विश्राम होतो
स्त्वसंपर्कात्पुलकितमिव प्रौढ़पुष्पैः कदम्बः।
यः परायस्त्री रतिपरिमलो–
द्गारिभिर्नागदाणाम्,
उद्दामप्नि प्रथयतिशिला,
वेश्मभियैर्विनानि।।25।।
पूर्व मेघ "25"

विदिशा की नीची पहाड़ियों की शोभा के बीच यह बलखाती हुई ऐसी बहती है कि उस पर उस पर छाये हुए कदम्ब और कुटजों की पत्तियों, वन्य, बदरी–गुल्मों की अरालराजियों तथा अपने आप ही उगने वाले को विदार और

1. अनघ्रातं पुष्पानां फलमिवचतद्रूपमनद्यं, न जानेभोक्तारं कमिह समुपस्यांस्थति विधिः।।
2. रजत हंसाकृति–राजहंस पात्र–तक्षशिला की सिरकप की खुदाई से प्राप्त।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरग्वधू–वृक्षों की उलझी हुई वनस्थली को निरन्तर सरसित करती रहती है। कूलों से करवीरों की लटकने वाली छोटी–छोटी टहनियाँ तो इसके जल को स्पर्श करती रहती हैं। वल्लभ मुझे इन नीची पहाड़ियों की ओर जाने से रोका करता था। किन्तु इनकी नैनाभिराम शोभा मेरे मन को हठात् आकृष्ट करती थी। ये नीची पहाड़ियां विदिशा के लोलुप नागरों की काम–क्रीड़ा–स्थली थीं। इस पर के प्रबुद्ध–कदम्ब पुष्पों को कण्टकित देख उनके भी शरीर के रोम कण्टकित हो उठते। वे अपनी प्रेयसियों को अंकों में लिये हुए इसकी सुरम्य गुहाओं की ओर विहार के लिए निकल पड़ते थे। उनके चन्दन चर्चित–सज्जात– पुलक–कलेवरों के परिमल से शिला वेश्म आमोदित हो उठते। उद्दाम यौवन युक्त–वार युवतियों के विमर्द से उत्थित गन्ध जब इन नागरों के शरीर–विस्रावि गन्ध से विच्छुरित हो उठता तो सचमुच में ऐसा जान पड़ने लगता था कि ये शिला वेश्मरति–जन्य–उत्कट–कटु गन्ध का वमन कर रहे हैं। जीवन का पटबन्ध रूप जीभूत भी इन रूपजीवाओं के विश्रम्भ–बिहार का सहायक बन बैठता, कभी–कभी तो अपने शिशिर्–शीतल–सीकरों से इनके मृणाल– कोमल–अंगों के सुरत–स्वेदापनयन में सहायक बन बैठता।

यों तो भारतवर्ष की नगरियों में साकेत, कौशाम्बी, कपिलवस्तु तथा वैशाली की धूम रही, पर समय के उलट फेर से इनकी ख्याति मेरे बाल्यकाल में नाममात्र को थी। पाटलिपुत्र की धूम थी अवश्य, पर दमित्र और क्षारवलि के आक्रमणों ने पाटलिपुत्र को ध्वस्त कर दिया। क्षारवलि ने तो उस की ईंट–ईंट वायु में बिखेर दी। आर्य पुष्यमित्र ने विध्वंसोन्मुख गुप्त साम्राज्य की रक्षा तो की पर क्षारवलि द्वारा पददलित पाटलिपुत्र को पुनः गौरव का पद प्राप्त न हो सका। उसे वे सजा न सके। क्षारवलि के भयंकर क्रोध का शमन मानो विदीर्ण–हृदया, विध्वंसिता पाटलिपुत्र नगरी ने पूर्णरूप से कर दिया। उसके विकट ध्वंसावशेषों ने, धूम–धूमायित भग्न अट्टालिकाओं ने, धराशायी बौद्ध विहारों ने, नर्तकियों के नूपुरों की झनकार से सदैव झंकृत होते रहने वाले भू–लुण्ठित विशाल नाट्य मण्डपों ने मानो उसके वज्र हृदय को भी पिघला दिया आर्य पुष्यमित्र की दूरदर्शी राजनीतिज्ञता से उनका ध्यान दक्षिण की ओर गया और कुमारी अन्तरीप तक की पृथ्वी उनकी विजयवाहिनी के पग–चाप से प्रकम्पित हो उठी। तमिल देश के शत–शतवर्षीय संघातों को उन्होंने छिन्न–भिन्न कर दिया। आव–राज की बसायी हुई पिथुंड–मंडी को गधौ के हल से जुतवा दिया। इस प्रकार उनकी रोषाग्नि से उत्तराखंड की रक्षा तो हुई, पर उत्तराखंड में गुप्तों का राज्य संघटन नष्ट हो गया।

गुप्तों का अन्तिम कलंक नीच, विलासी, प्रतिज्ञा दुर्बल वृहद्रथ था। उसका वध तो आर्य पुष्यमित्र को समस्त सेना के समक्ष ही करना पड़ा। दमित्र तथा क्षारबलि के आक्रमणों से इस विध्वस्तप्राय राज्य की उन्होंने रक्षा की और अब उनके समक्ष इसके पुनस्संघटन की समस्या थी। पाटलिपुत्र के नष्ट वैभव को सहसा पुनः स्थापित कर देना असम्भव देख अपनी जन्मभूमि विदिशा को आर्य पुष्यमित्र ने भारतवर्ष की राजधानी के लक्षणों से सुशोभित करना प्रारम्भ कर दिया। मनु–प्रणीत स्मृति वाक्य का मानो उन्होंने अक्षरशः पालन किया। राजा के अविनीत हो जाने पर वेद शास्त्र विद् को मनु ने अपार अधिकार दिये हैं। वह सेनापत्य, राज्य, दण्डाधिकरण, नेतृत्व, यहाँ तक कि वह सर्व लोकाधिपत्य तक ग्रहण कर सकता है।

आर्य पुष्यमित्र ने गुप्तों की पतनोन्मुखावस्था देख सेनापत्य पद ग्रहण किया। उनके नेतृत्व में विशाल प्रदशीर्ण जनपद की वलोदृप्त सेना की बिहारस्थली विदिशा के ये सुरम्य वनस्थलियाँ बन गयीं। उन्होंने अपने अग्रज मेरे पिता सुज्येष्ठ को विदिशा के परिवर्धन–संवर्धन का भार अर्पित किया। उस समय कुमार अग्निमित्र की शिक्षा–दीक्षा का भी भार मेरे पिता के ही ऊपर था। किन्तु उनके अकाल कालकवलित हो जाने से मेरे पितृव्य विक्रम मित्र के ऊपर सब भार आ पड़ा था, ऐसे ही समय में मैं उस दिन विदिशा से वेत्रवती के वृकच्छों को पार करता हुआ बहुत दूर जा निकला था।

आकस्मात ककुभ प्रान्तों मेघमालाओं से आच्छन्न ही श्यामल हो गया। शिलीन्ध्र तथा लोध्र कुसुमों के आमोद से भरी हुई वनराजियाँ प्रबल प्रभञ्जन द्वारा विलोडित हो उठीं। समस्त तट प्रांत घोर अन्धकाराच्छन होने लगा। मुसल वृष्टि होने लगी। ऐसा जान पड़ा कि मानो प्रलय–काल उपस्थित् हो गया है। वद–वीथियों के बीच किसी किसी प्रकार मार्गानुसन्धान करता घर की ओर चल पड़ा, पर थोड़ी ही दूर चल पाया था कि मेरा पैर फिसला और मेरा शिर किसी शिला–शकल से टकराया! मुझे दिशाएँ घूमती हुई जान पड़ीं। मेरी आँखें बन्द हो गयीं। मैं पृथ्वी पर गिर पड़ा।

मेरी जब मूर्च्छा टूटी तो मेघ–पटल विविच्छन्न हो चुके थे। प्रातःकालका समय था। आकाश सूर्य–रश्मियों से उद्भासित हो रहा था। वेत्रवती के तट पर एक छोटे से बिहार में मैं पड़ा था। सुगत भदन्तों ने मेरे शिर पर पट्टी बाँध दी थी। भाग्यवश वा दुर्भाग्यवश इन लोगों ने मुझे मूर्छितावस्था में वन मार्ग पर पड़ा पाया था और करुणावश विहार में ले गये। सुगत भदन्तों ने मेरे शिर पट्टी बाँध दी थी। चोट अति सांघातिक थी, फिर भी उनकी अद्भुत औषधोपचर्या से मुझे शीघ्र स्वस्थता प्राप्त हो गयी थी। मैं उठ बैठा। एक श्रमण आया। उसने संयत स्वर से अनामय प्रश्न पूछे और मुझे विहार स्थविर के समीप चलने के लिए कहा। मेरा मन घर की ओर जाने को उत्सुक था, किन्तु उस श्रमण की वाणी में कुछ विचित्र आकर्षण था। सहसा उसका उल्लंङ्घन नहीं हो सकता था। मैं मन्त्र–पराभूत की भांति उसके पीछे चल पड़ा। विहार स्थविर् ने वात्सल्य भरे शब्दों में मेरा स्वागत किया। उनके संकेत को पाकर वहाँ पर कुछ और भी शिष्य एकत्रित हो गये। स्थविर मुझे तथा मेरे परिवार को ऐसा प्रतीत हुआ कि पूरी प्रकार से जानते हैं। उन्होंने मुझे सम्बोधन करते हुए कहा–"वत्स मेघ रुद्र! मुझे तुम्हारे कुल, निवासस्थान इत्यादि के सम्बन्ध में सब कुछ ज्ञात है। तुम्हारी भ्रमणशील प्रकृति को मैं जानता हूँ। तथागत की अमोध कृपा से तुम्हारे सामने आज एक अपूर्व अवसर उपस्थित है। आज ही यह श्रमण–टोली सिंहल द्वीप के महातीर्थ (आधुनिक नाम मतारा) को सद्धर्म के प्रचार निमित्त प्रतिष्ठान होती हुई श्री पर्वत–विहार की आरे जा रही है। वहाँ से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह श्रमण–समूह काञ्ची होता हुआ उरगपुर जायगा। इस प्रकार तुम्हारे सामने समस्त दक्षिणापथ के पर्यटन का अपूर्व साधन तुम्हारे समक्ष हैं'।

उनकी वाणी में अनिर्वचनीय प्रभाव था। रहस्यमयी उत्तेजना थी। मैं अभिभूत की भाँति उद्यत हो गया। मेरा मन उल्लसित हो रहा था। मुझे अनेक नगरों, वन, पर्वतों, विहारों, उदधि–ऊर्मिमालाओं इत्यादि के देखने की बलवती इच्छा ने मानो विवश कर दिया। देशाटन से उत्पन्न होने वाले आनन्दों के वर्णन श्रमणों ने मेरे सामने किये। ऐसे मोहक वर्णन मैंने कभी नहीं सुने थे। घर के प्रति आकर्षण होते हुए भी मेरा पैर घर की ओर उठता ही न था। मैं सोचने लगा 'मुझे हो क्या गया है? मैं क्यों इन सुगतों की बातों को सुनते समय शिथिल इन्द्रिय हो उठता हूँ। मेरी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति क्यों कुण्ठित हो उठती है? क्या मैं किसी उच्चाटन मन्त्र से आवेशित तो नहीं हो पड़ा हूँ, पर सब सोचना–विचारना व्यर्थ हुआ। मुझे अपने विपश्चित सम्भ्रान्त परिवार का परित्याग करते हुए हृदय विदारक कष्ट का अनुभव हुआ, पर मैं तो मानो किसी रहस्मयी शक्ति से आकृष्ट था। खिंचता हुआ उन्हीं भ्रमणों की टोली के साथ चल पड़ा। मैं कभी–कभी इधर भटकता भी था, तो न जाने कहाँ से वह भ्रमण जो सबसे पहले हमारे सामने आया था, निकल आता और मैं उसके पीछे हो लेता। अब जान पड़ता है कि वह मेरी टोह रखने के लिए प्रहरी रूप में नियुक्त किया गया था। मुझे उससे भय होता था, मैं उससे सदैव दूर रहना चाहता था। जिन कार्यों को मैं नहीं भी करना चाहता था, उन्हें वह मुझसे करा लेता था। शनैः–शनैः मुझे अपने पितृव्य वज्रमित्र का ध्यान, स्मरण जाता रहा। अपने घर, पूर्वजों इत्यादि की सभी स्मृतियां विलुप्त हो गईं। मेरा अन्तःकरण विस्मृति, विभ्रम से धूमायित हो उठा। अपने में एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहा है, यह अवश्य प्रतीत होता, पर विवश था। स्वतन्त्र प्रेरक शक्ति विलुप्त हो चुकी थी। मेरी पूर्व स्मृतियाँ जब कभी प्रबल वेग से उद्दीप्त होतीं, मैं व्याकुल हो उठता, विचलित हो उठता, और उन्हीं श्रमणों के बीच जा बैठता। श्री पर्वत–विहार तक पहुँचते–पहुँचते मैं एक मुण्डित–केश वाला श्रमण बन गया था। मेरे रूप में विचित्र परिवर्तन हो गया। मेरे पितृव्य भी यदि मुझे देखते तो मुझे पहचान न पाते। मंजिष्ठ राग का मेरे शरीर पर एक दिन आलेप चढ़ाया गया। इस आलेप में कुछ ऐसे रसायनों का सम्मिश्रण था कि दूसरे ही दिन मेरे स्वाभाविक वर्ण में ईषत् अन्तर परिलक्षित होने लगा। यह अन्तर कुछ काल तक निरन्तर बढ़ता गया। यह श्री–पर्वत–विहार की रासायनिक प्रक्रिया थी जो मेरे वर्ण परिवर्तन कराने में संपूर्ण रूप से सफल हुई। सब से आश्चर्य की बात तो यह थी कि मुझे यह सब स्वयं ठीक जान पड़ा। मैंने इस परिवर्तन की प्रशंसा की। इससे शरीर में तितिक्षाशक्ति का आविर्भाव हुआ। शीत तथा उष्ण दोनों ही से त्वचा को त्राण प्राप्त हुआ। मेरा वर्ण यात्रा की कठोरता, वायु, शीत, तपन, इत्यादि से काला और रुक्ष हो रहा था। वह अब गेहुँआ और स्निग्ध हो गया। उसमें ईषत् मेचकता आ गयी। यह आलेप सुगत भाइयों ने चाहे जिस किसी विचार से किया, पर मेरे लिए उपकारी ही हुआ। मेरी कान्ति अनायास ही निखर पड़ी। मेरे साथी श्रमणों ने मेरी वयुः कांति देख प्रसन्नता प्रकट की।

श्री पर्वत की उपत्यकाओं में भ्रमण करने की मेरी बड़ी इच्छा होती। कृष्णा की वक्रधाराएँ इस प्रान्त को चीरती हुई बहती हैं। यहाँ के वन–भाग तथा नदी के कछारों की बीहड़ता ही मेरे आकर्षण का मूल कारण थी। इस उपत्यका में मैंने अनेक दूर्गम स्थानों में छोटे–छोटे बिहार बने हुए देखे। इन बिहारों की निर्माण शैली कुछ अनोखी थी। रहस्यमयी थी। मैं श्री–पर्वत–विहार में था।

इसके भीतर प्रवेश करना कठिन था। प्रवेश मार्ग केवल एक था। बाहर से यह प्रस्तर निर्मित द्विपुरुषोच्छित् प्रकार से घिरा था। भीतर क्या है कुछ दिखाई ही न पड़ता था। कोठरियों का मुख द्वार बिहार के भीतरी प्राङ्गण में खुलता था। प्रवेश द्वार अत्यन्त ऊँचे भव्य सोपानों को चढ़कर प्राप्त करना पड़ता था। यह प्रवेश–द्वार सुदृढ़ कोठरियों की छत पर बना था। दूसरी ओर भी सोपान बने हुए थे, जिनसे उतर कर विहार के विशाल प्राङ्गढ़ में मनुष्य अपने को पाता था। इस विस्तृत प्राङ्गण के मध्य में एक विशाल पिप्पल वृक्ष था, जिसकी प्रांशु तथा फैली हुई छतनगर भुजाएँ विहार के प्रस्तर–निर्मित प्राङ्गण कुट्टिम पर अपनी घनी छाया पसारती थी। इसकी डालियों पर बैठे अनेक शकुन्त समूह अपने कलरव से बिहार को सदैव मुखरित करते रहते थे। इस विहार के भीतर अनेक गुप्त गर्भ–गृह थे। इनके भीतर भाँति–भाँति की प्रयोग शालाएं बनी थीं। यहीं पर बौद्ध आचार्य संघ के कार्यों को तथा संघ द्वारा संचालित विदेशों में बनायी जाने वाली अनेक कला की कृतियों को सहायता देने के लिए विशिष्ट प्रकार के रासायनिक पदार्थों का निर्माण कराते थे। बौद्ध श्रमणों के अनुसन्धान द्वारा प्राप्त ये रासायनिक पदार्थ का निर्माण कराते थे। बौद्ध श्रमणों के अनुसन्धान द्वारा प्राप्त ये रासायनिक पदार्थ संसार को चकित करते थे। आज भी बौद्ध कृतियों को देख कौन आश्चर्यचकित नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त संघ के लिए यहीं पर प्रभूत रासायनिक स्वर्ण बनाने की क्रिया में अनेक बौद्ध श्रमण लीन रहा करते थे। जनता में उनकी इन रासायनिक क्रियाओं के प्रति अपार श्रद्धा थी। किन्तु इस प्रक्रिया का ज्ञान सब को सुलभ न था। इसी कारण संघ के प्रति साधारण जनता तथा अभिजात वर्ग, दोनों ही में अनादर का भाव था। यहाँ पर तान्त्रिक प्रयोग भी चलते थे। बिहार के प्रवेश–द्वार पर प्रत्येक प्रहर एक भीमकाय श्रमण प्रहरी के रूप में बैठा रहा करता था।

यह विहार सहयाद्रि पर्वतमाला के एक विस्तृत और समतल खण्डगिरि की चोटी पर बनाया गया था। इस खण्डगिरि के पार्श्वों के प्रान्त आकाश में सीधे खड़े थे। ढालुआपन तो किसी स्थान में था ही नहीं। प्रवेशद्वार तक पहुँचने के लिए चट्टानें काट कर सीढ़ियाँ बनायी गयी थी। खंडगिरि की लम्बवत् ऊँचाई से मिलाकर विहार की सुदृढ़ समुन्नत प्राकार की दीवारें आकाश का भेदन करती थीं। विहार क्या था, मानो एक अभेद्य दुर्ग था। यह सभी प्रकार के बाह्य आक्रमणों को निरर्थक कर देने वाला सुदृढ़ बौद्ध सामरिक सन्निवेश था। गर्भ–गृहों में प्रवेश के लिए इसमें अनेक विलक्षण गुप्त मार्ग थे।

यहाँ भिक्षुओं की दिनचर्या कठोर थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्येक कार्य की व्यवस्था थी और समय नियत था। विकृताङ्ग, रोगी, मेघाहीन, आलसी अथवा पेटू व्यक्ति भिक्षु नहीं बन सकता था।

इस विहार का प्रत्येक भाग क्रियाशीलता का मानो प्रतीक था। विविध शास्त्रों की शिक्षा के अतिरिक्त विविध कलाओं की शिक्षा का भी यह केन्द्र था। विशेषकर मूर्ति तक्षण–कला तो यहाँ पराकाष्ठा प्राप्त कर चुकी थी। तन्त्र, ज्योतिष तथा रसायन शास्त्र की दिशा में इस विहार के भिक्षुओं, द्वारा अनेक नूतन मार्ग दर्शन उपस्थिति हो चुके थे। विहार के लिए खाद्यान्न, फल, घी, दूध, मक्खन इत्यादि खाद्य वस्तुएँ प्रतिदिन श्रमणों द्वारा ग्रामों से लायी जाती थीं। इसके अतिरिक्त विहार के भीतर शाकादि उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त भूमि थी। कृषि योग्य इस भूमि को भिक्षुओं ने अथक परिश्रम द्वारा तैयार किया होगा। इस भूमि से प्रचुर परिमाण में फल–फूल और शक परिश्रमी भिक्षु उत्पन्न कर लेते थे। विहार की प्राङ्गण–भूमि में तीन स्थानों पर प्राकृतिक जलस्रोत थे। इनसे प्रभूत मात्रा में जल प्राप्त था। इसके अतिरिक्त एक अति स्वच्छ जल वाली दीर्घिका विहार के पृष्ठ प्राकार को स्पर्श करती हुई निर्मित थी। भिक्षुवर्ग इसे अतलस्पर्शी कहा करते थे। यह नील, श्वेत तथा रक्त कमलों से भरी थी। इसके किनारे रमणीय वृक्षों से सुशोभित थे। इस विहार के निर्माण में मानो प्रकृति ने स्वयं मनुष्यों को सहायता दी थी। जहाँ विहार के चारों ओर की गव्यूति पर्यन्त भूमि जलस्रोत विहीना थी, वहीं इस विहार के भीतर जल का बाहुल्य था। यह एक अति विलक्षण घटना थी। ऐसा प्रतीत होता है, इन बौद्ध तान्त्रिकों को जल–भेदन–क्रिया की सिद्धि थी। इसी कारण वे इस निर्जल स्थान में भी जलस्रोत उत्पन्न कर पाये थे। बिहार के चारों ओर गहन कटीले झाड़ों की अरण्यानी किन्तु विहार के भीतर नंदन कानन की समृद्धि थी। स्थान-स्थान पर औषधियों की वनस्पतियाँ अपनी हरीतिमा से विहार को सुशोभित कर रही थीं।

मेरे वर्ण परिवर्तन से बौद्ध श्रमण सन्तुष्ट हुए। मेरी गतिविधि जिसकी एक प्रकार से कड़ी देखरेख रखी जाती थी, उसमें कुछ शिथिलता जान पड़ने लगी। वह मेरा प्रहरी स्वरूप बौद्ध श्रमण भी विलीन हो गया था। अब तो मैं स्वयं ही सभी श्रमण-आचार्यों की आज्ञापालन करने में अपने को धन्य समझता था। उनकी इंगिति पर मानो नृत्य करता था। ऐसा जान पड़ता है कि विशेषज्ञ श्रमणों ने यहाँ पर मेरी अनेक प्रकार से परीक्षा ली। मेरी प्रवृत्तियों और विशिष्टताओं का विश्लेषण किया। उन्होंने देखा कि मेरी अभिरुचि साहित्य तथा कला की ओर है। उसके पैनेपन तथा सारग्राहिणी शक्ति की उन्होंने भूरि–भूरि प्रशंसा की। यहाँ पर इन आचार्य–श्रमण की दीक्षा और उनसे शिक्षा प्राप्त कर मुझे एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव हुआ। अलंकार, छन्द, मूर्ति कला, चित्रकला के तो यहाँ तीर्थ और निष्णत आचार्य उपस्थित थे। मेरी कुशाग्र बुद्धि, अद्भुत स्मरण शक्ति, रचना नैपुण्य से वे अवाक् थे। विनय, सदाचार, नियम–पालन, अनुशासन से मैं सभी का स्नेह–भाजन अनायास ही हो गया।

प्रत्येक श्रमण–आचार्य मुझे अपनी कला प्रदान करने में गौरव का अनुभव करता था।

यहाँ मुझे रासायनिक प्रक्रियाओं में लीन बौद्ध श्रमणों को देखने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु उन तक पहुँचना वर्जित था। गर्भगृहों में प्रवेश करने के लिए विशेष नियम थे। मुझे इनमें प्रवेश पाना असम्भव–सा प्रतीत होने लगा था। मेरी उत्सुकता और बढ़ती जाती थी। मैं रात दिन इनके भीतर प्रविष्ट श्रमणों को अनवरत परिश्रम से काम करते देखता। अहोरात्रि धृत के बड़े–बड़े प्रदीप इनमें जला करते थे। रासायनिक प्रक्रियाओं से कभी–कभी रात्रि में विचित्र प्रकार की गन्ध इन गर्भ–गृहों से समुत्थित होकर समस्त विहार की वायु को दूषित कर देती। पर शीघ्र ही वह गन्ध उस अरण्यानी में विलीन भी हो जाती। मैं इन रहस्यमयी क्रियाओं का दर्शक बनना चाहता था।

एक दिन सन्ध्या समय तथागत की उपासना के उपरान्त मैं विहार के सबसे ऊँचे हर्म्यश्रृंग पर खड़ा हो सुदूर प्रान्तों में बिखरी अरण्यानी की शोभा धवल चन्द्रिका के आलोक में निरख रहा था। क्षितिज के सन्धिस्थल पर मैंने कतिपय सामनेरों को खड़े हुए थे देखा। आशा करता था कि ये श्रमण सामान्य लोगों के समान प्रवेश द्वार पर ही आवेंगे। पर वैसा न हुआ। उनकी संख्या धीरे–धीरे कम होने लगी और वे सब सहसा विलीन होने लगे। उन्हें विलीन होते देख मैं कौतूहल से भर उठा। उस स्थान तक पहुँचने की बड़ी इच्छा हुई। इस समय मेरे साथ कोई श्रमण भी न था। मैं अपनी उत्सुकता को संयमित न कर सका। नीचे आकर प्रधान द्वार की ओर बढ़ा। संयोग से वहाँ भी सन्नाटा था। सोपानों से नीचे उतर झाड़ों की गहन अरण्यानी को चीरता हुआ वेग से उस स्थान की ओर बढ़ा। अभी भी वहाँ एक भिक्षु खड़ा था। कण्टकाकीर्ण मार्ग होने के कारण यद्यपि पैर काँटों से बिध गये पर उस भिक्षु के समीप तक पहुँच गया, एक टीले के समीप यह भिक्षु खड़ा था, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। कुछ ही क्षणोपरान्त वहाँ एक और भिक्षु उपस्थिति हो गया और वे दोनों पुनः पास के ग्रामों की ओर चले गये। मैं निश्चिंत हो उस स्थान पर पहुँचा और मैंने उसकी परीक्षा की, पर कुछ विदित न हो सका। मैं हताश हो रहा था कि मेरे पैर से कोई लौह श्रृंखला उलझ गयी। अपने उलझे पैर को ऊपर उठा कर मैंने खींचा तो उसी के साथ एक छोटा शिला–शकल ऊपर की ओर की ओर उठ पड़ा और उसके नीचे एक भूविवर स्पष्ट परिलक्षित होने लगा जिसमें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं। श्रृंखलायुक्त शिला–शकल को विवर के समीप छोड़ मैं निःशंक नीचे उतर पड़ा। कुछ सीढ़ियों के उतरने उपरान्त पुनः शिला–शकल अपने स्थान पर आ लगा और वह गुप्त–प्रवेश विवर अन्धकार से भर उठा। मैं विकल हो ऊपर की ओर पुनः चला तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि विवर द्वार से शिलाशकल अपने आप अलग हो गया और बाहर निकल जाने के लिए मार्ग प्रशस्त था। चतुर शिल्पी ने सोपानों के निर्माण करने ही मे विवर द्वार के खुलने और बन्द होने की व्यवस्था कर रखी है, यह समझ मैं बिना किसी आशंका के नीचे उतरने लगा, कितना नीचे उतरना पड़ा उसका कुछ अनुमान न कर सका, पर प्रायः एक घड़ी पर्यन्त नीचे उतरता ही गया। सीढ़ियाँ समाप्त हुई। आगे बढ़ने के लिए भू–गर्भ–मार्ग मिला। मैं अग्रसर हुआ, कुछ ही दूर चल पाया था कि क्षीण प्रकाश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रेखा दिखाई पड़ी। मैं सतर्क हो उठा। जिन भू–गर्भ गृहों को देखना चाहता था अब उनके बीच था।

यहाँ अनेक भट्ठियाँ बनी हुई थीं, जो उद्दीप्त थीं। उन पर विभिन्न प्रकार के क्वाथ तैयार किये जा रहे थे। भाग्यवश इस समय यहाँ प्रयोगशालाओ में भिक्षु न थे। भाँति–भाँति की धातुएँ, विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, सूखी जड़ी और पत्तियाँ मटकों में भरी पड़ी थीं। यह जानना कठिन था कि कहाँ पर क्या तैयार किया जा रहा है। किसी भू–गृह से ऐसी दुर्गन्धि निकल रही थी कि वहाँ खड़ा रहना कठिन था। रंगों के चूर्ण प्रस्तर कुट्टिमों पर पड़े हुए थे। प्रस्तर निर्मित बड़े–बड़े टाकों में अनेक प्रकार के द्रव भरे पड़े थे। सम्भवतः ये विविध प्रकार के लेप थे जिनसे बौद्ध शिल्पी मूर्तियों को अवलिप्त कर उनमें जान फूँक देते थे। अगणित ताम्रकलशों में औषधियाँ डुबो कर रखी गयी थीं। लौह, कास्य–शकलों के पत्तरों से कोठरियाँ भरी पड़ी थीं। इन प्रयोगशालाओं में घूमते–घूमते श्वास बन्द होने लगी, कहीं–कहीं तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं मूर्छित हो गिर पड़ूँगा। पर मेरी कौतूहली प्रवृत्ति शान्त न होती थी। मैं घूमता ही रहना चाहता था। धृत–प्रदीपों के धुएं से दीवारें काली पड़ गयी थीं। दीपों की लौ रह–रहकर हिल जाती थीं जिससे स्पष्ट था कि इन भू–गृहों में विशुद्ध वायु को प्रवेशित करने का सुन्दर विधान किसी न किसी प्रकार अवश्य किया गया है। एक स्थान पर अति स्निग्ध गीली मिट्टी के लोंदे रखे हुए थे। इन्हीं से श्रमणों को भित्तियों पर चित्र निर्माण करते मैंने देखा था। चित्र निर्माण की यह कला विस्मय विमुग्धकारी थी। इनको ही भित्तियों पर जमा कर चित्र बनाये जाते थे। सूख जाने पर यह निर्णय करना कठिन हो जाता कि यह तूलिका द्वारा निर्मित चित्र हैं या साधारण मिट्टी ही भित्त पर जमा दी गयी है। विभिन्न रंग वाली ये गीली मृत्तिकाएँ किन विधियों से तैयार की जाती थीं यह एक अति गुप्त बौद्ध शिल्प–कला का रहस्य था। बहुत से स्थानों पर मनः शिला, राजावर्त, हिंगुल, हरिताल, आदि के चूर्ण रखे हुए थे। बीसियों प्रकार के अलक्तक काँच निर्मित पात्रों में भरे पड़े थे। इन्हीं का प्रयोग सुन्दरियों के मुखों पर पत्रभंग रचना करने में हुआ करता था। काँची के एक मंदिर में मैंने अर्ध नारीश्वर की मूर्ति मनःशिला तथा राजावर्त चूर्ण की रचित देखी। चतुर शिल्पी इसी मनःशिला में कुछ और चूर्ण मिलाते थे, जिससे मनःशिला की आभा और दमक उठती थी। प्रकाश की किरणों के पड़ने पर यह आभा और भी चमकीली ही नहीं हो जाती थीं वरन् इसमें रुक–रुक कर कान्ति मान हो उठने की विचित्र शक्ति उत्पन्न हो जाती थी जिससे दर्शक गणों को ऐसी प्रतीत होने लगती थी कि मानो प्रतिमा सजीव है।

पूर्णिमा का दिन था। प्रत्येक पूर्णिमा को विहार में धर्मादेशना होती थी। उसमें प्रत्येक भिक्षु भाग लेता था। इसीलिए सभी गर्भ–गृह शून्य थे। प्रयोग शालाओं के भिक्षु यत्र–तत्र हो रहे थे। दुर्गन्धि के कारण और अवरुद्ध वायु की ऊष्मा से मेरा शिर चकरा रहा था। मैं गुप्त द्वार से बाहर निकल जाना चाहता था। अरण्यानी की उन्मुक्त वायु के लिए मन लालायित हो चुका था कि मुझे किसी के करुण रुदन की ध्वनि सुनायी पड़ी। मैं सिहर उठा। उस स्वर में वेदना थी। व्यथा थी कष्ट भरा हुआ था। चुम्बक की ओर जैसे अयः शकल खिंचता है, उसी प्रकार, उस ओर मैं खिंच पड़ा। मैं जानता था कि स्थान निरापद नहीं है। किसी भी क्षण मैं पकड़ा जा सकता हूँ और पकड़े जाने पर भयानक प्रतिशोध का पात्र बन जाऊँगा, पर मैं अपनी उद्दाम प्रवृत्ति से विवश था। आर्तनाद होने वाली दिशा में तीव्रता से अग्रसर हुआ। इस ओर दुर्गन्धि भी कम थी और गर्भ–गृह भी साफ सुथरे थे। हो सकता है इन गर्भ–गृहों में भिक्षु कार्यावकाश के अवसरों पर विश्राम करते हों। इस ओर वायु के शीतल झोंके भी रह–रहकर आ जाया करते थे। मैं रुदन ध्वनि का शोध कर ही रहा था कि एक सुदृढ़ अर्गला द्वारा बन्द कपाट युक्त गर्भ–गृह सामने आया। इसी में से रुदन–ध्वनि निकल रही थी। मैंने कपाट अनावृत किया। भीतर जो करुण दृश्य देखा उससे ही रोमाञ्च हो उठा। कमनीय बालिका को अंक में लिए एक युवती बैठी थी। इसी के कोमल कंठ से निकलने वाली ध्वनि ने हृदय को द्रवित और उद्वेलित कर दिया था। उस युवती के अनिन्द्य सौन्दर्य को मैं विस्फरित नेत्रों से देखता रह गया। मेरे जैसे किशोरावस्था वाले भिक्षु को देख वह सहम उठी। उसे यह न समझ पड़ा कि उसके समक्ष उसका त्राण कर्त्ता खड़ा है या उसकी विपत्ति को बढ़ाने वाला खड़ा है। वह संत्रस्त–सी, कातर सी, स्तब्ध–सी, किंकर्तव्य विमूढ़–सी खड़ी हो गयी। भयभीत वन मृगी के समान उसकी अवस्था देख मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा। मैंने उससे कहा– "शुभे तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई? मुझसे सशंक होने की आवश्यकता नहीं। अपनी बात कहो। किसने तुम्हें यहाँ बन्दी किया है? आप कौन हैं? मेरी ओर अपलक नयनों से देखती हुई विस्मय भरे शब्दों में उसने कहा, "हे पुण्यलक्षण आप की आश्वासन युक्त वाणी ने मुझे पुनरुज्जीवित कर दिया। मुझ हत भागिनी की कथा लम्बी है। आप जैसे किशोर कुमार को उसे कैसे सुनाऊँ। आप मेरे देवदूत हो, इस भयानक स्थान से मेरी मुक्ति हो सकती हो तो कीजिये। मेरी प्रथम विनती यही है। इतना सुन, स्थान की विभीषिका तथा उसकी आपान्न वस्था का विचार कर उसे मैंने तुरन्त अपने पीछे आने के लिए संकेत किया। शीघ्रतापूर्वक गुप्त–प्रवेश द्वार की ओर बढ़ा। मार्ग में उस किशोर बालिका को लिये हुये चलने में, वह युवती पदे–पदे स्खलित होने लगी। मैंने उस किशोरी को सहारा दे अपने साथ कर लिया। भयभीत शावक मृगी के समान वह किशोरी मेरे साथ चलने लगी। एक क्षण के लिए उसके कर स्पर्श से मेरा गात्र स्पन्दित हो उठा। शीघ्रता से हम लोग उस सूची–अभेद्य अन्धकार में आगे बढ़ रहे थे। हमारे पैर भी ठीक–ठीक पड़ रहे थे। मनुष्य की आत्मरक्षण प्रवृत्ति ही हमसे अनायास यह सब करा रही थी। उस किशोरी को लिये हुए मैं युवती सहित गुप्त विवर द्वार से बाहर जब निकला तो चन्द्रदेव खमध्य रेखा पर विराजमान थे। मुझे विश्वास ही न होता था कि मैं किसी अति भयावह स्थान से त्राण पा सका हूँ। सिंह की गुहा में से मैं निरापद निकल आया था। शीतल वायु के स्पर्श से, उन्मुक्त आकाश के दर्शन से, युवती तथा उस किशोरी बाला को नवीन जीवन प्राप्त हुआ। सद्यः उस द्वार से दूर एक लता–गुल्म के घने आवरण बीच हम लोग बैठ गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मैंने उस युवती को अपनी परिस्थिति बतायी और कहा कि अधिक विलम्ब होने से भिक्षु वर्ग मेरी खोज करेगा। मेरी असहायावस्था को उस मेधाविनी युवती ने तुरन्त समझ लिया और वह अति संयत स्वर से बोली "कल्याण कारिन् आपकी मैं कितनी कृतज्ञ हूँ, इसको किन शब्दों में कहूँ। मुझे विश्वास है कि जिस जगन्नियंता ने मुझे मुक्ति प्रदान करायी है, वही मुझे आगे का भी मार्ग प्रदर्शित करेगा।

आप जायँ, यह कैसे कहूँ, इन कतिपय क्षणों के ही सहवास से आप जन्म–जन्मान्तर के लिए अपने हो गये हैं।" इतना कहते–कहते उसकी आँखों से अविरल अश्रुधार वह पड़ी। मेरा हृदय करुण भावों से आर्द्र हो विगलित हो रहा था। मैंने अपने को सँभाला। उसे किसी निरापद स्थान तक पहुँचाने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु उसने मेरे प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। उसकी खोज तो दूसरे दिन, व तीसरे दिन श्रमण लोग कर सकते हैं, पर मेरी खोज तो तत्क्षण ही हो सकती है, इसलिए उसके साथ मेरा होना निरापद न था। इस विचार ने मुझे विहार की ओर जाने को बाध्य किया।

चलते समय उसकी अकृतम कृतज्ञता ने उसके धैर्य का बाँध तोड़ दिया। वह फूट–फूट कर रोने लगी। उसके हृदय का स्नेह–सागर मानो उमड़ पड़ा। उसने अति करुण स्वर से कहा, "हे परोपकारिन् यदि जीवन में कभी आप उरगपुर आवें तो, अपनी परायदासी रजनिका को अवश्य स्मरण कीजियेगा। मैं आचार्य गणदास की नृत्य शाला की नर्तकी हूँ। आज आप जैसे महानुभाव के संसर्ग से मेरा जीवन धन्य हुआ। इतना कह उसने मेरे समक्ष अपनी भगिनी उस किशोरिका को खड़ा किया। उस किशोरी ने अपनी बड़ी–बड़ी रतनार आँखों से मेरी ओर देखा। उसकी आँखें निश्चल थीं। पर उनसे कृतज्ञता की की आभा फूटी पड़ती थी। उन आँखों की बाल सुलभ स्निग्धता से मैं मुग्ध हो आत्म–विस्मृत–सा हो उठा। उसने मुझे जानुपात–प्रणाम किया। इन दो असहायों की दयनीय स्थिति देख मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा। पर अपनी उपस्थिति से ही मैं उनके विनाश का कारण बन सकता हूँ, ऐसा विचार कर मैं एक आविष्ट की भाँति उस स्थान से विहार की ओर द्रुत गति से चल पड़ा।

इस समय प्रायः अर्धरात्रि से भी अधिक बेला विगलित हो चुकी थी। विहार के प्रांगण में स्फुट चन्द्रिका के आलोक में सैकड़ों धृत–प्रदीपों के प्रकाश फीके पड़ रहे थे। फिर भी उनका स्निग्ध प्रकाश महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्म के मुख को उद्भासित कर रहा था।

धर्मदेशना अत्यन्त शान्त स्वरों में चल रही थी। उनकी वाणी में अन्तःकरण के कलुष को प्रक्षालित करने की शक्ति थी। अद्भुत धर्मादेशना थी। आशंकाओं के उठने के मार्ग ही अवरुद्ध थे। सरल भाषा में, गहन से गहन विषयों की उपस्थापना करना उनकी प्रणाली थी। उनके मुख पर आश्चर्यजनक कान्ति विराजमान थी। उनकी अवस्था यद्यपि इस समय शतवर्षोपरि हो रही थी। शान्त, परिष्कृत, निर्मल वाणी विहार के प्रांगण के कोने–कोने में प्रविष्ट हो प्रत्येक भिक्षु के कर्णकुहरों को पवित्र कर रही थी उनके दर्शनमात्र से सारी भव–बाधाएँ दूर हो जाती थीं। कितने महीने बीत जाने के उपरान्त उनका दर्शन हुआ था। उनकी भाषण–शैली, उनकी तर्क–शक्ति, उनकी तपस्या, उनकी साधना पर विचार कर मेरा मन विस्मय से भर उठा। आश्चर्य हुआ कि विहार में कहाँ एक ओर इस प्रकार की कलुषहारिणी धर्मादेशना, मानवमात्र में शान्ति स्थापना की ऐसी अमोध संप्रेरणा और दूसरी ओर विहार के भू–गृहों में ऐसी क्रूर पैशाचिक, दानवी लीला।

मन भ्रमित हो उठा। हृदय की गति अवरुद्ध होने लगी। मैं भिक्षुओं की पंक्ति में एक प्रसुप्त व्यक्ति आँखों को मींच बैठ गया। भिक्षुओं को मेरी अनुपस्थिति का कुछ भी भान न हुआ। उन्होंने मुझे प्रसुप्त मान मुझे शयन–कक्ष तक पहुँचा दिया।●

"यहाँ अनेक भट्ठियाँ बनी हुई थीं, जो उद्दीप्त थीं। उन पर विभिन्न प्रकार के क्वाथ तैयार किये जा रहे थे। भाग्यवश इस समय यहाँ प्रयोगशालाओ में भिक्षु न थे। भाँति–भाँति की धातुएँ, विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, सूखी जड़ी और पत्तियाँ मटकों में भरी पड़ी थीं। यह जानना कठिन था कि कहाँ पर क्या तैयार किया जा रहा है। किसी भू–गृह से ऐसी दुर्गन्धि निकल रही थी कि वहाँ खड़ा रहना कठिन था। रंगों के चूर्ण प्रस्तर कुट्टिमों पर पड़े हुए थे। प्रस्तर निर्मित बड़े–बड़े टाकों में अनेक प्रकार के द्रव भरे पड़े थे। सम्भवतः ये विविध प्रकार के लेप थे जिनसे बौद्ध शिल्पी मूर्तियों को अवलिप्त कर उनमें जान फूँक देते थे। अगणित ताम्रकलशों में औषधियाँ डुबो कर रखी गयी थीं। लौह, कास्य–शकलों के पत्तरों से कोठरियाँ भरी पड़ी थीं। इन प्रयोगशालाओं में घूमते–घूमते श्वास बन्द होने लगी, कहीं–कहीं तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं मूर्छित हो गिर पड़ूँगा। पर मेरी कौतूहली प्रवृत्ति शान्त न होती थी। मैं घूमता ही रहना चाहता था। धृत–प्रदीपों के धुएं से दीवारें काली पड़ गयी थीं। दीपों की लौ रह–रहकर हिल जाती थीं जिससे स्पष्ट था कि इन भू–गृहों में विशुद्ध वायु को प्रवेशित करने का सुन्दर विधान किसी न किसी प्रकार अवश्य किया गया है। एक स्थान पर अति स्निग्ध गीली मिट्टी के लोंदे रखे हुए थे। इन्हीं से श्रमणों को भित्तियों पर चित्र निर्माण करते मैंने देखा था। चित्र निर्माण की यह कला विस्मय विमुग्धकारी थी। इनको ही भित्तियों पर जमा कर चित्र बनाये जाते थे। सूख जाने पर यह निर्णय करना कठिन हो जाता कि यह तूलिका द्वारा निर्मित चित्र हैं या साधारण मिट्टी ही भित्त पर जमा दी गयी है। विभिन्न रंग वाली ये गीली मृत्तिकाएँ किन विधियों से तैयार की जाती थीं यह एक अति गुप्त बौद्ध शिल्प–कला का रहस्य था।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेघदूत के दुर्लभ चित्र

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

किसी महाकवि की रचनाओं को पढ़ते हुए जहाँ हम और–और बातों पर विचार करते हैं, वहाँ यह भी सोचते हैं कि इस महाकवि ने अपने काव्य में कैसे–कैसे चित्र उपस्थित किये हैं। ये चित्र कल्पना के चटकदार रंगों के होते हैं और अपने पाठकों को उस स्वप्नलोक में ले जाते हैं जहाँ केवल आनन्द का ही साम्राज्य होता है।

अपने विषय को स्पष्ट करने के लिये हमें एक दो दूसरे महाकवियों के चित्रों की ओर ध्यान देना होगा। हम महाकवि कालिदास के विषय में लिखने जा रहे हैं; अतएव हिन्दी के कवियों को उदाहरण रूप में स्वीकार करना उचित न होगा। हम सबसे पहले आदिकवि के कुछ चित्र आपके सम्मुख उपस्थित करके अपने विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। भारतीय वाङ्मय–इतिहास में आदि कवि का वही स्थान है, जो स्थान जीवन में प्राणों का। रामायण एक से एक सुन्दर चित्रों का चित्राधार है। पर सब कुछ मिलाकर हम अपने को एक ऐसे भावुकताशून्य कर्मभूमि में–रामायण के अध्ययन के बाद–पहुँचा देते हैं, जहाँ केवल कठोर साधना है और चरम गम्भीर वातावरण में वह साधना सम्पन्न की जाती है। होम–धूम–धूसर वृक्षों के नीचे कुशासनों पर बैठे हुए तपःपूत ऋषियों से भरे हुए शान्त, पापरहित वनों के अनगिनत चित्र हमारी आँखों के सामने उपस्थित या प्रस्फुटित हो जाते हैं। न आनन्द और न विषाद, न उमंग और न काहिली–बस, एक ऐसे लोक का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है जिस लोक में केवल चरम गम्भीर शान्ति हो और उस लोक के श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, सीतादेवी भी पूर्ण शान्ति की बनी सजीव मूर्तियाँ हों। ये मूर्तियाँ विविध कर्म करती हों, पर इनके कर्मों से न तो उद्वेग लक्षित हो और न चंचलता–कर्तव्य की प्रबल प्रेरणा से, बिना किसी प्रकार की आकांक्षा के इन मूर्तियों के सारे काम हो रहे हैं। आदिकवि ने अपने महाकाव्य में भावनाओं में हलचल पैदा करने वाले एक भी चित्र को स्थान नहीं दिया। हम आदिकवि के चित्रों को उषा की कोमल हल्की विभा में, पूर्ण शान्ति से सराबोर, हल्के पर गम्भीर रंगों से रँगे हुए देखते हैं। सम्भवतः आदि कवि ने अपने युग के प्रधान भावों को ही रामायण के चित्रों के रूप में उपस्थित किया हो या अपनी कल्पना के जोर से कल्पना–संयत् एक ऐसे युग के चित्र उपस्थित करने का उन्होंने प्रयत्न किया हो, जिस युग को वे लाना चाहते हों। आदिकवि एक ऋषि होने के कारण केवल कवि नहीं रह सके–दूसरे लोकोपकारी कार्यों में लगे रहने वाले ऋषियों की तरह रामायण में भी उन्होंने उपदेश और लोकोन्नतिपूर्ण आदर्शों को स्थान दिया है। यह विषय मेरा आलोच्य नहीं है–पाठक क्षमा करें।

(2)

'कादम्बरी' के चित्रों की ओर हम विशेष आकर्षित होते हैं। उसके कवि बाणभट्ट ने अनुपम चित्रों को हमारे मानस–नेत्रों के सम्मुख बहुत ही कुशलता से उपस्थित किया है–'वाण' के चित्रों के साथ ही हम मेघदूत के चित्रों को रख सकते हैं। हम पहले 'कादम्बरी' पर दो शब्द कहना चाहते हैं।

हरी–भरी स्थूल पृथ्वी से लेकर शशि–संभवाविभा–विनिर्मित स्वर्गलोक तक कादम्बरी के चित्र बिखरे हुए हैं। महाश्वेता के रूप को ही लीजिये–महाश्वेता हाड़–माँस की बनी ठोस नारी मूर्ति–सी नहीं जान पड़ती–ऐसा लगता है कि स्वर्गीय विभा को एकत्र करके 'वाण' ने महाश्वेता का निर्माण किया है–वह पृथ्वी पर की नारी नहीं, कल्पना संभूत स्वर्ग की एक ज्योत्स्ना–विनिर्मित प्रतिमा है। एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा–हमें तो ऐसा बोध होता है कि कादम्बरी के सारे दृश्य स्वप्नों के हों याने स्वप्नलोक में ही कादम्बरी की समस्त घटनाएँ घटित हुई हों। कादम्बरी के चित्रों में हम एक आनन्ददायक आलस्य, या यों कहें कि आलस्य विजड़ित भाव अनुभव करते हैं। ये हैं कादम्बरी के अतः चित्र, जो हमें उस लोक में ले जाते हैं, जिस लोक को स्वप्नलोक कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

अब हम 'मेघदूत' के चित्रों पर विचार करते हैं। मेघदूत का साहित्यिक मूल्यांकन हमारा उद्देश्य नहीं है। मेघदूत का प्रथम श्लोक पढ़ते ही हमारा साथ इस पापतापमय संसार से छूट जाता है और हमारी मानस–आँखों के सामने जनकतनया स्नान पुणयोदक वाली सरसी हिलोरें लेने लगती है। उसके बाद हम विरह–विदग्ध यक्ष को रामगिरि की हरी–भरी चोटी पर स्निग्ध छाया में देखते हैं, जो स्फटिक की शिला पर बैठा है। कथा की यह पृष्ठभूमि ही हमें अचानक कल्पना–लोक की रंगीनियों में सराबोर कर देती है। इसके बाद हम प्रथम आषाढ़ के श्यामल मेघों को रामगिरि से टकराते हुए देखने लग जाते हैं। नीचे दूर–दूर तक फैला हुआ शांत और हरा–भरा वन, ऊपर गगनस्पर्शी रामगिरि और वर्ष के प्रथमागम–स्वरूप चारों ओर से उमड़ने वाले घनश्याम। यह एक पूर्ण चित्र हमारी आँखों के सामने अपनी पूरी महिमा और लुनाई के साथ स्पष्ट हो जाता है। इसके बाद हम दूसरा पृष्ठ उलटकर दूसरे चित्र को देखना आरंभ कर देते हैं। यक्ष ने अपने वर्णन में जिन–जिन नगरों, पर्वतों और नदियों के लुभावने चित्रों को स्पष्ट किया है, उनकी चर्चा हम नहीं करेंगे। पर इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि जिस युग या संस्कृति की कल्पना कालिदास ने की है, वह युग या संस्कृति भले ही कवि–कल्पना संभूत हो, पर है अत्यंत लुभावनी! हमारा हृदय छटपटा उठता है मेघदूत के युग में पहुँचने के लिये; क्योंकि वह नीरव आनंद–पूर्ण स्वप्नलोक का युग है जिसमें रोग, शोक, चिंता, अभाव कुछ भी नहीं है–है केवल पतझड़ वाला आलस्य और चिर वसंत की मादक मधुरिमा !

ज्यों–ज्यों हम 'मेघदूत' के साथ आगे बढ़ते हैं, हमारे सामने एक–से–एक दिव्य चित्र स्पष्ट होते जाते हैं और उस समय हम आत्मविस्मृत हो जाते हैं, जब हम अलकापुरी के उस उपवन में पहुँच जाते हैं, जहाँ विरह–विधुरा यक्षप्रिया अपने कंकणों की ध्वनि पर मयूर को नचा रही है। सारा का सारा वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्नलोक का है, जहाँ न दिन है और न रात–सदा चाँदनी निखरी रहती है–"वाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चंद्रिका धौतहर्म्या।" पेड़–पत्ते सभी उसी कोमल चाँदनी के बने हैं और चारों ओर हिमाच्छादित हिमालय की रहस्यपूर्ण चोटियाँ चाँदनी में सराबोर। कहीं शब्द नहीं है, किसी में भी भार नहीं है, जरा, मृत्यु कुछ भी नहीं है, है केवल कालिदास की यक्षप्रिया और उसके कंकण की ताल पर थिरकनेवाला भाव–विह्वल मयूर!

तालैः शिंजावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया में
यामध्यारते दिवसविगमें नीलकंठः सुहृद्वः।।

(3)

कवि अपनी रस–विह्वलता को भाँति–भाँति के चित्रों में सँजोकर अपने काव्य में जड़ देता है। देखना तो यह है कि कवि केवल अपनी कल्पनाओं के प्रति ही जिम्मेदार है या वह जो कुछ कल्पना करता है, उसका विवेचन करना हमारे लिये भी आवश्यक है। हम तो 'अनुपात' और 'प्रकार' दोनों पर ही विचार करते हैं। एक ने अनुपात में हमें एक मन अन्न दिया पर प्रकार में वह अन्न गला सड़ा तथा अखाद्य है। इसलिये हम 'प्रकार' पर ही दृष्टिपात करना उपयुक्त समझते हैं। यों तो प्रत्येक कवि अपने काव्य में चित्रों का अलबम रख देता है, वह ऐसा ही प्रयत्न करता है पर, उन चित्रों की जाँच–पड़ताल अलग–अलग कर लेने के बाद हम समस्त को मिलाकर देखना पसंद करते हैं। मेघदूत भी भिन्न–भिन्न चित्रों का चित्राधार है पर सभी चित्रों को एक में मिलाकर जब हम देखते हैं, तो हमें ऐसा लगता है कि हम एक ऐसे लोक में पहुँच गये जिसकी कल्पना भी इतर जन के लिये असंभव है।

कालिदास को उनके आलोचक 'हिमालय के कवि' कहते हैं। उनके प्रत्येक काव्य में हिमालय आया है, यहाँ तक कि शकुन्तला में भी हिमालय आ ही गया। चिर रहस्यपूर्ण देवतात्मा नगाधिराज के सौन्दर्य को कालिदास ने जिस मनोहरता के साथ अपने चित्रों में स्थान दिया है, उसका वर्णन करना यद्यपि इस समय हमारा उद्देश्य नहीं है पर अलका नगरी को हिमालय की गोद में बसाकर कवि ने भावुकता में चार चाँद लगा दिये हैं। पढ़ते–पढ़ते हठात् अलका का जो चित्र आँखों के सामने झिलमिलाने लगता है वह हमारी भाव–विह्वलता में हलचल पैदा कर देता है। कैलास के निकट बसी हुई अलका नगरी, हिमालय की शान्त, प्रभामयी गोद में सुन्दर स्फटिक भवनों वाली अलकापुरी का जो चित्र सामने आता है वह स्थूल ईंट–पत्थरों के बने हुए ऊँचे–ऊँचे मकानों के समूह का चित्र नहीं है। इन्द्रधनुष के बने फाटकों वाली इमारतें जिस नगरी में हों वह स्वप्नपुरी है, न कि स्थूल, भारी जनाकीर्ण और कलकत्ते की चौरंगी–जैसी कोलाहलपूर्ण।

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्टा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्

कैलाश के ही निकट, उसकी प्रियतमा की तरह अलका नगरी की कल्पना कालिदास ने की है और कैलाश की छाया में हिमधवल, स्फटिक–निर्मित अलका नगरी का जो चित्र हमारे सामने स्पष्ट होता है वह मन को ललचा देनेवाला है।

हम एक–एक चित्र का अलग–अलग विश्लेषण करना नहीं चाहेंगे। कालिदास का मेघदूत पृथ्वी पर आरंभ होता है पर दूसरे ही क्षण वह अपने पाठक को पृथ्वी से ऊपर उठा देता है और क्रम–क्रम से पाठक ऊपर उठता हुआ कैलाश के शिखर पर पहुँच जाता है, जहाँ देवाधिदेव मा पार्वती के साथ टहल रहे हैं और यक्ष के आदेशानुसार मेघ उनके मार्ग में–जहाँ ऊबड़–खाबड़ है–सीढ़ी बनाने का उपक्रम कर रहा है। हम दूर से अलकापुरी को देखते हैं और देखते हैं–यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपानित्यपुष्पा। उसके बाद ही हमारे सामने–"सृष्टिराद्येव धातुः" की मूर्ति स्पष्ट हो जाती है, जो अनुपम और इस मर्त्यलोक की नहीं है। क्रम–क्रम से हम सारे मेघदूत को देख लेते हैं और उस समय हमारे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रह जाती। जब हम यह अनुभव करते हैं कि कालिदास ने जितने चित्र हमारे सामने उपस्थित किये हैं वे सभी कल्पनालोक के हैं। उनमें से एक भी चित्र भौतिक संसार का नहीं है–इन चित्रों की दुनिया अलग है, उस दुनिया की संस्कृति कवित्वपूर्ण और अलग है, उस दुनिया के निवासी हाड़–माँस के मानव नहीं, ज्योतिर्मय मूर्तियाँ हैं, उनका रूप और सौन्दर्य कवित्वपूर्ण है, चिरंतन है, अचंचल है, और है दर्शकों के मन में अलसित विह्वल मादकता का संचार करनेवाला।

शायद हम जैसा अनुभव करते हैं, वैसा व्यक्त नहीं कर सके। पर हम कहेंगे कि कालिदास ने अपने सभी काव्यग्रन्थों में और विशेषतः मेघदूत में अपनी नई दुनिया बसाई है, विधाता भी इस दुनिया को काम में नहीं लाया–हाँ अपने पाठकों को, जो इसी धरातल के प्राणी रहे हैं, अपने कल्पना–जगत् में पहुँचाने के लिये उस महाकवि ने राजगिरि को अपने काव्य में स्थान दिया है–बिल्कुल अतीन्द्रियलोक से ही आपने काव्य को शुरू नहीं किया, यदि वे ऐसा करते तो पाठक उनकी कल्पना का साथ कैसे देते। जब हम अजन्ता के चित्रों को देखते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि कालिदास ने अपने काव्य में और खासतौर से मेघदूत में जिस तरह की दुनिया की कल्पना की है उसी कल्पनामय संसार को अजंता के चितेरों ने अपनी तूलिका से स्थूल रूप दे दिया है या देने का भरसक प्रयत्न किया है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास और वात्स्यायन

डा. सूर्यनारायण व्यास

संस्कृत साहित्य रसिकों के लिए कामशास्त्र के अप्रतिम–विद्वान् आचार्य वात्स्यायन का नाम सुविदित ही है। उनका ग्रंथ कामसूत्र अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ एवं मार्मिक है। उसकी समता की कोई अन्य रचना कामशास्त्र पर नहीं हुई है। यह रचना वैज्ञानिक है। मानव मनोविज्ञान का जिस सूक्ष्मता और गहराई से लेखक ने अध्ययन किया है और सूत्रों में उसका जैसा निचोड़ प्रस्तुत किया है वह सर्वथा अप्रतिम ही है। वात्स्यायन ने और ग्रंथ भी निर्मित किए हैं। किन्तु उसकी महत्वपूर्ण तथा अमर कृति कामसूत्र ही है। वैसे कामसूत्र के पूर्व भी उक्त विषय पर ग्रंथ लिखे गए हैं। कामसूत्र में उनका उल्लेख भी किया गया है, पर आज वे ग्रंथ या तो अप्राप्य हैं या लुप्त हो गए हैं, वात्स्यायन कहां का निवासी था, उसका कार्यक्षेत्र कहां था, यह विद्वानों में विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ समय पूर्व बिहार के एक विद्वान् ने लिखा था, कि संभवतः यह पश्चिम भारत का निवासी था। उसे अवंती की राजनगरी उज्जैन का निवासी बतलाया था।

अवश्य ही शुंग–विक्रम काल गुप्त एवं परमार प्रभुत्व में अवंती विद्या एवं वैभव की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध रही है। ज्ञान–विज्ञान की प्रचण्ड–धारा यहां प्रवाहित होती रही है। अनेक विषयों का अवंती में प्रणयन हुआ है। भारतीय साहित्य–संस्कृति को अवन्ती की अमर देन रही है।

बैक्ट्रिया और उत्तर पश्चिम भारत से, सबसे बड़े बन्दरगाह भृगुकच्छ तक जाने वाले व्यापार के समस्त राजमार्ग उज्जैन से होकर ही निकलते थे। इस कारण उज्जैन उत्तरी भारत के प्रसिद्ध नगरों से पथ–मार्ग से सम्बन्धित रहा है। इस कारण भी उसकी सम्पन्नता और समुन्नति स्वाभाविक थी। ऐसे ऐश्वर्य–सम्पन्न नगर में विलासोपभोग, रसिकता का रहना स्वाभाविक ही है। वात्स्यायन ने जिन लोगों का अपने ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया है, वह तत्कालीन उज्जैन के अनुकूल ही है। अवश्य ही उज्जैन का जनजीवन रस विलासितामय रहा है। विलासोन्माद में उसने कभी–कभी अपने शौर्य और पौरुष को भी एकान्त में ढकेल दिया था। यह शूद्रक के नाटक से प्रतीत होता है, उसमें जिस राजक्रान्ति का संकेत दिया है उसकी पृष्ठभूमि में विलासिता ही रही है। बाण, कालिदास तथा जैन साहित्य की कालक कथा से भी इसका समर्थन होता है। कालिदास के काव्य के निम्न उद्धरणों से भी यही ध्वनित होता है:–

'यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणाम्' 'सुरतग्लानिमंगानुकूलः शिप्रावातः' तथा 'दशपुरबधूनेत्रकौतूहलानि,' आदि।

अवन्ती की परम सुन्दरी वसन्त सेना तो साहित्य में भी अमर बनी हुई है। यद्यपि वह वेश्या थी, किन्तु उसका कला के अतिरिक्त पण्य–स्त्री का रूप नहीं है। वह राज श्यालक के जैसे सम्पन्न का शिकार न बन दरिद्र–चारुदत्त के चरणों में न्योछावर हो जाती है और एक राज्यक्रान्ति का कारण बन जाती है, इसी प्रकार पद्म–प्राभृतक और पादताड़ितक जैसे भांड़ों से भी यहां की विलासिता का चित्र दिखाई देता है। वात्स्यायन ने मालव प्रदेश की मनोवृत्ति, रहन–सहन, वेश–भूषा का जो चित्र अंकित किया है उससे विदित होता है कि वह प्रदेश के अन्तरंग से सुपरिचित था।

वात्स्यायन ने कालिदास की चर्चा की है और कवि सुबन्धु ने वात्स्यायन का उल्लेख किया है। इसलिए कालिदास, सुबन्धु पूर्ववर्ती हैं। स्पष्ट ही द्वितीय चन्द्रगुप्त के पूर्व हुए हैं। कुछ विद्वान् वात्स्यायन के कामसूत्र की रचना की दूसरी शती के मध्य की रचना मानते हैं। कामसूत्र में जिस सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है वह भी यही प्रमाणित करता है। इसी आचार्य का न्याय सूत्र भाष्य भी है। एक अन्य स्थल में पुरुष–सामुद्रिक ग्रंथ निर्मित करने का भी उल्लेख मिलता है। वाचस्पति तथा हेमचन्द्र ने वात्स्यायन की 'पक्षिल स्वामी' नाम से भी ज्ञापित किया है। सर्वदर्शन संग्रह में भी यही नाम बतलाया है।

वात्स्यायन ने पतंजलि और कौटिल्य के उद्धरण दिये हैं, इससे वह तीसरी शती का प्रतीत होता है।

पक्षिल स्वामी नाम के कारण कुछ लोगों ने द्रविड़ समझने की संभावना मानी है। द्रविड़ों के आहार–बिहार की भी कामंसूत्र में चर्चा हुई है किन्तु वात्स्यायन ने सभी प्रान्तों के मानव स्वभाव का, रहन–सहन का वर्णन किया है, अन्यथा सार्वदैशिक विषय का वर्णन कैसे कर सकता था।

वात्स्यायन ने जिस प्रकार के शासन और सत्ताओं का वर्णन किया है उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मालव गणराज्य का निवासी होना चाहिए। उसने जन–संघ के महत्व का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार वात्स्यायन के विधानों पर कौटिल्य का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है, उसी प्रकार पतंजलि के महाभाष्य के उद्धरणों का उपयोग करने के कारण यह प्रतीत होता है कि ई. पूर्व 150 वर्ष के पश्चात् निकटवर्ती काल में रहा है। दूसरे भास के नाटकों में जिस तरह का चित्र अंकित हुआ है वात्स्यायन में भी वैसे ही मिलता है। वात्स्यायन ने अविमारक की कथा का उल्लेख किया है। उससे भास के परवर्ती काल में होना चाहिए। कालिदास ने भी स्पष्ट ही भास का उल्लेख किया है। एक स्थान पर वात्स्यायन ने यह कहा है कि शकुन्तला की तरह अन्य कुमारियों की बात कहकर अपनी पसंदगी के अनुरूप किस प्रकार पति प्राप्त कर सुखी बन सकी आदि–

"श्यचान्यः अपि समान जातीयाः कन्याः शकुन्तलायाः स्वबुध्या भर्तारं प्राप्य संप्रयुक्ताः मोदन्तेस्य नास्वान्या निदर्शयेत्" कामसूत्र, पृ. 278।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे यह विदित होता है कि जिस प्रकार अविमारक–प्रणेता भास से वह परिचित है उसी प्रकार शाकुन्तल–निर्माता कालिदास से भी वह परिचित है। शकुंतला का वृत्त महाभारत में प्रसिद्ध है, किन्तु अविमारक का भी उसी प्रकार है। परन्तु दोनों ही नाटक रूप में जनप्रिय बनकर अधिक प्रभावक बने हैं।

कालिदास और वात्स्यायन का अवश्य ही अधिक सम्बन्ध होना चाहिए, कालिदास ने रघुवंश में कामासक्त अग्निवर्ण की विलासिता का जैसा वर्णन किया है, ठीक वैसी ही व्याख्या कामसूत्र में प्राप्त होती है। यही नहीं शब्द–प्रयोगों में भी साम्य है। सोलहवें श्लोक में कवि ने जिस 'संघाम' शब्द का प्रयोग किया है, उसी का 'विशीर्ण प्रति संघाय' (कामसूत्र 327) तथा उसी अर्थ में प्रयोग वात्स्यायन ने किया है और उसी सर्ग के ३१वें श्लोक में भी देखिए–

मित्रकृत्यमपदिश्य पार्श्वतः प्रस्थितं तमनवस्थितं प्रियाः (19–31 रघु)

वात्स्यायन ने भी अपने प्रेमी को जो विरक्त बन रहा है किस प्रकार पहचाना जावे, उसका उल्लेख करते हुए लिखा है–**'मित्र कृत्यमपदि अन्यत्र शेते'**।

इसी प्रकार अज, और इंदुमति के विवाह वर्णन करते हुए कालिदास ने कहा है–**'आसीद्वरः कंटकितप्रकोष्टः स्वित्रांगुलिः संववृते कुमारी।' रघु० 7।22।**

अर्थात् जब अज ने इंदुमति का पाणि–ग्रहण किया तब अज के हाथों में रोमांच हो उठा, और इन्दुमति की अंगुलियां पसीने से भर गई थीं। वात्स्यायन ने ऐसे ही प्रसंग पर वही शब्द प्रयुक्त किये हैं–

"कन्यातु प्रथम समागमे
स्विन्नांगुलिवन्नम्रमुखी च
भवति पुरुषस्तु रोमांचितो भवति।"

दूसरी जगह कालिदास ने इसी बात को पलट कर कहा है–

'रोमोद्गमः प्रादुरभूदुमायाः स्विन्नांगुलिः पुंगवकेतुरासीत्'। कुमार संभव 7।77

कामसूत्र–निर्माता ने महाकवि के स्वाभाविक–मनोवैज्ञानिक वर्णन को सामने रखकर ही अपनी व्याख्या वर्णित की होगी। यदि कवि ने वात्स्यायन की व्याख्या को लक्ष्य में रखकर यह प्रयोग किया होता तो रघुवंश और कुमार संभव में विभिन्नता नहीं करता। इससे यही स्पष्ट होता है कि वात्स्यायन ही पर महाकवि का प्रभाव है और भी देखिए–कालिदास की शकुंतला का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है–

शुश्रूषस्व गुरून् कुरुप्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीवंगमः।

शाकुंतल के इस श्लोक के प्रथम, तृतीय और चतुर्थ चरण की सूचनाओं का वात्स्यायन ने अपने सूत्रों में स्पष्ट उपयोग किया है, जो सर्वथा समानार्थक है। श्लोक के प्रथम दो चरणों का भाव ग्रहण किया है और तीसरे चरण का तो शब्दशः उपयोग किया है। वात्स्यायन का वह सूत्र इस प्रकार है–'श्वश्रुश्वशुर परिचर्या तत्पारतंत्र्यमनुत्तरवादिता। आदिभोगेष्वनुत्सेकः परिजने दाक्षिण्यं' (कामसूत्र पृ. 230)

तीसरे प्रकरण के भार्याधिकरण स्तम्भ में कामसूत्रकार ने सपत्नी के संबंध में लिखा है–'नायकापचारेषु किंचित् कलुषिता नार्यर्थं निवेदयितुं साधिक्षेपवचनं त्वेतं मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालभेत नच मूलकारिकास्यात्।' (पृ. 227)

शाकुंतल के पंचम अंक में एक स्थान पर दुष्यन्त ने कहा है–'नागरिकवृत्या संज्ञापयैनाम्'। ठीक उसी प्रकार और इसी अर्थ में कामसूत्र में 'नागरक वृत्तम्' विवरण प्रस्तुत किया है।

शाकुंतल के प्रथम अंक की कुछ बातों का वात्स्यायन के 'कन्या विस्रम्भण प्रकरण' से बहुत अधिक साम्य है।

"जिस तरह किसी तरुणी को यह पता चल जाये कि कोई युवक उसके प्रणय प्राप्त करने को उत्सुक है, तब वह दोनों ओर की परिचिता सखियों द्वारा संदेश व्यवहार आरम्भ करें। उस समय निम्न–मुखी बन–मंदस्मित करें, सभी सखी द्वारा अतिशयोक्ति करने पर रोष प्रकट करें, झगड़ पड़े, तब सखी कहे कि 'उसी ने तो कहा था।' और जब सखी एक ओर मिल जावे तथा प्रियतम से संभाषण का अवसर मिले, तब कुछ न बोले और प्रिय के अत्यधिक आग्रह पर कहे कि 'वाह मैं' ऐसी बात कभी नहीं कर सकती, उस समय तिरछी नजरों से देखती जाए, तथा मंदस्मित करें" (कामसूत्र 194)

मानों यह प्रियंवदा और अनुसूया में ही विवाद चल रहा है, तथा दुष्यन्त के साथ इसकी परिणति हो रही है, यह कालिदास के शाकुन्तल को जैसे देखकर ही लिखा गया हो।

वात्स्यायन प्रथम शती का है। वह अपने समय की अवंती (उज्जयिनी) को मालव देश में

वात्स्यायन के अनेक उल्लेखों से, समाज के चित्रांकनों से यही ज्ञात होता है कि वह मालव का था। संभवतः शुंग काल के अंतिम भाग में रहा हो।

शुंग के अंतिम नरेशों के चरित्र–पतन आदि का दृश्य उसका जाना हुआ होना चाहिए, क्योंकि ऐसे नरेशों की उसने आलोचना की है। और संघ शासन को महत्व दिया है। संभवतः शृंगोत्तर–मालव–संघ का नागरिक रहा हो। नागरिक जीवन के वर्णन से भी यही प्रतीत होता है, वात्स्यायन ने देश की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति का जैसा वर्णन किया है, ठीक वही कालिदास के काव्यों और नाटकों से मिलता हुआ है। जिस युग के नागरिकों के सुखमय, कला विलास पूर्ण जीनवन को वात्स्यायन ने देखा है, अथवा अंकित किया है, कालिदास के साहित्य में उससे कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

वासवदना के निर्माता सुबन्धु वे वात्स्यायन का उल्लेख किया है। सुबन्धु स्पष्ट ही चन्द्रगुप्त द्वितीय के पूर्व हुआ है। उसके उल्लेख तथा कालिदास के शब्दार्थ साम्य रखने वाले उद्धरणों से यह स्पश्ट है कि वात्स्यायन गुप्त काल के पूर्ववर्ती हैं और कालिदास से सुपरिचित होने के कारण प्रथम शती में होना स्वाभाविक है। भास एवं कौटिल्य से प्रभावित होने के कारण वह उनके पश्चात् काल में मालव में रहा है। आन्ध्र–सम्राट कुंतल शान्तकर्णी के विषय में वात्स्यायन ने एक उद्धरण दिया है–'कर्तचर्या कुन्तलःशातकर्णिः शातवाहनी महादेवी मलयवी जघान' (काम सू० 149)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानता है। अर्थात् प्रथम शती में अवन्ती को मालव समझा जाता था जो लोग यह मानते हैं कि मालव पंजाब से आए और 5–6ठीं शती में इस प्रदेश को मालव कहा गया है उनको वात्स्यायन का यह कथन था कि 'आवंतिका उज्जयिनी–देशभवाः एव अपरमालवाः' (कामसूत्र 127) आवंतिक उज्जयिनी में देशोत्पन्न जो लोग हैं वे ही अपर–मालव हैं।

वात्स्यायन के अनेक उल्लेखों से, समाज के चित्रांकनों से यही ज्ञात होता है कि वह मालव का था। संभवतः शुंग काल के अंतिम भाग में रहा हो।

शुंग के अंतिम नरेशों के चरित्र–पतन आदि का दृश्य उसका जाना हुआ होना चाहिए, क्योंकि ऐसे नरेशों की उसने आलोचना की है। और संघ शासन को महत्व दिया है। संभवतः शृंगोत्तर–मालव–संघ का नागरिक रहा हो। नागरिक जीवन के वर्णन से भी यही प्रतीत होता है, वात्स्यायन ने देश की भौगोलिक और सामाजिक स्थिति का जैसा वर्णन किया है, ठीक वही कालिदास के काव्यों और नाटकों से मिलता हुआ है। जिस युग के नागरिकों के सुखमय, कला विलास पूर्ण जीवन को वात्स्यायन ने देखा है, अथवा अंकित किया है, कालिदास के साहित्य में उससे कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

वासवदना के निर्माता सुबन्धु ने वात्स्यायन का उल्लेख किया है। सुबन्धु स्पष्ट ही चन्द्रगुप्त द्वितीय के पूर्व हुआ है। उसके उल्लेख तथा कालिदास के शब्दार्थ साम्य रखने वाले उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वात्स्यायन गुप्त काल के पूर्ववर्ती हैं और कालिदास से सुपरिचित होने के कारण प्रथम शती में होना स्वाभाविक है। भास एवं कौटिल्य से प्रभावित होने के कारण वह उनके पश्चात् काल में मालव में रहा है। आन्ध्र–सम्राट कुंतल शान्तकर्णी के विषय में वात्स्यायन ने एक उद्धरण दिया है–'कर्तचर्या कुन्तलःशातकर्णिः शातवाहनी महादेवी मलयवतीं जघान' (काम सू० 149)।

डा. जयसवाल के मतानुरूप इस शातकर्णी पर खारबेल ने ईस. पूर्व 171 में आक्रमण किया था, (ग.वि. ओरी. रिस. ज.नं. 111 पृ. 441–442)

कुन्तल ई. स. आरम्भ में उत्पन्न हुआ था, इस प्रमाण के आधार पर वात्स्यायन प्रथम शती या इसके लगभग रहता है और 'कुन्तलेश्वर दौत्यम्' से सम्बन्धित–कालिदास भी उसी काल

वासवदना के निर्माता सुबन्धु ने वात्स्यायन का उल्लेख किया है। सुबन्धु स्पष्ट ही चन्द्रगुप्त द्वितीय के पूर्व हुआ है। उसके उल्लेख तथा कालिदास के शब्दार्थ साम्य रखने वाले उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वात्स्यायन गुप्त काल के पूर्ववर्ती हैं और कालिदास से सुपरिचित होने के कारण प्रथम शती में होना स्वाभाविक है। भास एवं कौटिल्य से प्रभावित होने के कारण वह उनके पश्चात् काल में मालव में रहा है। आन्ध्र–सम्राट कुंतल शान्तकर्णी के विषय में वात्स्यायन ने एक उद्धरण दिया है–'कर्तचर्या कुन्तलःशातकर्णिः शातवाहनी महादेवी मलयवतीं जघान' (काम सू० 149)।

में स्थिर होता है।

वात्स्यायन ने ठीक उसी प्रकार के वर्णाश्रम धर्म का स्वरूप बतलाया है जिस तरह कालिदास ने अपने साहित्य में किया है।

कालिदास पाटलिपुत्र और मगध को विशेष कोई महत्व नहीं देता। वात्स्यायन ने भी देश के विभिन्न भागों, रीति–रिवाजों का वर्णन किया है, परन्तु मगध को महत्व नहीं दिया है। यह बतलाया है कि जिस समय मगध का महत्व विनष्ट हो गया था, शुंग–शक्ति प्रबल हो गई थी, तथा विदिशा में राजधानी बन गई थी, उसी समय कालिदास और वात्स्यायन के साहित्य का सृजन हुआ है।

वात्स्यायन ने नागरिक जीवन का वैभव–विलासिता पूर्ण, सुखी एवं कलामय रूप से अंकित किया है, भास–अश्वघोष एवं कालिदास में भी ऐसा ही चित्र मिलता है, सुधा धौत–धवल–प्रासाद, रम्य–चित्र– कलांकित दीवारें, कलापूर्ण स्तम्भ, धरणी तल कला–कण, मनोरम उद्यान, लताकुंज, सुरभित सुमन, सुन्दर स्नानगुह, शीतल–समीर के लिए सचंदनाम्बुव्यजन, विश्राम गृह, रहस्यमय–विलास स्थान अन्तःपुर की रचना का वर्णन वासवदत्ताः चारुदत्त अश्वघोष, कालिदास की मालविका और मेघदूत ऋतु संहार से इतना साम्य रखता है कि समकालीन वर्णन हो, तथा तत्कालीन सुखी–समाज का प्रत्यक्ष अनुभव कर उन्होंने साहित्य रचना की है। नागरिकों की दिनचर्या का वर्णन देखकर चारुदत्त का ही चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है। अग्निमित्र और मेघदूत के विलासी यक्ष के साथ तुलना कर सकते हैं, शरीर–प्रसाधन, सुरभित लेपन, केश–संस्कार, धूप, सुरभित सुमन माला, नयनों में कज्जल, पैरों में अलक्तक, अधरों पर अरुण–राग–रंजन, करांगुलीय आदि का साम्य चारुदत्त, यक्ष, नन्दके प्रासाद के अन्तःपुर के रूप–रमणियों के प्रसाधन रस–विलास से सहज की जा सकती है। कुंकुम–केशर–चर्चित–कलेवर कालिदास के लग्न कुंकुम केशरान् के समान ही प्रतीत होता है। वात्स्यायन की तरह ही प्रथम–शती में विरचित "ललित–विस्तर" में भी सुरभित–साधनों के प्रयोग, अनुलेपन, स्नानीय–सुरभित द्रव्य, फेनिल पदार्थों का प्रयोग, नख, स्तन, अधरों की रागानुरंजित करने की विधियों, का जैसा वर्णन भास, वात्स्यायन तथा ललित–विस्तर में हुआ है, वह विशेष मनोहारिता के साथ कालिदास के साहित्य में सुलभ होता है। पशुपक्षियों के पालने की प्रवृत्ति, नृत्य, संगीत, वादन, नाट्य अभिनय, गोष्ठी आदि भी ठीक उसी प्रकार है, जैसे कालिदास ने वर्णित की है। शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि वात्स्यायन के समय सु–संस्कृत समाज की व्यवहार भाषा संस्कृत रही है, और जन–साधारण की प्राकृत, यह शांकुंतल एवं मालविका के पात्रों के प्रयोग से प्रमाणित है।●

–प्रस्तुति : उमाशंकर तिवारी
संपर्क : 3/1078, जानकीपुरम् विस्तार,
सीतापुर रोड, लखनऊ–226023

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय कवियों की परंपरा के प्राण–कालिदास

डॉ० भगवत शरण उपाध्याय

संस्कृत के मूर्धन्य कवि और नाटककार कालिदास का स्थान देश–विदेश के साहित्य–मनीषियों में संसार के अप्रतिम रचनाकारों में माना है। सर विलियम जोन्स ने अठारहवीं सदी के अन्त में जब 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अंग्रेजी अनुवाद छापा तब न केवल अनेक यूरोपीय भाषाओं में उसके एक के बाद एक अनुवाद छपे बल्कि पाश्चात्य संसार में इस स्तर के भारतीय कवि के होने की संभावना ने एक अचरज की लहर दौड़ा दी।

पश्चिम के साहित्यकारों पर उस कृति का तत्काल प्रभाव पड़ा और तब के यूरोपीय साहित्य–क्षेत्र के अग्रणी गेटे और शिलर ने उसे प्रभूत सराहा और शाकुन्तल के शिल्प का क्रमशः अपने 'फाउस्ट' और 'वन्दिनी रानी' नाम की रचनाओं में उपयोग किया। गेटे ने तो शाकुन्तल के रागात्मक प्रभाव के वशीभूत हो जो उद्‌गार निकाला, वह कवियों के लिए दाह का कारण और कालिदास के लिए यश की अमर वाणी बन गया।

निवास–भारतीय कवियों की परम्परा के प्राण होने के कारण कालिदास ने अपने कार्यकाल और निवास के संबंध में संसार को कोई सूचना नहीं दी। परिणामतः दोनों विषयों में किसी की हमें जानकारी नहीं और विभिन्न अनुमानों के बावजूद हम आज भी उस दिशा में प्रायः शून्य में ही देख रहे हैं। इसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि परिस्थिति नें हमारे कवि को देशकालातीत एक अमर पद प्रदान कर दिया है।

कालिदास के ग्रंथों के गहरे अध्ययन से विद्वानों ने निष्कर्ष निकाल उनके निवास और कार्यकाल के संबंध में जो अटकल लगाए हैं उनसे एक गहन वन ही खड़ा कर दिया है जिससे उस दिशा में भटक सकना भी कठिन हो गया है। फिर भी जो उपलब्ध है उससे तथ्य का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

पहले जन्म–स्थान और निवास–बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, कश्मीर सभी को कालिदास का निवास स्थान होने का समय–समय पर विद्वानों के तर्क से श्रेय मिला है। इन तर्कों की युक्तिसंगत स्थापनाओं में अधिक सच्चाई की संभावना कश्मीर और मध्यप्रदेश के संबंध की है। 'ऋतुसंहार' में जिन षड् ऋतुओं का कवि ने घना परिचय दिया है वे सर्वथा मध्यप्रदेश की है। 'मेघदूत' का नायक यक्ष जिस रामगिरि पर प्रवास करता है वह नागपुर के पास का रामटेक है। मेघ को उत्तर अलका की ओर भेजते हुए कवि ने जो रामगिरि से उत्तरोत्तर मार्ग का सविस्तार उल्लेख किया है वह मध्यप्रदेश के छोटे–बड़े सभी स्थानों, छोटी–बड़ी सारी जलधाराओं का कवि का घनिष्ठ ज्ञान प्रकट करता है। वैसे तो निःसन्देह उत्तरापथ के मार्ग पर पड़ने वाले सभी स्थानों से कवि यथेष्ट परिचित है पर मध्यप्रदेशीय स्थलों के वर्णन में तो वह रागविभोर हो उठता है। प्रसिद्ध है कि उज्जयिनी का उत्तर के मार्ग से हटकर टेढ़ा पड़ना स्वीकार करके भी कवि मेघ को उधर मुड़कर उस नगर के महाकाल तथा वहाँ की नारियों के भ्रूविलास के दर्शन कर अपना भाग्य सफल कर लेने का आग्रह करता है। निश्चय कवि का यह आग्रह मध्य–प्रदेश से उसके घने और दीर्घ संबंध का प्रमाण है।

कश्मीर का भी कालिदास ने प्रकट उल्लेख नहीं किया। पर ह्रदों–सरोवरों और उनको ढक देने वाले कमल वनों का जो कवि ने वर्णन किया है उसका संकेत डल, ऊलर आदि कश्मीरी झीलों के प्रति अनेक विद्वानों ने माना है। धान के विविध प्रकारों– शालि, कलमा आदि–का जो कवि ने उल्लेख किया है वे हिमालय में अन्यत्र प्राप्य होकर भी विशेषतः कश्मीर की घाटी के हैं। और एक उल्लेख तो निश्चय जैसे कालिदास को उस घाटी से बांध देता है। किसी कश्मीरभिन्न संस्कृत ने कभी कश्मीर अथवा उसके उत्तर–पश्चिम बाख्त्री (वह्लीक, बदख्या) में होने वाले केसर की पौध और कुल का वर्णन नहीं किया, केवल कालिदास ने आंख देखा वर्णन किया है। हिमालय के प्रति तो कवि का आग्रह इतना घना है कि 'कुमारसंभव' का समूचा कथानक और 'मेघदूत' का पूरा उत्तरार्थ उसी पर्वत की उपत्यकाओं में घटते हैं, फिर 'रघुवंश', 'शाकुन्तल' और 'विक्रमोर्वशी' के भी अनेक स्थलों का संबंध हिमाचल से है। विशेषकर मेघदूत में विवश प्रवासित यक्ष के उद्‌गार तो केवल कल्पना से संभव हो ही नहीं सकते, निश्चय किसी ऐसे के हैं जो कारण विशेष से लाचार हो स्वेदश से निष्कासित कर दिया गया हो और स्वदेश को भूल न पाता हो।

परिणामतः यह स्वीकार करना अयुक्तियुक्त शायद न हो कि कालिदास ने जन्म कदाचित कश्मीर में लिया और कारणवश वहाँ से हट जाने से उन्होंने मध्यप्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। परम्परया उनका विक्रमादित्य की राजसभा का रत्न होना भी उनके उस राजा को दूसरी राजधानी उज्जयिनी में दीर्घकाल तक निवास को प्रमाणित करता है जिसके प्रति कवि का 'मेघदूत' में विशेष आग्रह है।

कार्यकाल–कवि के निवास स्थान की भांति ही उसका कार्यकाल निश्चित करना भी आसान नहीं, यद्यपि साधारणतः वह काल पांचवीं सदी ईसवी माना गया है। कवि इतना लोकप्रिय हो गया था कि उसके पीछे अनेक कवियों ने उसका नाम अपना लिया और इस प्रकार संस्कृत में तीन–तीन कालिदास होने की सम्भावना उत्पन्न कर दी। पर इस सम्बन्ध में प्रायः निर्णय यही है कि प्रसिद्ध कालिदास पहले कालिदास ही थे, चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समकालीन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन्होंने 'रघुवंश' आदि काव्यों और 'शाकुन्तल' आदि नाटकों की रचना की।

यहाँ कालिदास के काल–निर्णय के सम्बन्ध में दो शब्द विशेष लिख देना समीचीन होगा। परम्परा के अनुसार कालिदास 56 ई.पू. के किसी विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। पर ऐतिहासिक विवेचन से पता चलता है कि न तो प्रथम शती ईसवी पूर्व में कोई विक्रमादित्य ही हुआ और न नवरत्नों में गिनाये जाने वाले क्षपणक आदि व्यक्ति ही परस्पर समकालीन थे। इस सम्बन्ध में विशेषतः बौद्ध भिक्षु अवश्वघोष के काव्य 'बुद्धचरित' में कालिदास के 'रघुवंश' और 'कुमार सम्भव' के संभावित अवतरणों की ओर संकेत किया गया है। कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया या अश्वघोष ने कालिदास का, इसका निर्णय भी स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में अभी नहीं किया जा सकता, यद्यपि संभावना अश्वघोष के ही कालिदास का पूर्ववर्ती होने की प्रतीत होती हैं। कालिदास की कृतियों के आन्तरिक प्रमाणों से पाँचवीं सदी ईसवी में ही कवि का होना अधिक युक्तियुक्त लगता है।

गुप्तकाल में संपादित पौराणिक आख्यानों, परम्पराओं और तभी अनंत संख्या में प्रसूत देवमूर्तियों का उल्लेख; भारतीय कला में प्रायः पहली बार कुषाणकाल में निर्मित क्रमशः मकर और कच्छप पर खड़ी चमरधारिणी गंगा तथा यमुना की मूर्तियों का वर्णन; मात्र गुप्तकालीन मूर्तियों की उंगलियों के जालग्रथित (शाकुन्तल, अंक 7–जालग्रथितांगुलिः करः–देखिए 'मानकुँबेर' बुद्धमूर्ति के अतिरिक्त अनेक अन्य, लखनऊ संग्रहालय) अभिप्राय (मोटिफ़) का उल्लेख; कुषाण–गुप्तयुगीन बुद्ध मूर्तियों की अखण्ड समाधि का वर्णन; गुप्त सम्राटों के अभिलेखों और मुद्रालेखों तथा कालिदास की भाषा में घनी समता; कवि की रचनाओं में वर्णित शांति और समृद्धि; प्रायः तीसरी सदी ईसवी के वात्स्यायन के कामसूत्रों का कवि पर असंदिग्ध प्रभाव; ग्रीक ज्योतिष के 'जामित्र' आदि पारिभाषिक शब्दों का उपयोग; पाँचवीं सदी ईसवी में वक्षुनद (आमू दरिया) की घाटी में बसने वाले हूणों की रघुद्वारापराजय–सभी कालिदास की गुप्तकालीनता प्रमाणित करते हैं।

कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्त में पुष्यमित्रों और हूणों ने गुप्तकालीन शांति नष्ट कर दी। इससे कविके कार्यकाल का अन्त ४४६ ई. में (450 ई. के पुष्यमित्रों के साथ हुए स्कन्दगुप्त के युद्ध के पहले) रखा जा सकता है। परन्तु यदि कुमार गुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों की ओर अप्रत्यक्ष रूप से कवि ने संकेत किया है तब संभवतः वह स्कन्दगुप्त के जन्म तक जीवित रहा होगा। कालिदास ने लिखा बहुत है फलतः स्वाभाविक ही उनका कृतित्व दीर्घकालिक रहा होगा। यदि मानें कि वे अस्सी बरस तक जिये तो, इस गणना के आधार पर, उनकी मृत्यु 445 ई. के लगभग कभी हुई होगी, और तब उनके जन्म की तिथि 365 ई. के लगभग कभी मानना समुचित होगा। इस प्रकार समुद्रगुप्त के शासनकाल में जन्म लेकर कवि ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समूचे शासन और कुमारगुप्त के शासन के अधिकतर काल तक अपनी लेखनक्रिया जागृत रखी होगी। अतः कालिदास ने स्कन्दगुप्त का जन्म भी देख लिया होगा क्योंकि पुष्पमित्रों की पराजय करते समय स्कन्दगुप्त की आयु कम–से–कम २० वर्ष की अवश्य रही होगी। इस प्रकार यदि कालिदास ने 25 वर्ष की अवस्था में अपना कविकर्म आरम्भ किया हो तो उनकी पहली कृति 'ऋतुसंहार' 390 ई. के लगभग लिखी गई होगी और उनका रचनाकाल प्रायः उस अवधि के अधिकतर भाग पर फैला रहा होगा जिसे हम साधारणतः भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहते हैं।

कविकार्य–कालिदास की प्रायः सर्वस्वीकृत कृतियाँ सात हैं। तीन नाटक और चार काव्य। 'अभिज्ञान शाकुन्तल', विक्रमोर्वशी' और 'मालविकाग्निमित्र' नाटक हैं, 'रघुवंश', 'कुमारसंभव', 'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार' काव्य। कालिदास के एक ओर काव्य 'कुन्तलेश्वर दौत्य' का भी उल्लेख मिलता है पर उसकी कोई प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी।

'अभिज्ञान शाकुन्तल' संस्कृत नाट्य–साहित्य का चूड़ामणि है। नाट्य–समीक्षकों में इसे विश्व के साहित्य की सुन्दरतम कृतियों में गिना है। इसके सात अंकों में कवि ने महाभारत की एक कथा का नाटकीय नवनिर्माण किया है। विक्रमोर्वशी त्रोटक है। इसका कथानक ऋग्वेद से लिया गया है। इसके घटनाचक्र का प्रसार पृथ्वी से स्वर्ग तक है और उसका विकासशिल्प असाधारण एवं सुखांत है। 'मालविकाग्निमित्र' नाटकों की दिशा में कवि की संभवतः पहली रचना है। इसमें कवि में प्रायः 600 वर्ष पहले के सेनापति सम्राट् तुष्यमित्र शुंग के पुत्र बहुपत्नीक राजा अग्निमित्र और उसकी प्रेयसी मालविका के प्रणय का नाट्यांकन किया है।

'रघुवंश' 19 सर्गों का महाकाव्य है, महाकाव्य के परिगणित सारे गुणों से संयुक्त। इसमें कालिदास ने वाल्मीकि रामायण की पद्धति से काव्यरचना की है और रामायण तथा पुराणों के सूर्यवंशी शासकों की क्रियाशीलता को अत्यन्त कुशलता एवं सूक्ष्मता से सर्गबद्ध कर दिया है। महाकाव्य शैली की कृतियों में 'रघुवंश' पहली और आदर्श रचना है। 'कुमारसम्भव' भी महाकाव्य है पर संभवतः कवि उसे पूरा न कर सका। इसी कारण विद्वान् इसके केवल आठ पहले सर्ग प्रामाणिक मानते हैं। यह भी पीछे अनेक सर्ग जोड़कर महाकाव्य की परिगणित सर्ग–संख्या द्वारा पूरा कर दिया गया है, पर वह बहुत पीछे किसी अन्य कवि द्वारा लिखा गया है। स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यशस्वी टीकाकार मल्लिनाथ ने उनकी प्रामाणिकता अस्वीकार कर केवल आठ सर्गों पर ही टीका लिखी है। 'कुमार सम्भव' का कथानक हिमालय की उपत्यका में प्रारंभ होता है और उमा तथा शिव के विवाह से संबंधित है। काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णनों से भरा है। 'मेघदूत' की पाश्चात्य समीक्षकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। खण्ड–प्रबन्ध के रूप में संसार का यह पहला गीतिकाव्य– लिरिक–है। वैसे तो साफो आदि प्रसिद्ध नव ग्रीक लिरिक कवियों में कालिदास से प्रायः हजार साल पहले लिरिक लिखना आरंभ कर दिया था पर प्रबंध लिरिक के रूप में कोई स्वतंत्र काव्य कालिदास से पहले किसी देश में नहीं लिखा गया। अनेक यूरोपीय भाषाओं में 'मेघदूत' का अनुवाद हो चुका है। इसमें मंदाक्रांता नाम के एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और इसके श्लोकों की संख्या केवल 120 है। स्वयं संस्कृत साहित्य में इस काव्य का बार–बार अनुकरण हुआ है। इसी की छाया में प्रसिद्ध जर्मन लिरिक कवि शिलर ने स्काटों की रानी का 'वन्दिनी रानी' शीर्षक से चरित लिखा जिसमें उसने उसकी ओरसे उसे स्वदेश स्काटलैंड को बादलों से संदेश भेजा। 'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रत्यक्षतः प्राथमिक कृति है। यह भारत की छहों ऋतुओं का क्रमिक वर्णन करता है, मस्त और जीवन्त। ऋतुओं के प्राणवान चित्र एक के बाद एक काव्यपथ पर उतरते चले जाते हैं और निसर्ग जैसे ऋतु–ऋतु उघड़ता चला जाता है। काव्य का प्रमुख विषय प्रकृति ही है, पर सारी ऋतुओं का एकत्र इतना मांसल रूपायन स्वयं कवि ने अन्यत्र नहीं किया, अन्य कवियों की कृतियों में तो उसका अभाव है ही। कवि की इन रचनाओं में भारत के सामुदायिक और वैयक्तिक जीवन की अनन्त राशि खुल पड़ी है।

कृतियों की उत्तरोत्तर प्रौढ़ता के विचार से उनका संभावित क्रम इस प्रकार है: ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी, मेघदूत, कुमारसंभव, रघुवंश और अभिज्ञान शाकुन्तल।

'कुमारगुप्त प्रथम के शासन के अन्त में पुष्यमित्रों और हूणों ने गुप्तकालीन शांति नष्ट कर दी। इससे कविके कार्यकाल का अन्त 449 ई. में (450 ई. के पुष्यमित्रों के साथ हुए स्कन्दगुप्त के युद्ध के पहले) रखा जा सकता है। परन्तु यदि कुमार गुप्त और स्कन्दगुप्त दोनों की ओर अप्रत्यक्ष रूप से कवि ने संकेत किया है तब संभवतः वह स्कन्दगुप्त के जन्म तक जीवित रहा होगा। कालिदास ने लिखा बहुत है फलतः स्वाभाविक ही उनका कृतित्व दीर्घकालिक रहा होगा। यदि मानें कि वे अस्सी बरस तक जिये तो, इस गणना के आधार पर, उनकी मृत्यु 445 ई. के लगभग कभी हुई होगी, और तब उनके जन्म की तिथि 365 ई. के लगभग कभी मानना समुचित होगा। इस प्रकार समुद्रगुप्त के शासनकाल में जन्म लेकर कवि ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समूचे शासन और कुमारगुप्त के शासन के अधिकतर काल तक अपनी लेखनक्रिया जागृत रखी होगी। अतः कालिदास ने स्कन्दगुप्त का जन्म भी देख लिया होगा क्योंकि पुष्पमित्रों की पराजय करते समय स्कन्दगुप्त की आयु कम–से–कम 20 वर्ष की अवश्य रही होगी। इस प्रकार यदि कालिदास ने 25 वर्ष की अवस्था में अपना कविकर्म आरम्भ किया हो तो उनकी पहली कृति 'ऋतुसंहार' 390 ई. के लगभग लिखी गई होगी और उनका रचनाकाल प्रायः उस अवधि के अधिकतर भाग पर फैला रहा होगा जिसे हम साधारणतः भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहते हैं।'

शैली–कालिदास की अन्य संस्कृत कवियों से विशिष्टता उनकी सहज शैली तथा प्रसाद गुण में है। भाषा के ऊपर किसी संस्कृत कवि का इतना अधिकार नहीं। कवि की सारी रचनाये उस वैदर्भी शैली में सम्पन्न हुई हैं जिसकी दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में स्तुति की है। कालिदास की उपमाएँ अपनी सूक्ष्मता और औचित्य के कारण जगत्प्रसिद्ध है। उनकी कल्पना अनन्य साधारण और अद्भुत गतिमती है। मानव हृदय के ज्ञान की सूक्ष्मता में यह कवि सर्वथा अनुपम है, सुकुमार निरूपण और भावों तथा आबेगों के वर्णन में अद्वितीय है।

अपने नाटकों में कवि ने संस्कृत की परम्परा के अनुकूल ही संस्कृत और प्राकृतों का उपयोग किया है। गद्य के लिए वह शौरसेनी का उपयोग करता है, पद्य के लिए महाराष्ट्री का। 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में 'नागरिक' और 'धीवर' मागधी बोलते हैं, पर श्याला शौरसेनी बोलता है।

कवि ने अपनी रचनाओं में अत्यन्त कुशलता से निम्नलिखित छन्दों का उपयोग किया है : आर्या, श्लोक, वसंततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, प्रहर्षिणी, शालिनी, रुचिरा, स्रग्धरा, रथोद्धता, मंजुभाषिणी, अपरवक्त्रा, औपच्छंदसिका, वैतालिक, द्रुतविलंबित, पुष्पाग्रिता, पृथ्वी, मंदाक्रांता, मालिनी, वंशस्थ, शिखरिणी, हारिणी, इंद्रवज्रा, मत्तमयूर, स्वाती, त्रोटक और महामालिका।●

प्रस्तुति : नलिनी मिश्र,
सरोजिनी–निवास, एम–1/63, सेक्टर–बी,
अलीगंज, लखनऊ (उ.प्र.) 225024

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास नाट्य सारिणी

डा. भानुशंकर मेहता

1. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**

– मौलिक, संस्कृत नाटक, पौराणिक

– अंक 7, दृश्य 7

दृश्य–कण्व आश्रम (4 दृश्य), राजदरबार, उज्जयनी, कश्यप आश्रम

पात्र–पुरुष 20, स्त्री 11, बालक 1

पात्र परिचय–पुरुष–सूत्राधार, दुष्यन्त (राजा), भद्रसेन (सेनापति), कण्व, माढव्य (विदूषक), सोमराज (राजगुरु), रैवतक (दौवारिक), करभक (राजसेवक), पार्वतायत (कुंचुकी), वैतलिक (चारण), वैखानस, शारंगरव, क्षारद्वत, हारीत, गौतक (सभी कण्व आश्रमवासी), श्यामल (राजपुरुष), श्यालः (धीवर), सूचक तथा जानुक (राजपुरुष), मातली (इन्द्रसारथी), मारीच (कश्यप) (प्रजापति), सूत (सारथी)।

स्त्री–नटी, शकुन्तला (कण्व पालित कन्या), अनुसूया तथा प्रियंवदा (शकुन्तला की सखियाँ), गौतमी (तपस्विनी), चतुरिका, परिभृतिका, मधुकारिका (राज सेविकाएँ), यवनीप्रतिहारिका, सानुमती (अप्सरा), अदिति (कर्दम की पत्नी)।

कथावस्तु–राजा दुष्यन्त आखेट करता कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाता है। यहाँ शकुन्तला से भेंट होती है और दोनों गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। राजा अपने नगर लौट जाते हैं पर अपनी पहचान के लिये अंगूठी दे जाते हैं। कण्व आश्रम में लौटते हैं तो आशीर्वाद देकर शकुन्तला को पतिगृह भेज देते हैं। दुष्यन्त के दरबार में पहुँचने पर राजा उसे पहचान नहीं पाते और शकुन्तला को अप्सराएँ उठा ले जाती है। एक धीवर पकड़ा जाता है जिसने मछली के पेट में अंगूठी पायी थी। यह अंगूठी दुर्वासा के शाप वश शकुन्तला की अंगूली से निकल कर नदी में गिर गयी थी। राजा को अंगूठी देखकर शकुन्तला की याद आ जाती है। विरही राजा को इन्द्र का बुलावा आता है और लौटते समय वे कश्यप के आश्रम में ठहर जाते हैं। यहाँ उन्हें पहले अपने बालक पुत्र भरत और फिर शकुन्तला मिलती है। पुनर्मिलन होता है और मारीच का आशीर्वाद पाकर वे राज्य में लौट आते हैं।

टिप्पणी–यह विश्वप्रसिद्ध नाटक है और इसके विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनेक अनुवाद हुए हैं। 1500 से अधिक वर्षों पुराना यह संस्कृत भाषा का श्रेष्ठतम नाटक है।

2. **विक्रमोर्वशीयम्**

– मौलिक, पौराणिक, त्रोटक

– पाँच अंक, दृश्य 5

दृश्य– वनमार्ग, राजभवन, आश्रम, तालाब का किनारा, रनिवास

पात्र– पुरुष 11, स्त्री 10

पात्र परिचय–पुरुष–सूत्रधार, परिपार्श्वक, पुरुरवा (राजा), सारथी, माणवक (विदूषक), नारद (देवर्षि), आयु (पुरुरवा का पुत्र), चित्ररथ (गंधर्वराज), कंचुकी (परिचारक), पल्लव तथा मालव (भरत मुनि के शिष्य)।

स्त्री–उर्वशी (अप्सरा), चित्रलेखा (उर्वशी की सखी), सहजन्या, रंभा, मेनका (अप्सराएं), देवी (महारानी), निपुणिका (परिचारिका), तापसी (तपस्विनी), परिजना एवं यवनी (परिचारिकाएं)।

कथा–कुबेर की सेवा करके लौट रही उर्वशी और चित्रलेखा को राक्षस उठा ले जाते हैं। राजा पुरुरवा अप्सराओं की पुकार पर आते हैं, राजा राक्षसों को मार भगाते हैं और उर्वशी को लेकर लौटते हैं। गंधर्वराज चित्ररथ अप्सराओं को लेकर चले जाते हैं। राजा उर्वशी के विरह में डूबे हैं। विमान पर बैठी उर्वशी और चित्रलेखा दिखती है। राजा और उर्वशी का संलाप होता है पर उर्वशी को इन्द्र का बुलावा आता है और वह चली जाती है। रानी आती है और उर्वशी की लिखी

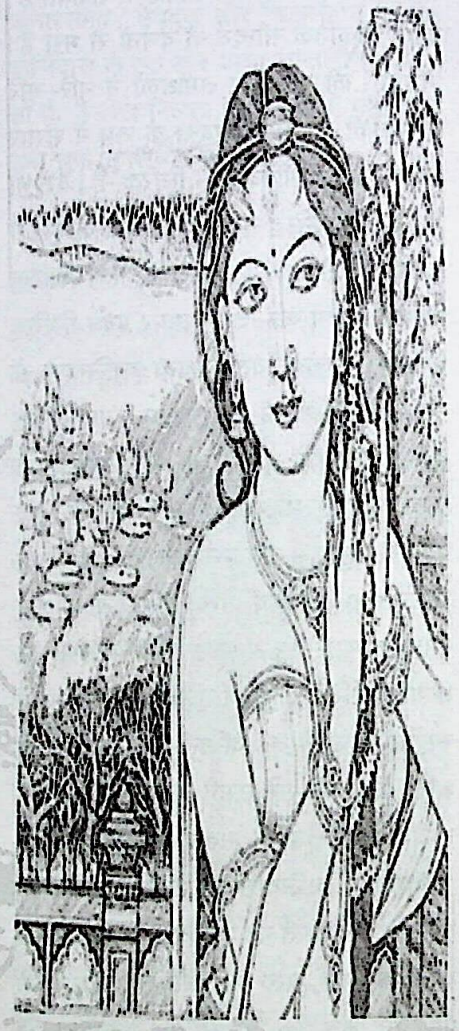

(भोजपत्र पर) कविता पढ़ती है। वे भोजपत्र विकल राजा को देती है। उर्वशी सखी के साथ होती है तभी रानी आ जाती है। रानी प्रिय को प्रसन्न करने वाला व्रत कर रही है। वे राजा को उनके मन में बसी स्त्री को उनकी पत्नी बनाने को तैयार है। उर्वशी से मिलन होता है। भ्रमवश उर्वशी नाराज हो चली जाती है। बिछोह में पुरुरवा पागल सा हो जाता है। उर्वशी पुनः प्रगट होती है। पिटारी में रखी रानी की मणि को गिद्ध उठा ले जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उर्वशी पुत्र आयु ने शत्रु को मारकर मणि वापस ला दी। राजपुत्र आता है। पिता पुत्र का मिलन। उर्वशी लौटना चाहती है। नारद आते हैं। आयु का राज्याभिषेक होता है और राजा, उर्वशी आदि सब लोग रानी के पास जाते हैं।

टिप्पणी—यह प्रसिद्ध नाटक है, इसमें ध्रुवाओं का विशेष प्रयोग होता है। इसे अलग—अलग निर्देशकों ने भिन्न रूप में मंचित किया है।

3. **मालविकाग्निमित्रम्**

मौलिक संस्कृत नाटक, पौराणिक कथा

पाँच अंक, पाँच दृश्य

दृश्य—संगीतशाला, राजदरबार, उद्यान (प्रमोदवन), राजभवन, राजउद्यान—समुद्रघर।

पात्र— पुरुष 11, स्त्री 11

पात्र परिचय—पुरुष—सूत्रधार, परिपाश्वक, अग्निमित्र—राजा, वाहतक—मंत्री, विदूषक, कंचुकी, गणदास, हरदत्त—नाट्याचार्य, सारक, कुब्ज—किंकर, वैतालिक।

स्त्री—मालविका—मालव राजकुमारी, राजा माधव सेन की बहन

धारिणी—अग्निमित्र की प्रथम पत्नी

ईरावती—अग्निमित्र की द्वितीय पत्नी

परिव्राजिका—मालव राज की विधवा बहन

बकुलवलिका—धारिणी की परिचारिका

मधुलिका—मालिन, कौमुदिका—दासी

समाहिविका—परिव्राजिका की परिचारिका

निपुणिका—इरावती की परिचारिका

जयसेना—प्रतिहारी, चेरी—अपरा दासी

मदनिका तथा ज्योत्स्निका—विदर्भ के शिल्पी की कन्याएं

कथा—विदिशा में दो नाट्याचार्य हैं गणदास तथा हरदत्त। महारानी धारणी के साथ महाराज गणदास की चित्रशाला में मालविका का चित्र देख जानना चाहते हैं कि यह कौन है। दरबार में दोनों नाट्याचार्य एक—दूसरे की शिकायत लेकर आते हैं। राजा फैसले के लिये मालवराज की विधवा बहन परिव्राजिका को बुलाते हैं और वे कहती हैं पहले दोनों के सिखाये शिष्यों की कला देखी जाय। आयोजन होता है और गणदास की शिष्या मालविका नृत्य करती है। उसका नृत्य देखकर राजा उस पर मोहित हो जाते हैं। वे मालविका से मिलते हैं, वह भी इनके प्रति आकर्षित है। दूसरी रानी इरावती चाहती है कि अशोक में फूल आवें। रानी धारिणी पैरों में मेंहदी लगाये हैं और विदूषक सर्पदंश का नाटक करता है। समुद्र घर में दोनों प्रेमी मिलते हैं। माधवसेन की विदर्भ राज्य पर विजय होती है। ज्ञात होता है कि मालविका मालव राजकुमारी है और मालवराज ने विजय की खुशी में उसे राजा अग्निमित्र के पास भेजा है। रानी धारिणी दोनों के विवाह की तैयारी करती है। सर्वत्र मिलन की खुशी है।

टिप्पणी—यह श्रृंगार—विरह और संयोग रस का सुन्दर नाटक है। संस्कृत मंच पर खेला गया है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि कालिदास

कमलापति मिश्र

वाचक : हिमालय का उन्नत आँचल, सुरभित उपत्यका, विहगों के कलरव से गूँजती वाटिका, उसके बीच खड़ा लकड़ी का रँगा सुन्दर भवन, तोरण–द्वार के दोनों ओर मन्दार के तरु, द्वार के सिरों पर लिखे शंख और पद्म, शयनागार की देहली पर बैठा कवि, सेज पर औंधी लेटी पत्नी।

कवि : (गुनगुनाता है)

'तदेतदुन्मीलय चक्षुरायतम्।
निशावसाने नलिनीव पंकजम्।।'

खोलो, दिगंत तक फैले अपने ये नयन खोलो कि रात बीते वृन्द पर कमल खिल जाय।

पत्नी : उँ..... हुँ।

कवि : उठ जा, उठ जा मेरी मानिनि! कदम्ब–सी कंटकित मेरी काया लस रही है, वासंती।

वासंती : लस रही होगी काया, बस रही होगी नयनों के कोरों में कादम्बिनी की छाया, डँस गया होगा नाग, मधुयामिनी का।

कवि : कादम्बिनी की छाया मेरे नयन कोरों में नहीं, उन उपान्तों में डोलती है, जिनकी भौं काली बाँकी बरौनियों ने श्वेताभ कोयों पर श्याम वितान तान दिया है।

वासंती : सच है ! सच कवि?

कवि : सच। और जब श्वेत कोये इधर–उधर चंचल डोलते हैं, तब बरौनियों से लगता है, जैसे कोई जुही का फूल फेंके जा रहा है और भौंरों की भाँति उनके पीछे कभी इधर–कभी उधर उड़ी जा रही है।

वासंती : रीझे कवि, रीझ चले?

कवि : रीझा। जब तुमने भौंहों की चढ़ी प्रत्यंचा उतार ली, मान तज दिया।

वासंती : सो कब ! मैंने मान तजा कब? भला पिछली साँझ का ही माँगा नन्दन के सरवर का कँवल तुमने तोड़ा।

कवि : तोड़ा। जब वातायन की राह बजाय बयार के, चोर को घुसते देखा।

वासंती : ऐं, चोर को? (सिर उठाकर आँखें खोल देती है, चकित पूछती है।)

कवि : हाँ, चोर को। इन्दीवर के चोर अरुण को। जब कंचन–बिम्ब धारी मरीचिमाली ने अपने कोमल करों का जाल पद्मासन की–सी श्वेत शैय्या पर डाला, तो मैं विचलित हुआ। वातायन बन्द कर दिया। अपवारित करों से लाचार चोर लौटा। शैय्या की दीर्घिका में एकाकी कमल–नाल पर अकेला कमल–सम्पुट नीरव रज रहा था, शतदल केवल दो दल हो गया था, अरुणाम् अधर पल्लव और मैंने कँवल, अपने मन का कँवल लोढ़ लिया।

वासंती : तो चोर अरुण नहीं था, वातायन से प्रवेश करने वाला बिम्ब धारी मरीचिमाली नहीं चोर घर का था, कवि ! पर सच बोलो, मेरे मन के कँवल का क्या हुआ। क्या उसे नहीं लोढ़ा?

कवि : लोढ़ा, उसे भी लोढ़ा। तुम्हारे सोते में ही जब उषा ने प्राची के द्वार खोले, अरुण जब अम्बर के चँदोवे तले दिशा के भाल पर केसर का तिलक बन उतरा, नन्दन के सरवर के कँवल को कंपित करों से हजार किरनों से उसने परसा, तभी ग्यारहों प्राण अंजलि में डाल अरुण को प्रणाम कर, उसके काँपते करों को वर्जित कर कँवल मैंने लोढ़ लिया।

वासंती : कहाँ है फिर मेरी साध का वह कँवल?

कवि : उधर, जो तुम्हारे करवट लेते वातायन की ओर सरक गया है। तुम्हारे आलता–रचे अधरों की लालिमा से लजा गया है, परसो उसे।

वासंती : (सहसा उठकर खिले कमल को उठाकर चूमती हुई) मेरे अभिमत, फिर मेरे अनगिनत मान तुम्हारे अभिलाख पर निछावर। उठो, देहली से उठो।

कवि : (उठकर पास आता हुआ) अनुगृहीत हुआ, धन्य !

वासंती : विष्णु के–से अमिताभ हो तुम, गगन के–से व्यापक, चन्द्र की किरनों–से कोमल। नरम–गरम तुम्हारी परस एकान्त की कामना हो। तनधर अनंग मेरे !

कवि : कनेर की कलिके, बकुल की मनहर मंजरी, बबूल के फूल से टटकी भरी सुरभि की लहराती वल्लरी। व्यापी इस काया के कन–कन में, मेरी अमा के निर्जन में, राका की कौमुदी में !

(दृश्य–2)

वासंती : (रुँधे गले से) तुम्हें प्राण सौंप दिये थे, मेरे मनहर ! पर हाय ! मैत्री का वह घना नाता तोड़ तुम सहसा चले गये, जैसे रोके जल का प्रवाह बाँध तोड़ कमलिनी को छोड़कर अपरिचित की भाँति बह जाता है।

दासी : धीर धरें स्वामिनी, स्वामी लौटेंगे।

वासंती : तुमने कभी कुछ मेरा अप्रिय नहीं किया, मैंने तुम्हारा कभी कुछ अप्रिय नहीं किया, फिर इस विलपती दयिता से विछोह क्यों?

दासी : स्वामी परवश थे, स्वामिनी !

वासंती : स्वामी, मुझ मानिनी को मनाने के लिए तुम काँपते तन से मेरे चरणों पर अपना मस्तक रख देते थे, फिर मुझे मनाकर हृदय से लगाते थे।

दासी : उठें स्वामिनि, चित्त को स्थिर करें। विगत की याद देह को जर्जर कर देगी।

वासंती : वसंत के कुसुम भार से मेरे अंगों को सजाते थे–अलकों में, जूड़े में, वेणियों में, कानों में, कलाइयों पर, भुजाओं में, कंठ पर किया तुम्हारा वह कुसुम–प्रसाधन, फिर मोह कर कह उठना–तुम्हारा यह रुचिर तन, वासंती!

दासी : प्रसाधन ! सपना हो गया प्रसाधन ! दुःख से सूखी अपनी देह देखो। रूखी स्नेह हीन ये लटें, ये बिखरे बाल, काजल से सूनी ये आँखें, आलते–से बिछुड़े ये निर्वर्ण होंठ, पत्रलेख से विरहित यह सूना मुखड़ा।

वासंती : (भर्रायी आवाज में) रमण दायाँ पैर रँग चुके थे, बायें का प्रसाधन अभी शेष था कि भर्ता की आज्ञा से, उसके दंड से काँपकर चले गये। छल किया जो मुझे सब बताया तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

नहीं–बायें पैर का वह प्रसाधन, हाय, आज भी अधूरा है। (सिसक पड़ती है)।

दासी : स्वामिनी, धीर धरकर यह विगलित काया अपनी एक बार सँजो लो, स्वामी वर्षांत में आयेंगे। देह को नासों नहीं, तनिक सँभालो इसे। देखो तो, यह देह, जो कभी रसिकों के उपमानों का आदर्श बनती थी, भला इसकी दशा क्या हो गयी है।

वासंती : भोली, देह की चारुता कैसी जो सुहाग में फल न पायी। अरी उस सजने का लाभ क्या, जिसे मन भर निहार कर सजन लुट न जाय, निहाल न हो जाय, निहाल न कर दे!

दासी : फिर भी उठो स्वामिनि, मुँह धो डालो। वह तुम्हारा सुआ पास रखे अन्न–जल को तज तुम्हारे नाम की रट लगाये जा रहा है। तुम्हारी वह सारिका पिंजड़े में फड़फड़ा रही है, अर्थहीन गा रही है।

वासंती : (चुप है)।

दासी : उठो, चलो स्वामिनी, तनिक कदम्बों की ओर, मन्दारों की ओर, गूँजते भौरों को देखो, आरत कूकती श्यामा को परसों, सुए को दाना दो। भीतर यहाँ कितना सूना है, बाहर कितना कोलाहल।

वासंती : (पहले गुनगुनाती हुई, फिर हल्के स्वर से)

मैं हेरूँ घर घाट पिया को
पिया भये बनवासी।
किससे हिय की बिथा सुनाऊँ
रोम–रोम की प्यासी।।

(दृश्य–3)

वाचक : वर्षों के बाद! उज्जयिनी के राजभवन के अन्तःपुर के बाहरी दालान में फैले भद्रपीठ पर वितान तले चन्द्रगुप्त की साम्राज्ञी ध्रुवदेवी वासंती के साथ विराजमान हैं। चरण स्वर्ण की पादपीठी पर टिके हैं। दासियाँ मोर्च्छल झल रही हैं। सामने प्रसन्न मन कवि कालिदास भद्रासन पर बैठे हैं।

रानी : फिर, कवि, फिर।

कवि : फिर भट्टिनि, बंगों की भूमि पर गंगा की धाराओं के बीच शत्रु संघ बनाकर उतरे और तब आदित्य ने उनके पोतों को जलमग्न कर दिया। उनकी सेनाएँ भरभराकर भागीं, कालिंगों के हाथी बिदक गये, शकों के दल केसरी के चोट से गजदल के–से तितर–बितर हो लाट–सौराष्ट्र की ओर, पश्चिम की ओर भागे। केसर–मंडित चन्द्र बिम्ब ने विद्युत् वेग से उनका पीछा किया।

वासंती : शत्रु–संघ के प्रति अभियान! कवि, संकट–काल था।

कवि : मेघाच्छन्न अम्बर की भाँति ही, देवि! जब तक चन्द्र बिम्ब शरद् के प्रहार से बादल बिखरा उसे निर्मल नील नहीं कर देता।

रानी : लाट–सौराष्ट्र शकों की अपनी भूमि है, कवि।

कवि : उसी उनकी अपनी भूमि पर उन्हें नष्ट कर चन्द्र ने शकारि विरुद धारण किया। शक सागर की राह भागे, जावा की ओर, लवंग–द्वीपों की ओर।

रानी : पारसीकों से भी तो समर ठनने की बात सुनी थी?

कवि : तब अपनी विजयवाहिनी लिये, सागर की सरल राह छोड़, शकारि मरु के कठिन मार्ग से उत्तर की ओर चले। सिन्धु पार के मरु में अतीत की भटकी–नसी सेनाओं की समाधियाँ उस आदित्य विक्रम की राह न रोक सकीं, जिसका तेज दक्षिण में भी दक्षिणायित सूर्य की भाँति मद्धिम न हो सका था।

रानी : उसके बाद ही तो पारसीकों की भूमि पड़ती है, कवि!

कवि : सिन्धु पार के सिन्ध पर्वतों की अभ्रभूमि को दाहिने छोड़ते राजा अपनी कटक लिये पारसीकों की भूमि पर जा उतरे। सामने पारसीकों की अश्व–सेनाएँ चट्टान–सी खड़ी थीं।

रानी : फिर, कवि! अश्वानीक पारसीक तो बड़े प्रबल हैं।

कवि : कभी थे, देवि! उनकी समकालीन प्रबलता चन्द्र ने अतीत में बदल दी। जैसे वज्र का प्रहार पर्वत की छाती विदीर्ण कर देता है, चन्द्र के अश्वानीकों ने पारसीकों की उस दीवार को प्रबल आक्रमण से तोड़ दिया।

रानी : अच्छा!

कवि : फिर जब मधु के छत्तों की भाँति दाढ़ियों से भरे मस्तकों से ढकी उस द्राक्षावलय भूमि पर पगड़ियाँ उतार, गले में लपेटे, दाँतों तले तृण दबाये पारसीक चन्द्र के पैरों पड़े, तब उस धर्मविजयी शरणागतों के आश्रय चन्द्र ने उनके प्राण रख लिये।

रानी : पारसीकों की भूमि–द्राक्षावलय–भूमि दारवों से ढकी वह धरा–कवियों में कवि हो तुम।

वासंती : फिर तो छककर पी होगी तुमने?

रानी : तुम्हारे विजयी मित्र ने भी और फिर पारसीक वनिताओं की मधुश्री!

कवि : अकारण आघात न करें, देवि! निःसन्देह सेना ने आपानक रच द्राक्षा का आसव छक–छककर पिया, मैंने भी उदार मन से चषकों में लाल हाला ढाली।

रानी : फिर वासंती की याद आयी।

वासंती : पारसीक वनिताओं की मधुश्री के सामने वासंती की याद भला कैसी!

कवि : आयी, भट्टिनि, वासंती की याद कसकर आयी। पर बात तो विजयी मित्र की पूछी गयी थी न!

रानी : हाँ–हाँ मित्र की बात कहो...!

कवि : मित्र पारसीक नारियों के मधु–मद पर न रीझे, न रीझे! आत्मसंयमी चन्द्र उनकी मदिर आशाओं को वैसे ही नग्न कर चले, जैसे ओले टूटकर कमल–वन को अकाल विनष्ट कर देते हैं।

रानी : अच्छा, फिर कवि?

कवि : फिर, देवि, विजयवाहिनी उत्तर की ओर चली, वक्षु की घाटी की ओर। नदी के आँचल में, रानी, केसर फूलती है। पर केसर को लोढ़ते वहाँ दुर्दम वन्य हूण हैं। आदित्य विक्रम राजा ने नष्टविक्रम हूणों को पामीरों के पार भगा दिया और उनकी केसर भरी भूमि में अपने घोड़े हिरा दिये। घोड़ों की सटें केसर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कणों से आरक्त रँग गयीं।

वासंती : आदित्यविक्रम की महिमा कल्पनातीत है।

रानी : अच्छा, फिर क्या हुआ ?

कवि : फिर आगे कश्मीर के उत्तर–पच्छिम की भूमि पड़ती थी, कम्बोज कबीलों की पराक्रम–भूमि। कम्बोजों की ठसक तोड़ राजा ने अखरोटों से अपने हाथी बाँधे। फिर पूरब की पीली जातियों का गुमान हरते चन्द्र लौटे। घोड़ों की टापों से झरती गेरु की धूल से पर्वतराज की चोटियाँ ऐसी लगीं, जैसे कुछ और ऊँची उठ गयी हों।

रानी : अच्छा !

कवि : जैसे पर्वतराज की चोटियाँ कुछ और ऊँची उठ गयी हों। विजयी सैनिकों का सिंहनाद सुन, अपनी गरज के धोखे से, गुहाओं में सोये सिंह कुछ उचके, सहमे, फिर चुपचाप सो गये।

वासंती : भला यह विजय का वर्णन हैं या कवि की व्यंजना।

रानी : वासंती, तू उद्दीपक–आलंबन न बन ! वरना तुम्हारा यह कवि और बहक जायेगा। हाँ, कवि, फिर ?

कवि : शीतल पवन भोजपत्रों में मरमर करता, बाँसों के छेदों में रम बाँसुरी बजाता–सा, गंगा की नीहारिकाओं से चन्द्र की सेना की थकान हरता जा रहा था। सैनिक नमेरु तरुवों की छाया में पड़ी कस्तूरी मृग की परस से बसी शिलाओं पर जा बैठे। साँझ हुई, रात आयी।

रानी : (वासंती से) कहा नहीं, मैंने। तूने कवि को बहका दिया। अब तू ही दूध का दूध, पानी का पानी कर बता कि इसमें कितना यथार्थ है, कितना काव्य !

कवि : सच कहता हूँ, देवि! पूरब की राह किरातों से भरी थी, पीतकाय चिनवसनधारी पहाड़ियों से वे भभराकर भागे। किन्नरियों नें विजय–गीत गा अपना संगीत सार्थक किया।

वासंती : यह निश्चय सत्य है। (दोनों हँसती हैं, कवि भी हँसता है)।

रानी : फिर, कवि, फिर क्या हुआ ?

कवि : आगे पूरब हिमालय के उतार पर भोटों की दिशा से आया, लौहित्य–ब्रह्मपुत्र नद है। उसी के तीर लौहित्यों की राजधानी प्राग्ज्योतिष है। वहाँ प्रकाश की पहली पौ फटती है, अरुण के स्पर्श से नदी का जल लोहित–लाल हो जाता है। उस नदी के पार कामरूपों का राजा खड़ा अगुरु के तरु की भाँति, थर–थर काँप रहा था। राजा ने उसकी सोने की राशियों की भेंट ले उसे अभयदान दिया। फिर विजयवाहिनी और आगे बढ़ी, नागों के उस प्रदेश में जहाँ इच्छा–मात्र से रूप बदल देने वाली ललनाएँ रहती हैं, पूरब की जादूगरनियाँ।

दोनों : अच्छा, वह कामरूप का देश !

कवि : हाँ, कामरूप का जादू का देश। नागी–नागाओं का देश, जहाँ अर्जुन कभी उलूपी के कुंचित कुंतलों में उलझ गए थे, पर जहाँ के नागों को मथते हमारे कृष्णचन्द्र अलीक लौट आये।

रानी : कहाँ हैं, देव ?

कवि : दूर नहीं, बस पिछले ही पड़ाव पर।

रानी : अब कुछ सुनना शेष न रहा।

कवि : रहा, देवि !

रानी : वह क्या, अब क्या होगा ?

कवि : राजाओं के दो मोह होते हैं देवि, धरा और भामिनी। सो राजा अब इस सागर–पर्यन्त पुष्पहासिनी धरा को उसकी सौत के साथ.....।

रानी : चुप, कवि, चुप !

कवि : और मेरे इस दीर्घ संदेश–वहन का पुरस्कार।

रानी : (वासंती को पकड़कर आगे करती हुई) यह रहा, लो अपनी यह थाती।

वासंती : मैं.....मैं.....।

कवि : अनुगृहीत हुआ, देवि !

(दृश्य–4)

(महाकाव्य का प्रांगण। पटह की आवाज। 'जय–जय महादेव ! जय भोलानाथ' के बीच घंटे की ध्वनि। निरन्तर गूँजती ध्वनि। तभी कालिदास के कंधे पर कर धरे राजा के साथ रानी ध्रुवदेवी और वासंती का प्रवेश।

नेपथ्य में–शकारि विक्रमादित्य की जय! दिग्विजयी आदित्य विक्रम की जय! रानी ध्रुवदेवी की जय !

पुरोहित : नीललोहित की इस नगरी अवन्ती की अपनी राजधानी उज्जयिनी में दिग्विजयी विक्रम का स्वागत !

राजा : (प्रणाम कर) अनुगृहीत हुआ, गुरुवर ! सब महाकाल के प्रसाद का परिणाम है। देवकार्य आरम्भ हो।

पुरोहित : देव, नृत्य में निपुण छः देवदासी शिल्पिकाएँ महाकाल की सेवा में उपस्थित हैं। आज उनका चमरधारिणी–नर्तन देखें।

राजा : ध्यानस्थ हूँ। नृत्य प्रारम्भ करें।

(नृत्य धीरे–धीरे पार्श्वों से उठता है। घुँघरू की गूँज पसर चलती है।)

राजा : (कालिदास से, धीरे से) आज नीलकंठ की यह गजचर्मधारी मूर्ति भी यहाँ है। इसके भी यहाँ दर्शन कर लो। तांडव अभिराम है।

कवि : तांडव के प्रचंड वेग से जैसे ब्रह्मांड घूमने लगा है। नीचे पड़े मर्दित काल–पुरुष पर जीवन का नृत्य है यह। गति का वेग सूने वायु–मंडल में संघात उत्पन्न करता है, गुणों के विकार से प्रकृति लचक उठती है, सृष्टि सिरज चलती है। (नृत्य चलता रहता है)।

कालिदास : या सृष्टिः

स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्माच होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्। यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः, प्रत्यक्षामिः प्रपन्नस्तनुमिखतु वस्तामिरष्टा भिरीशः।।

(जयनाद के बीच राजपरिवार चला जाता है। पटह बजता रहता है। घंटे गूँजते रहते हैं। जय महाकाल ! जय भोलानाथ ! जय शंकर की हल्की लहर पसर चलती है।)●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास–रचित "रघुवंश"–महाकाव्य का रेडियो–रूपान्तर

रूपान्तरकार–कमलापति मिश्र

कालिदास–शास्त्रों के अनुसार ही जो यज्ञ करते थे, याचकों को मनचाहा दान देते थे, अपराधियों को अपराध के अनुसार दण्ड देते थे, अवसर देखकर ही काम करते थे, दान करने के लिए धन संचय करते थे, यश बढ़ाने के लिए ही जो विजय–यात्रा पर जाते थे, बाल्यावस्था में जो विधाएं पढ़ते थे, तरुणाई में संसार के भोगों का आनन्द लेते थे, वृद्धावस्था में मुनियों के समान जंगलों में रहकर तपस्या करते थे और अन्त में योग द्वारा अपना शरीर त्यागते थे, ऐसे गुणी, महातेजस्वी अद्भुत पराक्रमशाली, कर्मयोगी रघुवंशियों के चरित्र का वर्णन में कर सकूँ, यही मेरी कामना है।

(सितार का मन्द–मन्द स्वर)

नटी–जैसे वेद के छन्दों में पहिले ओम् है, वैसे ही राजाओं में सबसे पहले सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु हुए और फिर उन्हीं वैवस्वत के उज्जवल वंश में सबको सुख देने वाले और अत्यन्त शुद्ध चरित्र वाले राजा दिलीप ने वैसे ही जन्म लिया, जैसे सागर में चन्द्रमा ने जन्म लिया था।

नट–जैसे सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता से संसार के सब दृढ़ पदार्थों को दबा दिया है, अपनी चमक से सब चमकीली वस्तुओं की चमक घटा दी है, अपनी ऊँचाई से सब ऊँची वस्तुओं को नीचा दिखा दिया है और अपने विस्तार से सारी पृथ्वी को ढक लिया है; वैसे ही राजा दिलीप ने भी अपने बल, तेज और ज्ञान से सारी पृथ्वी को अपने वश में कर लिया था।

निनाद

मन्त्री–यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज। जिसके राज्य में यज्ञ–धूम से समस्त आकाश सुगन्धित रहता है, इन्द्र आदि देवता भी जिसको मैत्री के लिए उत्सुक रहते हैं, जिसको सेना से भी आगे उसका यश चलता है, वह इस प्रकार की बात करे! आश्चर्य !

दिलीप–परन्तु, स्वर्गलोक में पितृगण क्या सोचते होंगे? मुझे इस राजपद से विरक्ति हो गयी है। तुम्हीं सोचो, मेरा पौरुष और सारा पराक्रम किस लाभ का, यदि मैं अपने पितरों को सन्तुष्ट न कर सका। मैं जब भी यह ध्यान करता हूँ कि मेरे दुर्भाग्य के कारण इस प्रसिद्ध सूर्यवंश का अस्तित्व ही एक दिन मिट जाएगा, तो मेरे हृदय में जो वेदना होती है, क्या उसका अनुमान कर सकते हो?

मंत्री–किन्तु महाराज, अभी से इतनी चिन्ता क्यों? भगवान् ने चाहा तो महारानी सुदक्षिणा शीघ्र ही आप के इस अभाव को पूरा करेंगी। क्या सारी प्रजा का आशीर्वाद और कुलगुरु वशिष्ठ की कृपा निष्फल जाएगी?

दिलीप–(सोचते हुए) कुलगुरु वशिष्ठ की कृपा। कुलगुरु की कृपा। ठीक कहते हो मंत्री। हां! यही उपाय है। मन्त्रिवर, तुमने मुझे मार्ग दिखा दिया। बस, तो फिर यही हो। सुना मन्त्रिवर, महारानी सुदक्षिणा और मैं कुछ दिनों के लिए कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाकर उनकी सेवा करेंगे। तब तक प्रजा की रक्षा और राजकीय देखभाल मैं तुम्हें सौंपता हूँ।

मंत्री–किन्तु महाराज।

दिलीप–इसमें किन्तु–परन्तु की कोई बात नहीं। तुमने मुझे मार्ग दिखाया है, मंत्रिवर। अब उस मार्ग के विघ्न न बनो। शुभ निश्चय में यह शंका कैसी? मंत्रिवर। सारथी को आज्ञा दो कि रथ तैयार करे और महारानी को इस निश्चय की सूचना दो। हम शीघ्र से शीघ्र यहां से चल देना चाहते हैं। अब मुझसे एक क्षण का विलम्ब सहा नहीं जाता।

मंत्री–जैसी महाराज की आज्ञा।

(रथ की ध्वनि और झरनों तथा पक्षियों का स्वर)

दिलीप–सारथी, रथ की गति और बढ़ा दो। मेरा मन उड़ने को हो रहा है। देवि, देखो तो कितने आश्चर्य की बात है कि मुझे कभी इस उपाय का ध्यान ही नहीं आया। आज मेरे मन में बड़ी शान्ति है। भला, जिसे महर्षि वशिष्ठ की कृपा प्राप्त हो, उसे फिर क्या चिन्ता।

सुदक्षिणा–मेरा भी बायां अंग फड़क रहा है। मुझे विश्वास है कि मेरी कामना अवश्य सफल होगी।

(शीघ्रता से रथ का प्रस्थान)

सुदक्षिणा–उधर देखिए, स्वामी। हमारे रथ की गड़गड़ाहट, सुनकर वे झुण्ड मोर ऊपर मुँह उठाकर कैसे निहार रहे हैं। लगता है, उन्हें बादलों की गड़गड़ाहट का भ्रम हुआ हो। और देखिए उधर वे हिरनों के जोड़े एक टक हमारी ओर अनुराग से निहार रहे हैं।

दिलीप–वे अबोध यह नहीं जानते कि इन नयनों से वे जीत नहीं सकते।

सुदक्षिणा– (हंसकर) इतनी प्रशंसा न कीजिए, जो मिथ्या जान पड़े।

दिलीप–देखो, प्रिय, इस उन्मुक्त पथ में शाल की गोंद के गन्ध में बसा हुआ, फूलों का पराग बढ़ता हुआ, नवरात्रि को धीरे–धीरे कंपाता हुआ यह पवन कितना सुहावना लग रहा है। और आकाश में उड़ते हुए मधुभाषी बगुलों की यह पांत ऐसी लगती है, मानों स्तम्भहीन वंदनवार हो। हमारे घोड़ों की टापों से उड़ती हुई धूल रथ की गति के कारण हमें छू तक नहीं पाती।

सुदक्षिणा–यह देखिए, स्वामी! इस ताल में खिले हुए इन कमलों पर ये भौंरें झूम झूमकर कैसे गूंज रहे हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
Mumukshu Bhawan Varanasi Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिलीप–यह जनसमूह कैसा है? रथ थोड़ा धीमा कर दो।

(रथ धीरे–धीरे रुक जाता है)

जनसमूह–महाराज दिलीप की जय हो। सूर्यवंश–शिरोमणि दिलीप की जय हो।

एक व्यक्ति–राजन्। आज हमारे परम सौभाग्य का दिन है, जो आपके दर्शन हुए।

दिलीप–यह आप क्या कह रहे हैं, विप्रवर? श्री चरणों में मेरा प्रणाम।

एक व्यक्ति–कल्याण हो।

सुदक्षिणा–सुदक्षिणा हो देवि। तुम्हारे पुण्य से सूर्यकुल का विस्तार हो।

दिलीप–क्षमा करें आप। हमें तुरन्त जाना है। अन्यथा आपकी सेवा का यह अवसर मैं कभी नहीं छोड़ता।

एक व्यक्ति–तो महाराज, यह भेंट स्वीकार करें।

दिलीप–हां.....हां..... यह क्या, विप्रवर।

एक व्यक्ति–कुछ नहीं महाराज। आपके ही दान की गायों का नवनीत है।

दिलीप–मैं धन्य हुआ। चलो सारथी।

(रथ की ध्वनि, फिर रथ धीरे–धीरे रुक जाता है)

दिलीप–लो, प्रिये। गुरु वशिष्ठ के आश्रम में हम पहुंच गए। वह देखो, उधर सन्ध्या के अग्निहोत्र के लिए समिधा, कुश और फल लिए मुनिगण आश्रम को लौट रहे हैं। और मृग के झुण्ड इस प्रतीक्षा में पर्णकुटियों के द्वार रोके खड़े हैं कि ऋषि पत्नियां उन्हें तिन्नी के चावल खिलाएंगी। और उधर देखो, ये पक्षी वृक्षों के थालों का जल कैसे स्वच्छन्द होकर पी रहे हैं। (लम्बी सांस खींचकर) अग्निहोत्र की सुगन्ध से सारा वायुमण्डल सुगन्धित है।

सुदक्षिणा–देखिए महाराज। वे गुरुदेव पधार रहे हैं।

वशिष्ठ–आइए, आइए, राजन्, स्वागत है।

दिलीप और सुदक्षिणा साथ साथ–गुरुदेव के चरणों में प्रणाम

वशिष्ठ–कल्याण हो वत्स। पृथ्वी तुम्हारी छाया से फले फूले।

(जनसमूह का कोलाहल और पदचाप)

वशिष्ठ–इधर बिराजिए, राजन्, इधर विराजिए। कहिए, इस कष्ट का हेतु? राज्य में कुशल मंगल तो हैं?

दिलीप–गुरुदेव, कुशलता तो आपकी कृपा की अनुगामिनी है। आपकी कृपा से प्रजा में सर्वत्र सुख और शान्ति है। आपके मन्त्रों की शक्ति से सारी विपत्तियां दूर रहती हैं। आपके यज्ञों की आहुति से खेत धन–धान्य–सम्पन्न हैं, किन्तु.....।

वशिष्ठ–किन्तु क्या राजन्।

दिलीप–गुरुदेव, आप त्रिकालज्ञ हैं। आपसे क्या मेरे मन की बात छिपी है। अब मैं स्वयं क्या निवेदन करुं। आप तो जानते ही हैं।

वशिष्ठ–(हंसकर) चिन्ता त्याग दो वत्स। जिसे सप्तद्वीपा जैसी रत्नागर्भा वसुंधरा और साक्षात् लक्ष्मी जैसी देवी सुदक्षिणा प्राप्त हो, उससे अधिक सौभाग्यशाली कौन हो सकता है।

दिलीप–तो गुरुदेव! फिर निर्देश कीजिए। मैं जिससे पितरों के ऋण से मुक्त हो सकूं।

वशिष्ठ–इतने अधीर मत बनो, राजन्। मैं अभी बताता हूँ।

(विराम)

दिलीप–(कान मैं) देखो प्रिये। गुरुदेव ध्यान में मग्न उस ताल के समान लग रहे हैं, जिसकी सब मछली सो गयी हों। मेरा मन कह रहा है कि हमारा मनोरथ पूरा होगा।

वशिष्ठ– (ध्यान से जागकर) राजन्, मैंने योगबल से जान लिया कि तुम्हें अभी तक संतान का सुख क्यों नहीं मिला। बहुत दिन हुए, एक बार तुम स्वर्ग से इन्द्र की सेवा करके अपनी राजधानी की ओर लौट रहे थे, मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी। किन्तु विचार–मग्न होने के कारण तुमने उनकी पूजा और प्रदक्षिणा नहीं की। इसी कारण कामधेनु ने रुष्ट होकर तुमको शाप दिया है।

दिलीप–(भयभीत होकर) तो गुरु देव, इसका उपाय?

वशिष्ठ–केवल एक उपाय है, वत्स। तुम कामधेनु की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करो।

दिलीप–सेवक तत्पर है।

वशिष्ठ–किन्तु, ठहरो, राजन्। इसमें एक कठिनाई है। इस समय वरुणदेव पाताल में एक विराट यज्ञ कर रहे हैं। कामधेनु भी वहीं गयी हुयी है। जब तक वे लौट न आवें।

दिलीप–परन्तु गुरुदेव, मुझे तो एक पल भारी हो रहा है। क्या आप और कोई उपाय नहीं बता सकते?

वशिष्ठ–मुझे सोचने दो, वत्स। (हां, यह ठीक है) कामधेनु तो नहीं, परन्तु उनकी पुत्री नंदिनी मेरे आश्रम में है। वन से लौटकर अभी आती ही होगी। तुम शुद्ध मन से उसकी सेवा करो। भगवान् ने चाहा तो तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा।

दिलीप–गुरुदेव की आशा शिरोधार्य है।

(दूर पर गाय का स्वर, घन्टी की ध्वनियाँ।)

वशिष्ठ–यह लो राजन्। नाम लेते ही नंदिनी आ पहुंची। अब तुम्हारी सफलता में कोई सन्देह नहीं है जाओ। अब विश्राम करो। देवी सुदक्षिणा थक गयी होंगी और कल प्रातःकाल से नंदिनी की सेवा प्रारम्भ कर दो। मेरा आर्शीर्वाद तुम्हारे साथ है।

दिलीप–मेरा पूर्ण सौभाग्य है।

(ध्वनि विन्यास) सितार का मन्द–मन्द स्वर)

नट–जिस दृढ़ता और लगन से यशस्वी राजा दिलीप पृथ्वी की रक्षा करते थे, उसी लगन से अब उन्होंने नंदिनी की सेवा करना आरम्भ किया। प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक राजा नंदिनी के साथ–साथ जाते। उसे भूखी समझकर उसके भोजन का प्रबन्ध करते और उसकी देह को सहलाते। इस प्रकार इस राजदम्पति को सेवा करते पूरे इक्कीस दिन व्यतीत हो गए।

नटी–तब नंदिनी ने सोचा कि राजा दिलीप की परीक्षा ली जाए। एक दिन जब दिलीप नंदिनी की सेवा करते–करते वन की ओर गए तो सहसा देखते हैं कि एक सिंह अचानक नंदिनी पर झपटा। ज्यों ही, उन्होंने सिंह को मारने के लिए तूणीर से बाण निकालना चाहा, त्यों ही, उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंगुलियां बाण से चिपक गयीं। लाख प्रयत्न करने पर भी वे अपने हाथ मुक्त नहीं कर सके। अन्त में और कोई उपाय न देखकर उन्होंने सिंह से निवेदन किया कि वह नंदिनी के स्थान पर उनकी अपनी देह से क्षुधा मिटा ले। ऐसा कहकर वे सिंह के सामने झुक गए।

(बादल घोष)

नदी–तभी आकाश से राजा दिलीप के ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी। राजा दिलीप ने सिर उठाया तो देखा नंदिनी बड़े वात्सल्य से उनकी और देख रही है और सिंह का, कहीं नाम भी नहीं। इस प्रकार राजा की परीक्षा समाप्त हुई और नंदिनी से उनको उनका मनचाहा वरदान मिला। नंदिनी के वरदान–स्वरुप सुदक्षिणा ने एक परम तेजस्वी बालक को जन्म दिया। कालान्तर में इसी काल में सूर्य वंश की कीर्ति को ऊँचे शिखरों तक पहुंचाया और इसी के नाम पर सूर्यवंश को रघुवंश की संज्ञा मिली।

नट–रघु जब ग्यारह वर्ष के हो गए तब दिलीप ने उनका यज्ञोपवीत करवाया। पंडित लोग उन्हें सब विधाएं पढ़ाने लगे। जैसे सुन्दरता की देवी मुरझाए हुए कमल को छोड़कर नए कमल पर चढ़ जाती है, वैसे ही राजलक्ष्मी भी बूढ़े दिलीप को छोड़कर धीरे–धीरे रघु पर पहुंच गयी।

नटी–जैसे वायु की सहायता से अग्नि, शरद् ऋतु के खुले हुए आकाश को पाकर सूर्य और मद बहने के कारण हाथी प्रचंड हो जाता है, वैसे ही प्रतापी रघु की सहायता से दिलीप भी इतने शक्तिशाली हो गए, कि उनके शत्रु उनसे कांपने लगे।

इन्द्र के समान प्रभावशाली दिलीप ने यज्ञ के घोड़ों की रक्षा का भार रघु को सौंपकर निन्यान्नबे अश्वमेघ यज्ञ बिना बाधा के पूरे कर लिए। तब दिलीप ने सौंवा यज्ञ करने को घोड़ा छोड़ा। भला इन्द्र कब यह सह सकते थे। वे चुपके से धनुर्धारी रघु के देखते उस घोड़े को चुराकर भाग चले।

(निनाद)

(रथ और घोड़ों के भागने की ध्वनि)

रघु–(हंसकर) ठहरिए, इन्द्रदेव। इस प्रकार फौरन भागना आपको शोभा नहीं देता। मेरा निवेदन तो सुनते जाइए।

(रथ की ध्वनि रुक जाती है)

इन्द्र–(जल्द गम्भीर स्वर में) क्या बात है युवराज। शीघ्र कहो। मुझे विलम्ब हो रहा है।

रघु–देवराज, मैं आपके इस भोलेपन की प्रशंसा करता हूँ। हमारे यश का घोड़ा आप चुप चाप चुराए चले जा रहे हैं और मुझी से आप पूछते हैं कि क्या बात है? इस वेदविहित अनुष्ठान में आप क्यों बाधक हो रहे हैं? यश में विघ्न डालने वालों को कड़ा दण्ड देना और यज्ञ के लिए शान्तिपूर्ण वातावरण स्थापित करना आपका कार्य है। यदि आप ही बाधक बनेंगे तो संसार से धर्म ही लुप्त हो जाएगा।

इन्द्र–राजकुमार, तुम जो कहते हो, वह निःसन्देह सत्य है। किन्तु कुछ ऐसा ही कारण आ पड़ा है कि मैं यज्ञ की सफलता सहन नहीं कर सकता।

रघु–यह आप क्या कह रहे हैं, देवराज। मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।

इन्द्र–मैं ठीक कह रहा हूँ युवराज। मैं चाहता हूँ कि तुम इस विषय में न पड़ो। जो मैं कर रहा हूँ, उसे करने दो।

रघु–यह असम्भव है, देवेन्द्र। यह न भूलिए कि आप किससे बात कर रहे हैं। मेरे पिता परम प्रतापी महाराज दिलीप के अश्वमेघ–यज्ञ का घोड़ा आप चुरा ले जाएं और उनका पुत्र रघु खड़ा देखता रहे।

(थोड़ा हंसते हुए)

इन्द्र–मैं एक बार फिर कहता हूँ राजकुमार। तुम अभी मेरे सामने बालक हो। मुझे जाने दो।

रघु–किन्तु अपने इस विस्मयकारी व्यवहार का कारण तो बताइए। आप मुझे सन्तुष्ट नहीं करते तो जान लीजिए मेरी धमनियों में उस सूर्यवंश का रक्त है, जिसके पराक्रम के बल पर ही इन्द्र का वैभव है।

इन्द्र–तुम्हारी बातों पर मैं मुग्ध हूं राजकुमार, किन्तु तुम्हारे हठ पर नहीं। जानना ही चाहते हो तो सुनो। तुम्हारे पिता निन्यान्नबे अश्वमेघ पूरे करके भी सन्तुष्ट नहीं हुए। अब सौवां यज्ञ पूरा करके वे शतकतु बनना चाहते हैं। मेरी बराबरी करना चाहते हैं। भला इसे मैं कैसे सहन कर सकता हूँ।

रघु–किन्तु इसमें सहन करने की बात ही क्या है। आपको तो इस शुभ कार्य से प्रसन्न होना चाहिए। ईर्ष्या के वश होकर अनुचित कार्य करना लघुता है।

इन्द्र–तभी तो कहता हूँ कि तुम अभी बालक हो। तुम यह नहीं जानते कि जिस प्रकार यज्ञ करना आर्यों का कर्तव्य है, उसी प्रकार अपने यश की रक्षा करना यशस्वियों का कर्तव्य है। अभी तक शतकतु के नाम से केवल मैं विख्यात हूँ। तुम्हारे पिता मेरी इस ख्याति को नष्ट करना चाहते हैं।

रघु–किन्तु कार्य में बाधा देकर यश की रक्षा करना अनुचित है। यदि आप सचमुच यश की रक्षा चाहते हैं, तो शुभकार्य में सहयोग भी बनिए। इस ईर्ष्या का त्याग कीजिए।

इन्द्र–व्यर्थ तर्क मत करो, राजकुमार। मेरी शक्ति रहते तुम्हारे पिता शतकतु नहीं हो सकते।

रघु–तो आप भी जान लीजिए कि मेरी शक्ति रहते आप इस अश्व को नहीं ले जा सकते।

इन्द्र–हठ मत करो बालक। तुम यह मत भूलो कि ऐश्वर्य के मद में हठी सगर–पुत्रों की क्या दशा हुई थी। अपने पूर्वजनों से शिक्षा लो।

रघु–अपना कर्तव्य मैं स्वयं पहचानता हूँ इन्द्रराज और अपने पूर्वजों से शिक्षा लेकर ही मैं आपसे बातें कर रहा हूँ। क्या आप भूल गए महाराज भगीरथ के यश को जिनको पुण्य–कीर्ति यह महानदी गंगा आज आपको हरिष का दान देती है।

इन्द्र–मैं एक बार फिर कहता हूँ रघु कि तुम मुझे लड़ने के लिए विवश न करो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रघु–(हंसकर) कदाचित् आप सोचते हैं कि मैं युद्ध के नाम से डर जाऊँगा। सूर्यवंशियों के लिए युद्ध से बढ़कर गौरव की बात और कोई नहीं है। यदि आपने यही निश्चय किया है तो उठाइये शस्त्र। पुण्य की परीक्षा हो चुकी, वीरता की भी हो जाए।

(युद्ध का तुमूल घोष)

इन्द्र–धन्य राजकुमार। तुम्हारा पराक्रम अद्वितीय है। पर्वतों के पंख काटने वाले मेरे वज्र का प्रहार तुम्हीं सह सकते हो। मेरा सौभाग्य है कि जो तुमसे युद्ध कर सका। मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। इस घोड़े को छोड़कर तुम मुझसे और कुछ मांगना चाहो, मांगो।

रघु–किन्तु देवेन्द्र। मैं तो घोड़ा ही चाहता हूँ। जिसके लिए इतना उत्पात हुआ, उसी को छोड़ दूँ। क्या अभी कोई परीक्षा शेष है।

इन्द्र–नहीं वत्स। मेरी इतनी बात तुम रख लो। अन्यथा इन्द्र की कीर्ति नष्ट होने से सूर्यवंश की हानि ही होगी, लाभ नहीं।

रघु–यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे वरदान दें कि इस घोड़े के बिना ही मेरे पिता को अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हो।

इन्द्र–तथास्तु। तुम जैसे वीर हो, वैसे ही चतुर भी। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे द्वारा सूर्यवंश की कीर्ति अक्षय हो और आगे चलकर वह रघुवंश के नाम से विख्यात हो।

(ध्वनि विन्यास)

नट–इन्द्र की कृपा से महाराज दिलीप को अश्वमेघ यज्ञ प्राप्त हुआ। जब रघु राजधानी लौटकर आए तो दिलीप ने उन्हें गले से लगा लिया। ऐसे यशस्वी पुत्र को पाकर उन्होंने अपना भाग्य सराहा। कुछ समय पश्चात् सूर्यवंश की परम्परा के अनुसार युवराज रघु को विधिवत् राज्य सौंपकर महाराज दिलीप ने वानप्रस्थ धारण किया और राजधानी त्याग कर वन का मार्ग ग्रहण किया।

नटी–जैसे सन्ध्या के सूर्य से तेज लेकर अग्नि चमक उठती है, वैसे ही अपने पिता से राज्य पाकर रघु और भी अधिक तेजस्वी हो गए। रघु के सिंहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो गयी, फूलों की सुगन्ध बढ़ गयी और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वों के गुण भी बढ़ने लगे। उजले हंसों की उड़ती हुई पांतों, रात में खिले हुए टिमटिमाते तारों और तालों में खिली हुई कली को देखकर यह जान पड़ता था कि रघु की कीर्ति ही असंख्य रुप बनकर फैली हुई है।

नट–सौभाग्यशाली रघु ने पहले राजधानी और सीमा के गढ़ों की रक्षा का प्रबन्ध किया, फिर शुभ मुहूर्त में हाथी, रथ, पैदल, गुप्तचर और शत्रुओं के राज्य के मार्ग को जानने वाले सैनिकों को लेकर रघु दिग्विजय लिएचल पड़े।

(सेना का तुमूल घोष और दिग्विजय का संगीत)

इति जित्वा दिशो विष्णुर्न्यवर्त्तत रथोद्धतम्।
रजां विश्रामयन्राज्ञां छत्रशून्येषु मांलिषु।।
स विश्वजितमाजल्वं यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम्।
आदानं हि विसर्गाय, सतां वारिमुचामिव।।

नटी–दिग्विजय से लौटकर रघु ने विश्वजित यज्ञ किया, जिसमें उन्होंने सारी सम्पत्ति दक्षिणा में दे दी।

(निनाद)

(सितार)

नटी–सूर्यवंश के महाराज रघु की कीर्ति से दिशाएं व्याप्त हो गयीं। इन्द्र तुल्य पराक्रमी और शंकर के समान दानी रघु को पाकर यह घरा वास्तव में धन्य हो गयी। तपस्वी कौत्स ने अन्तःकरण से जो आशीर्वाद दिया था, वह वास्तव में सफल हुआ। शुभ मुहूर्त में महाराज रघु को पुत्र लाभ हुआ।

नटी–राजकुमार अब ज्यों–ज्यों बड़े होते गए, त्यों–त्यों उनकी दीप्ति रघु के समान ही होती गयी। स्वजन–पुरजन सभी उन्हें प्यार करते थे।

नटी–जब राजकुमार अज वयस्क हुए, तो महाराज रघु को उनके विवाह की चिन्ता हुई। उसी बीच में विदर्भ देश के राजा मौज ने अपनी बहन इन्दुमती के स्वयंवर का निमंत्रण भेजा। महाराज रघु की आज्ञा पाकर सेना सहित राजकुमार अज ने विदर्भ देश की ओर प्रस्थान किया।

(निनाद)

(स्वयंवर का कोलाहल, शंखध्वनि, मंगलवादन, पृष्ठवान)

एक राजा–वह देखो, राजकुमारी इन्दुमती आ पहुंची। अहा हा। क्या रुप है।

दूसरा राजा–कितना सौभाग्यशाली होगा वह। जिसके कंठ में कमलनाल–सी ये भुजाएं पड़ेंगी।

(कोलाहल)

राजा मोज–देश–देश के राजकुमारों। विदर्भ देश का शासक मैं आपका स्वागत करता हूँ। आशा है, जिस शुभ कार्य के लिए आप यहाँ उपस्थित हुए हैं, उसके सुचारु संपादन में आप मुझे सहयोग देगे। राजकुमारी इन्दुमती मेरी बहिन है। पर उन्हें मैंने अपनी पुत्री की भांति पाला है। मेरा आदेश है कि ये स्वेच्छा से अपने जीवन संगी का वरण करें।

(वीणा वादन)

सुनन्दा–देवि, देखिए यह है मगध नरेश। ये बड़े पराक्रमी हैं। शरणागत के आश्रयदाता हैं। अपनी प्रजा को सुख देने में ये प्रसिद्ध हैं। आप यदि इनके साथ विवाह करेंगी तो राजधानी पाटलिपुत्र आपके चरणों पर निछावर रहेगी।

(विराम)

अच्छा, अब आगे चलिए।

सुनन्दा–यह देखिए। ये हैं अंगदेश के राजा। इनके यौवन को देखकर सुर बालाओं को भी ईर्ष्या होती है। पृथ्वी पर उनका प्रताप इन्द्र के समान है और इन्द्र की कीर्ति के समान ही इनका ज्ञान है। यद्यपि लक्ष्मी और सरस्वती स्थापतयः परस्पर विरोधी हैं, किन्तु इनके पास दोनों मिलकर रहती हैं। यदि आप चाहें तो आपको दोनों का सामीप्य प्राप्त हो सकता है।

इन्दुमती–(कान में) सखी, आगे चलो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनन्दा–वह देखो, वे जो लम्बी भुजा, विशाल वक्ष और सुन्दर कटि के कारण सूर्य के समान चमक रहे हैं, वे हैं अवन्ती के नरेश। यदि आप अवन्ती के चन्द्रिका–सिंचित उद्यानों में विहार करना चाहती हैं और शिप्रा के शीतल समीर का सौरभ समेटना चाहती हों तो आप उन्हें वरें। और वे उस कोने में उस कोने में जो राजा विराजमान हैं, वे हैं माहिष्मती के नरेश महाराज अनूप। सलोनी लहरों वाली नर्मदा का मोहक नृत्य अपने राजभवन के झरोखों से यदि आप देखना चाहती हैं, तो आप इन्हें वरें।

इदुमती–(कान में) व्यर्थ समय नष्ट न करो सखी।

सुनन्दा–इधर आइए देवि। ये हैं मथुरा के महाराज। यदि आप वनमाली कृष्ण की वंशी के मधुर रव के गुंजित वृन्दावन के घने कुंजों में विहार करना चाहती हैं तो आप इन्हें वरें।

इन्दुमती–सखी, व्यर्थ के भाषण रहने दो। केवल परिचय कराती चलो।

सुनन्दा–जो आज्ञा, देवि। देखिए, ये हैं कलिंग–नरेश हेमांगद। और ये हैं नागपुर–राज पॉड्य।

इंदुमती– (कान में) ये सम्मुख जो बैठे हैं, कौन हैं?

सुनन्दा–आइए देवि। देखिए ये हैं इक्ष्वांकुवंशीय सूर्यवंश–शिरोमणि परम प्रतापी महाराज दिलीप के पौत्र और यशस्वी महाराज रघु के पुत्र सर्वगुण सम्पन्न परम प्रतिभाशाली युवराज अज। और ये हैं।.....

इंदुमती–बस रहने दो। मेरे पाँव काँप रहे हैं। मुझसे और चला नहीं जायेगा।

(कान में)

सुनन्दा– यों कहिए देवि कि निर्वाचन हो चुका। संकोच न करें। लीजिए, यह माला। अब विलम्ब कैसा।

(शहनाई : भैरवी)

नटी–इस प्रकार राजकुमार अज और अनुपम सुन्दरी इन्दुमती का पावन सम्बन्ध हुआ। मानो चन्द्रमा से चांदनी का, समुद्र से गंगा का मेल हुआ हो। विवाह के बाद जब अज अपने नगर की ओर चले तो ऐसा लगता था, मानो देव–सेना के साथ साक्षात् स्कंद जा रहे हों। ज्यों ही अज ने राजधानी में प्रवेश किया, सारी प्रजा ने अपनी पलकें बिछाकर उनका स्वागत किया और पुरवालों ने उन पर फूल बरसाए।

नट–अभी राजकुमार अज ने विवाह का मंगलसूत्र भी नहीं उतारा था कि महाराज रघु ने उनके हाथों में सारी पृथ्वी इस प्रकार सौंप दी, मानो वह भी दूसरी इन्दुमती हो और स्वयं कुल–परम्परा के अनुसार राजवैभव छोड़कर नगर के बाहर कुटी बनाकर रहने लगे। रघु का वन–गमन और उसका राज्यरोहण दोनों मिलकर ऐसा लग रहा था, मानो सूर्यवंश–रुपी आकाश में चन्द्रमा अस्त हो रहा हो और सूर्य प्रकट हो रहा हो।

नटी–अज ने अपने बाहुबल से शत्रुओं को निःशेष कर दिया। कुछ वर्ष संसार में रहने के बाद महाराज रघु ने योनवध से मोक्ष प्राप्त किया। यद्यपि उनके जाने से अज को बड़ी व्यथा हुई, तथापि तत्वज्ञानी पंडितों के उपदेश से उन्होंने सन्तोष किया।

नट–पृथ्वी और रानी इन्दुमती दोनों अज जैसे महापराक्रमी को पति–रुप में प्राप्त करके फूली न समाई। प्रतिदान में पृथ्वी ने बहुमूल्य रत्न और इन्दुमती ने पुत्र रत्न को जन्म दिया।

(शहनाई)

नटी–और इस प्रकार रघुवंश को, नवीन गौरव प्रदान करने वाले महा तेजस्वी दशों दिशाओं में अपनी कीर्ति की दुंदुभी गुँजने वाले महाराज दशरथ का उदय हुआ। जिनके शासनकाल में पृथ्वी ने अभिनव कीर्ति प्राप्त की। महाराज दशरथ अपने मनोरथ से चक्रवर्ती हो गए और जिस प्रकार सारी नदियां सागर को अपना दान देकर अपने को धन्य मानती हैं, उसी प्रकार संसार भर के राजाओं ने दशरथ का प्रभुत्व स्वीकार कर अपने को धन्य समझा।

(काव्यपाठ)

दिशा–दिशा में व्याप्त हो गयी,
अब रघुकुल की कीर्ति विमल।
नए–नए रत्नों से भूषित,
स्वर्ग बन गया वसुधा तल।
खेतों में धन धान्य खिले थे,
नभ देता था आशीर्वाद।
सरिताएं बढ़ती जाती थीं,
करती रघुकुल का जयकार।

(निनाद)

विग्रह के अंकुर उठे,
तभी कैकेयी के वरदानों में।
दशरथ ने तन भी त्याग दिया,
बस एक टेक थी प्राणों में।
ये दोनों वनवासी वन में भी,
शान्त, सुखी थे, कर्म निरत।
राघव के विशियों से लंका,
तक पहुंचा नवजीवन का व्रत।
यों मिटा भूमिका भार सभी।
करते थे, जय जयकार सभी।

नटी–सम्पूर्ण राजवंशों में जिस प्रकार, रघुवंश श्रेष्ठ था, उसी प्रकार रघुवंशियों में राजा रामचन्द्र श्रेष्ठ हुए। उसके पावन चरित्र में न्यायप्रियता, इतने उन्नत स्तर पर पहुंच चुकी थी कि उन्होंने अपनी जीवन–संगिनी, प्राणमिक देवी तुल्य, साध्वी सीता को भी त्याग देने में संकोच न किया।

नट–दिलीप की गो सेवा, रघु का पराक्रम, दशरथ का सत्यप्रेम एक से एक बढ़कर गुणों के कारण रघुवंश अमर कीर्ति प्राप्त कर सका। राम के पत्नि त्याग ने जिस नए आदर्श की स्थापना की, वह रघुवंश के लिए भी नया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृत सीता–परिस्थानः सरत्नाकरमैखताम्।

बुभुजे पृथिवीपासः पृथ्वीमिव कैवलाम्।।

(सरिता का कल–कल निनाद और पक्षियों की चहचहाहट)

एक स्वर–आज प्रातःकाल से ही मुझे लग रहा है कि कुछ होने वाला है।

दूसरा स्वर–बड़े ज्योतिषी हो न। चलो, गुरुदेव के यज्ञ की सामग्री जुटाओ। व्यर्थ की बातों में तुम्हें कौन परास्त कर सकता है।

एक स्वर–अरे वह देखो कौन आ रहा है। दीप्त स्वर्ण–सा वर्ण है। चौड़े स्कन्धों पर शरासन, मस्तक पर चन्दन। हो न हो, यह कोई नरेश हैं।

दूसरा स्वर–मूर्ख हंसना भी नहीं जानता। आज हमारा जीवन धन्य है, जो महाराज रामचन्द्र के दर्शन हुए।

(विराम)

रामचन्द्र–तपस्वी, मैं महर्षि वाल्मीकि के दर्शन करना चाहता हूँ।

दूसरा स्वर–पधारें देव। स्वागत है। इधर आइए, महाराज।

(विराम)

रामचन्द्र–रघुवंश का यह सेवक महर्षि वाल्मीकि के चरणों में प्रणाम करता है।

बाल्मीकि–स्वागत है, यशस्वी। युग–युग तक तुम्हारा गुणवान हो। कहिए, कैसे कष्ट किया?

रामचन्द्र–अधर्मी शंभूव को शास्ति देने आया था। इतने निकट आकर आपके दर्शनों से वंचित कैसे रहता।

वाल्मीकि–तुम्हारे कार्य पूरा करने के पहले ही उसका दृश्य दिशाओं में फैल जाता है। शंभूक का संवाद मुझे मिल चुका है। न्याय और धर्म की रक्षा करके तुमने वेदों की परम्परा अक्षुण्ण रखी है। तुम वास्तव में रघुकुल शिरोमणि हो।

रामचन्द्र–यह सब आपके ही आशीर्वाद का प्रताप है। मुनिवर। यदि मेरे इस तुच्छ जीवन से यश की अखण्ड ज्योति की रक्षा हो सकी तो मैं अपने आपको धन्य मानूँगा।

वाल्मीकि–प्रजा पुरजन ही क्या पशु पक्षी तक तुम्हारी छाया में निर्भय विचारते हैं।

(दूर पर दो बालकों का समवत गान)

पावक की लपटों में आवृत

वह देवी ऐसी लगती थीं।

मानो सुमेरु के मस्तक पर

उषा की ज्योति दमकती थी।

रामचन्द्र–कितना मधुर स्वर है। लो, मेरी दायीं आँख क्यों फड़क रही है। मुनिवर, वे बालक कौन है? मैं जानने को विवश हूँ।

बाल्मीकि–और मैं बताने को। किन्तु राम, आज नहीं। कल राजसभा में उन्हें लेकर उपस्थित होऊँगा। तब तक धैर्य रखें। किन्तु.....।

रामचन्द्र–किन्तु मुनिवर। मेरा मन बड़े वेग से उनकी ओर आकर्षित हो रहा है। अभी बता देने में क्या हानि है?

वाल्मीकि–इतने अधीर न हों, राजन्। समय पर.....।

रामचन्द्र–अरे क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ (अपने आप) सीते, मेरी सीते, तुम यहाँ।

बाल्मीकि–तुम यहीं रहो राम। मैं अभी आता हूँ।

(विराम)

रामचन्द्र–उस लतामण्डप में क्यों छिपी हो, देवि। तुम्हारे अभाव में इन बुझे हुए नयनों को अपने रूप की ज्योति दो। मेरी रानी, इधर आओ।

सीता–हां। आर्य पुत्र। (मूर्छित हो जाती है)।

(राजसभा का कोलाहल)

रामचन्द्र–इस प्रकार मुझे राजमहिषी सीता के दर्शन प्राप्त हुए। आप जानते हैं, रघुकुल में कभी किसी ने कर्तव्य के सम्मुख अपने प्राणों तक का मोह नहीं किया। अपने वंश के गौरव की रक्षा का भार मेरे कन्धों पर है। लोकापवाद के कारण मुझे सीता परित्याग का दुःख उठाना पड़ा है। किन्तु फिर भी मैं जीवित हूँ। क्योंकि दुःख में प्राण त्याग करना भी पाप है। अब प्रजाजनों का जो आदर्श हो, में सहर्ष उसे स्वीकार करूंगा।

अनेक कंठ–महारानी निर्दोष हैं। आप उन्हें ग्रहण कीजिए। हम अपनी आराध्य देवी को राम सिंहासन पर समुपस्थित देखना चाहते हैं। देवी की जय। महाराज रामचन्द्र की जय।

सीता–(स्वागत) आर्यपुत्र, तुम धन्य हो। तुमने अपने स्थान और तपस्या से रघुकुल का सारा कल्मष मिटा दिया। इससे बढ़कर आज किस सुख को देखने के लिए मैं जीवित रहूं।

माता पृथ्वी। यदि मैंने आजन्म मन–वचन कर्म से पति की सेवा की हो तो अब मुझे अपने अंक में स्थान दें।

(चमत्कारिक संगीत और स्वर : आश्चर्य। महान् आश्चर्य)

नटी–सीता का पातिव्रत और राम का प्रजाहित हमारी संस्कृति के आदर्श का प्रतीक है।

नट–रघुकुल की परम्परा हमारे इतिहास की परम्परा है। रघुवंश की गाथा हमारी भूमि की गौरव गाथा है।

गीत–

अमर है, रघुकुल की यह रीति।

हरी–भरी हो भूमि,

प्रजाधर शासक की हो प्रीति।

अमर है, रघुकुल की यह रीति।

मुनि–रक्षा को दण्ड उठे।

प्रण पालन को दें प्राण।

तृण सम त्याज्य कुल वैभव,

दे जीवन का दान।

विविध आयु से मिले विविध गुण,

दूर रहे भय–भीति।

अमर है, रघुकुल की यह रीति।। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास

कमलापति मिश्र

देवदत्त : सुना तुमने। सिंहल के महाराज कुमारदास ने कवि कालिदास पर प्रसन्न होकर अनेक उपहार भेजे हैं।

यज्ञदत्त : सुन चुका हूँ, देवदत्त ! बहुत दूर-दूर तक कवि का सम्मान फैल चुका है।

देवदत्त : हमारे महाराज विक्रमादित्य ने कवि की इस ख्याति पर प्रसन्न होकर आज एक सभा बुलायी है।

यज्ञदत्त : हमारे महाराज कम गुणग्राहक थोड़े ही हैं। वे स्वयं कवि और विद्याप्रेमी हैं।

देवदत्त : अवश्य। मैं तो वहीं जा रहा था।

यज्ञदत्त : तो चलिए।

(चलने और रुकने का थोड़ा विराम)

देवदत्त : मालूम होता है, कवि का सम्मान हो चुका। अब सभापति का भाषण हो रहा है। विलंब हो गया।

यज्ञदत्त : कोई बात नहीं। सुनो, सभापति जी क्या कह रहे हैं?

सभापति : हमारे कवि ने अपनी कृतियों में समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य और परस्पर का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। उन्होंने अपने महाकाव्यों में, गीतिकाव्यों में और नाटकों में समान रूप में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया है। किसी भाव का चित्रण करते समय हमारे कवि एक अनूठी शैली का प्रयोग करते हैं। हमारे कवि की रसमयी रुचिर रचनाओं पर 'क्षणे क्षणे यन्त्वतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती है। हमें कवि पर अभिमान है। कवि से प्रार्थना है, वे कुछ सुनाकर हमें तृप्त करें।

(साधु–साधु की ध्वनि)

देवदत्त : देखिये, देखिये यज्ञदत्त। कवि उठ रहे हैं। सुनिये, क्या कहते हैं?

यज्ञदत्त : अच्छा। कवि अपनी कविता सुनाने जा रहे हैं।

देवदत्त : और क्या ! शांतिपूर्वक सुनिये।

(विराम)

कालिदास : आप लोगों ने मेरी सरस्वती का जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। मैं भरसक नवीन दृष्टि से अपने देश, अपने समाज और सारी प्रकृति को देखने का प्रयास करता हूँ। रघुवंश के बारहवें सर्ग में भारतीय सौन्दर्य की आकर्षक–समृद्धि का वर्णन मैंने इस प्रकार किया है–

क्वचित्प्रभालेपिमिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टि–

रिवानुविद्धा। अन्यत्र माला
सितपङ्कजाना–मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव।।
क्वचित्खगानां प्रियमानसातां
कादम्बसंसर्गवतीवषङ्क्तिः।

अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दन–

कल्पितेव।। क्वचित्प्रमा चान्द्रमसी तमोभि–

श्छायाविलीनैः शबलीकृतेव। अन्यत्र शुभ्रा

शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा।।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा

तनुरीश्वरस्य। पश्यानवद्याङ्गि विभाति गंगा

भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः।।

हे निर्दोष अंगों वाली सीते, गंगा और यमुना के संगम को तो देखो। यमुना की तरंगों से मिलता हुआ गंगा का प्रवाह कितना सुन्दर प्रतीत होता है। कहीं तो ऐसा मालूम पड़ता है कि मोतियों की लड़ी में चमकीले नीलम पिरो दिये गये हों, कहीं ऐसा भान होता है कि श्वेत कमलों की माला में नीले कमल बीच–बीच में गुंथे हों। कहीं नीले हंसों की श्रेणी में आ मिलने वाली मानस प्रेमी उज्ज्वल हंसों की पंक्ति के समान, कहीं कलागुरु की चित्र रेखाओं से सुशोभित भूतल की चंदन चर्चित चित्रकारी की भांति, कहीं वृक्षों की छाया में अंधकार से मिलने वाली धवल चन्द्रिका के समान, कहीं शरत्कालीन शुभ्र मेघ–खण्डों के अन्तराल से देख पड़ने वाले नभःप्रदेश के समान और कहीं काले सर्पों से अलंकृत तथा भस्मांग–राग से मंडित भगवान शंकर के शरीर के समान गंगा–यमुना के संगम का यह मनोहर दृश्य शोभित हो रहा है।

(साधु–साधु)

कालिदास : मेरा अहोभाग्य है कि आपकी इतनी अनुकंपा है।

देवदत्त : मैं मेघदूत का एक वर्णन सुनना चाहता हूँ।

यज्ञदत्त : कवि हमारी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करें।

कालिदास : आप लोगों की जो आज्ञा। मेघदूत एक विरह पीड़ित, उत्कंठित हृदय की मर्मभरी आह है। मैंने प्रयत्न किया है कि उसके प्रत्येक गीत में यक्ष की विह्वलता, उसकी विकलता, उसकी कातरता, उसके स्पन्दन और उसके क्रन्दन की करुण ताल झंकृत कर सकूँ। मैंने यक्ष–पत्नी के बाह्य एवं आन्तर सौन्दर्य का एक सुकुमार और करुण अंकन किस प्रकार उभारा है, सुनिए–

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।

गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वसु गच्छत्सु बालां

जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनी वान्यरूपाम्।।

हे मेघ, विरह–चिंता के कारण चुप रहने वाली मेरी उस प्रियतमा को मेरा दूसरा प्राण ही जानना, जो मुझसे बिछुड़कर अपने सहचर से वियुक्त चक्रवाक की भांति विरह की हूक सह रही होगी। वियोग के इन दीर्घ दिनों में मेरी उस वियोगिनी प्रिया की दशा कमलिनी के समान होगी, जो पाला पड़ने के कारण मुरझा गयी हो। अलका की सुरम्य और आनन्दमयी नगरी में वही नारी दुःखी और अकेली होगी। उस आभूषणहीन, अधीर, कृश शरीर वाली मेरी पत्नी को देख हे मेघ, तुम्हारा भी आर्द्र हृदय भर आयेगा और तुम्हारे नयनों से नीर झरने लगेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे विरह के दिन से ही वह देहली के फूलों की धरती पर फैलाकर गिनती होगी कि अब विरह के कितने दिन बाकी हैं। मेरे वियोग में रोते–रोते उसके नेत्र सूज गये होंगे। उष्ण निःश्वासों से उसके अधरों का वर्ण फीका पड़ गया होगा। चिंता के कारण वह हाथ पर कपोल रखकर बैठी होगी। बिखरे केशों के कारण उसका अस्पष्ट देख पड़ने वाला कमनीय मुखचन्द्र मेघाच्छन्न चन्द्रमा के समान धुंधला और उदास दिखायी दे रहा होगा।

मेरा एक बसन्त वर्णन इस प्रकार है–

रक्ताशोकरुचा विशोषितगुणो बिम्बाधरा–

लक्तकः प्रत्याख्यातविशेषकं कुरबकं श्यामा–

वदातारुणम्। आक्रान्ता तिलकक्रिया च

तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनःसावज्ञेव मुखप्रसाध–

कविधौ श्रीर्माधवी योषिताम्।।

लाल अशोक की ललाई से रमणियों के बिम्ब रूप अधरों की ललाई लज्जित हो रही है। श्याम, शुभ्र और लाल रंग के कुरबक के पुष्प रमणियों के मुख पर चित्रित मकरिका–पत्र को फीका कर रहे हैं। काले भौंरों से लिपटे हुए तिलक के फूलों ने रमणियों के ललाट पर अंकित तिलक को आभाहीन कर दिया है। लगता है, बसन्त आज रमणियों के मदिर शोभा–श्रृंगार का निरादर करने पर तुल गया हो।

सभापति : धन्य हो, कवि धन्य हो ! तभी तो तुम्हारी वाणी पृथ्वी से समुद्र तक गूंज रही है।

कालिदास : सरस्वती का प्रसाद है। अन्यथा मुझ साधारण से यह सब संभव नहीं है।

सभापति : उपस्थित सज्जनों, आप लोगों को यह सुनकर बड़ा हर्ष होगा कि हमारे कवि को सिंहल के महाराज कुमारदास ने कुछ दिनों के लिए अपने यहां आमंत्रित किया है। वे स्वयं बड़े अच्छे कवि हैं।

(कदापि नहीं, कदापि नहीं' की आवाजें)

सभापति : हमारे कवि ने हमारे देश का मस्तक ऊँचा किया है। उन्होंने हमारी कीर्ति चारों ओर फैलायी है। सिंहल तक हमारी सभ्यता का विस्तार हुआ है। सिंहल यदि हमारे कवि का सम्मान करना चाहता है, तो कुछ दिनों के लिए हमें अपने कवि को वहाँ जाने देना चाहिये। कवि का विस्तार असीम होता है, आर्यों उसे हम एक सीमा में नहीं बांध सकते।

('जायें–जायें' की आवाजें)

सभापति : धन्यवाद है, आप लोगों को। इससे हमारी सभ्यता का प्रकाश दूर–दूर तक फैलेगा और लोग हमारी उदारता की प्रशंसा करेंगे।

(द्वितीय दृश्य)

कोलाहल, बाजे, मंगल गान

कुमारदास : भारत के महान् कवि को कुमारदास प्रणाम करता है।

कालिदास : विजयी हों, महाराज। मैं भारत की ओर से और अपनी ओर से आपका अभिनन्दन करता हूँ। महाराज विक्रमादित्य ने आपको प्रगाढ़ आलिंगन कहा है।

कुमारदास : धन्य हूँ कविवर, मैं धन्य हूँ। अद्भुत प्रतिभा है, आपकी। आइये, रथ प्रस्तुत है।

कालिदास : चलिये।

कुमारदास : पहले कवि रथ को सुशोभित करें।

कालिदास : आप भी विराजें।

(रथ चलता है)

कुमारदास : कवि, आइये, सेवक की यह कुटी है। (विराम) इधर आयें, इस कक्ष में विश्राम करें। आज सिंहल की धरती धन्य हुई।

कालिदास : जो आज्ञा !

(तृतीय दृश्य)

दूर से कोमल संगीत और वीणा की ध्वनि

कुमारदास : कवि, सुन रहे हो।

कालिदास : हूँ।

कुमारदास : यह गान सुनोगे।

कालिदास : इस लय ने तो मेरी हृद्तन्त्री झंकृत कर दी। सुप्त राग और तानों का सागर लहरा उठा। मित्र, बताओ तो यह कौन हैं।

कुमारदास : बारयोषित्।

कालिदास : संभव नहीं।

कुमारदास : पर सच है, मैं जानता हूँ, बड़ी रूपवती है।

कालिदास : 'स्त्रीति नामैव पेशलम्', फिर यदि वह सुन्दरी और सहृदय हो !

कुमारदास : आइये, चलें।

कालिदास : नहीं, महाराज !

कुमारदास : चलने में कोई आपत्ति नहीं।

(दरवाजा खटखटाने का शब्द)

मंजरी : (घबराई हुई) महाराज! महाराज! बैठिये–बैठिये !

कुमारदास : मंजरी, घबरा क्यों रही हो?

मंजरी : इस समय। ऐसे छद्मवेश में।

कुमारदास : हाँ, मंजरी ! आज अपने इस कवि मित्र के साथ घूमने निकला था। तुम्हारी वीणा का स्वर सुनकर इधर चला आया।

मंजरी : ये आर्य कौन हैं?

कुमारदास : महाकवि कालिदास।

मंजरी : मेघदूत के महागायक ! महाकवि कालिदास ! मेरा जीवन धन्य हुआ। चरणों में प्रणाम करती हूँ।

कालिदास : कैसा सुगठित शरीर; कैसा मधुर कंठ ! बसन्त से भी अधिक मादक रूप ! इस लावण्य को अनुभव करके तो सुख से आंखें मुंदने लगती हैं।

मंजरी : लज्जित न करें, कविवर!

कुमारदास : मित्र, ये बड़ी अच्छी कविता करती हैं।

कालिदास : आश्चर्य क्या इसमें ! ये स्वयं भी तो कविता की अनुभूति–सी लगती हैं। इनकी एक–एक चेष्टा हृदय में कोमलता के कंपन का एक–एक स्वर उभारती है।

कुमारदास : ठीक कह रहे हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास : तो देवि, कोई कविता सुनायें।

कुमारदास : इतने भाग्यशाली नहीं हो कविवर कि एक बार में ही तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली जाये।

कालिदास : स्त्रियों का वार्तालाप विभ्रम से प्रारम्भ हुआ तो क्या। मैं इतना भाग्यशाली नहीं होना चाहता कि मेरी पहली प्रार्थना स्वीकृत हो।

मंजरी : लगता है, वाणी और बुद्धि एक हो गयी हो। कवि, तुम अपने स्वर के सौरभ से पुलकित करो। मैं... मैं तो मौन...।

कालिदास : कोई बात नहीं, सुन्दरी। मौन हो ही जाओ। तुम वारुणी हो। दर्शन मात्र से मादकता उत्पन्न होती है।

कुमारदास : तो देवि, आज आज्ञा दें।

मंजरी : इतने दिन बाद तो आये। विराजिये न !

कुमारदास : कवि शिथिल हो रहे हैं। फिर कभी।

कालिदास : आयेंगे ! नित्य! नित्य। जीवित ही स्वर्ग में कौन नहीं जाना चाहेगा। तो आज आज्ञा दो। कल...कल...।

(विराम)

कुमारदास : आज क्या नाटक किया तुमने।

कालिदास : यह स्त्री भयानक है, मित्र!

कुमारदास : क्या कह रहे हो, कवि ?

कालिदास : बहुत सही कह रहा हूँ।

कुमारदास : मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।

कालिदास : जानते हो, 'दैवो न जानाति.... ।'

कुमारदास : बात क्या है ?

कालिदास : मैंने स्त्री–जाति का अध्ययन किया है।

कुमारदास : मंजरी में क्या देखा !

कालिदास : लोभ, लोभ !

कुमारदास : जानते हो कवि, उसके पास अगणित महार्थ रत्न हैं।

कालिदास : तभी तो उसका लोभ नहीं शांत हो सकता।

कुमारदास : आज तुम्हें हो क्या गया है?

कालिदास : अंर्तदृष्टि।

कुमारदास : चलो, शयन करो। तुम्हारी प्रतिभा आज कुछ कुंठित लग रही है।

(मंजरी का घर। वीणा का हल्का–हल्का संगीत)

कुमारदास : मंजरी, तुमने तो कवि को वश में कर लिया। कभी–कभी तो कवि तुम्हारे यहां से कई दिनों तक नहीं जाते।

मंजरी : आपकी कृपा का प्रसाद है। कवि जब भावावेश में होते हैं, रह जाते हैं। कभी–कभी तो मुझसे बोलते भी नहीं।

कालिदास : वह भी एक अवस्था होती है मंजरी, जब बोलते नहीं बनता।

कुमारदास : कोई रचना सुनाओ, कवि।

कालिदास : इधर तो कोई नयी कविता नहीं लिखी।

कुमारदास : तुम्हारी कविता तो आसव के समान होती है। जितनी पुरानी हो, उतनी उत्तम।

कालिदास : अच्छा सुनो। शकुन्तला के स्वरचित अधूरे चित्र को देखकर दुष्यंत कह रहे हैं कि अभी इस चित्र में इन बातों की कमी रह गयी है–

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी, पादास्तामभितो निषण्णहरिणागौरी–

गुरौः पावनाः। शारालम्बितवल्कलस्य च

तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः, शृङ्गेः कृष्णमृगस्य

वामनयनं कण्ड्यमानां मृगीम।।

इस चित्र में एक तो मालिनी नदी का दृश्य होना चाहिए, जिसके रेतीले तट पर हंसों के जोड़े बैठे हों। उसके समीप ही हिमाचल की पावन उपत्यिका का दृश्य हो, जहाँ हरिण बैठे हुए जुगाली कर रहे हों। फिर एक विशाल वृक्ष हो, जिसकी शाखाओं पर सूखने के लिए वल्कल वस्त्र लटक रहे हों और जिसके नीचे एक काले मृग की सींग से उसकी सहचरी हरिणी अपनी बाई आँख की कोर धीरे–धीरे खुजला रही हो।

मंजरी : धन्य हो कवि! तुम अपनी कल्पना का विभव मुझे नहीं दे सकते।

कालिदास : अपने को भी नहीं दे सकता! विधाता ने जितना दिया है, उसी से सन्तोष करता हूँ।

कुमारदास : इतने से भी संतोष नहीं?

कालिदास : घोर असंतोष है !

मंजरी : यदि मुझे विधाता ने इतना भी दिया होता !

कालिदास : लोभ बहुत अनुचित है, मंजरी !

मंजरी : संतोष नहीं होता, कवि !

कुमारदास : बहुत दिनों से समस्यापूर्ति का कौतुक नहीं किया गया।

मंजरी : कवि सम्मिलित होंगे।

कालिदास : समस्या पूर्ति का कार्य मुझे अच्छा नहीं लगता।

कुमारदास : मुझे तो इस बात का लोभ है कि इसी बहाने एक कविता मिल जायेगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास : आज क्षमा करें।

मंजरी : (रुककर) आज तो पूर्ति होगी ही।

कालिदास : अच्छा कोई बात नहीं! तुम भी समस्या–पूर्ति करो।

कुमारदास : अवश्य ! मंजरी, तुम भी कोई उत्तम पूर्ति करो।

मंजरी : तो....।

कुमारदास : तो क्या! जो माँगोगी, दूंगा।

मंजरी : सब कुछ !

कुमारदास : हाँ।

मंजरी : मैं वह चित्र लूँगी, हस्ति दंत पर कामदेव वाला।

कुमारदास : तुमने विश्वासघात किया, मंजरी। पर दूँगा। यदि तुम्हारी पूर्ति सबसे उत्तम हुई तो; नहीं तो, नहीं।

(चतुर्थ दृश्य)

मंजरी : पधारिये महाराज!

कुमारदास : कवि कहां हैं ?

मंजरी : मालूम नहीं। वे कहीं चले गये।

कुमारदास : कहां चले गये!

मंजरी : आपके यहाँ नहीं हैं?

कुमारदास : नहीं तो ! वे तो आजकल तुम्हारे ही यहाँ रहते थे।

मंजरी : (हंसकर) कहीं एकान्त में बैठकर कविता कर रहे होंगे।

कुमारदास : हो सकता है। पर तुरन्त विदित हो जाता था कि कवि कहां हैं ?

मंजरी : सिंहल–निवासी उन पर इसी प्रकार की श्रद्धा करते हैं।

कुमारदास : पर गये कहां?

मंजरी : सागर तट पर ढुंढ़वाइये।

कुमारदास : कुछ कह नहीं गये?

मंजरी : कुछ नहीं। केवल अपनी पूर्ति रख गये। मुझे वह पूर्ति अब मिलनी चाहिये।

कुमारदास : क्या तुम्हारी पूर्ति कवि की पूर्ति से अच्छी है?

मंजरी : कवि का यही विश्वास था।

कुमारदास : देखूं तो!

मंजरी : यह लीजिये।

(विराम)

कुमारदास : अच्छी पूर्ति है। लगती है, जैसे कवि की हो। कवि ने भी अच्छी पूर्ति की है, पर इससे अच्छी नहीं।

मंजरी : (हर्ष से) देंगे न फिर मूर्ति।।

कुमारदास : पर कवि की पूर्ति इतनी उत्तम क्यों नहीं ?

मंजरी : इसीलिए तो असंतुष्ट होकर कवि कहीं चले गये।

कुमारदास : विश्वास नहीं होता, मंजरी।

कवि बड़े उदार हैं।

(विराम। दरवाजे पर दस्तक)

पालित : महाराज यहां आये हैं ?

मंजरी : कौन?

कुमारदास : तुम रुको, मंजरी! मैं देखता हूँ।

पालित : महाराज ! महाराज !

कुमारदास : अच्छा ! पालित !

पालित : महाराज, वह कार्य सिद्ध हो गया।

कुमारदास : भला तुम जिस कार्य को हाथ में लो, वह नहीं हो सकता ! कहो, क्या समाचार है?

पालित : मुझे मंजरी की दासी मिली थी।

कुमारदास : तो।

पालित : वह मंजरी के यहां से भाग गयी है।

कुमारदास : तो इस समाचार से उसका क्या मतलब है?

पालित : सुनिये भी ! कवि की पूर्ति उत्तम थी। मंजरी को यह बात अप्रिय लगी। उसने सोचा कि... (गला रुँधता है)।

कुमारदास : क्या सोचा? बोलो भी!

पालित : कि कवि की हत्या कर दी जाय।

कुमारदास : कवि की हत्या... !

पालित : हाँ, महाराज ! मंजरी ने यह सोचा कि कवि की हत्या करके उसकी पूर्ति अपनी बतायी जाय।

कुमारदास : क्या कह रहे हो, पालित!

कवि की हत्या.....!

पालित : सही कह रहा हूँ, महाराज ! कवि का शव उद्यान के कूप में.....!

कुमारदास : हा हंत ! मंजरी ! ओ मंजरी! तुमने आज विश्व को सरस्वती से हीन कर दिया। कवि! आज तुम्हारे बिना संस्कृत–साहित्य अनाथ हो गया। कल्पना का सौभाग्य लुट गया। ओ वारयोषित् ! मैं भारतवर्ष को क्या कहूँगा ! महाराज विक्रमादित्य को क्या कहूँगा! रावण ने सीता का हरण किया था, मैंने कालिदास का ! कवि ! कवि ! हा कवि..... ! ●

–प्रस्तुति : नलिनी मिश्र
संपर्क : सरोजिनी–निवास,
एम–1/63, सेक्टर–बी, अलीगंज,
लखनऊ (उ०प्र०) 226024

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हू इज कैलीडासा

अशोक जी

एक आधुनिक ड्राइंग रूम। एक खूबसूरत नवयुवती, चूड़ीदार काला पाजामा, बिना बाँह की तंग कमीज, झबरे कटे आवांत–गार्दे (प्रगतिशील) बाल, गुलाबी रंग के फोन का चोंगा एक हाथ में और दूसरे में एक नाजुक सिगरेट दबाए बात कर रही है–डाली, तू वोल्गा में नहीं हाई, ओह ह्वाट ए डिवाइन डांस, ऐसी ट्यून थी कि पांव अपने आप थिरकने लगते–(गाती है)–यो यो यो–हाँ क्या कहा पार्टनर। तू बडी बदमाश है। वही था उस दिन वाला मोना। ओह उसका पा (पंजा) कैसा था। कमर पर पड़ता था तो बेहोशी आने लगती थी। लार टपक पड़ी तेरी–(रुककर सुनती है और अंगरेजी ट्यून गुनगुनाती है) आज क्लब में कल्चरल इवनिंग है। जर्मन एम्बेसेडर की वाइफ आ रही है। बोर है, मगर सब आएंगी। हमारे बंटी के बास की बीबी भी आएगी। मोटी भैंस। शी इज स्वीट आन बंटी। जरा ह्यूमर करना पड़ता है। बंटी मुझसे कहता था डार्लिंग डिप्लोमेसी है। बास तो, वह जो नई अंडर सेक्रेटरी आई. ए.एस. वाली लड़की आई है, उसे चेज कर रहा है, इसलिए बंटी उसकी भैंस को डांस कराता है। अच्छा सो लांग शाम को क्लब में। फोन रख देती है। (फिर कुछ ख्याल आता है) अरे कम्बख्त ने असल बात तो बताई नहीं कि क्या पहन रही है। बड़ी कैट हैं कहीं मैडम अम्बेसेडर को इम्प्रेस करने के लिए साड़ी न पहनकर आए! ऊँह पहने। मोटी थुलथुल है उस पर तंग कमीज और टाइट सलवार क्या खिलेगी। बस इस पर राजस्थान इम्पोरियमवाल स्टिलेटो हील का साटन नागरा पहन लूँ। डाली कम्बख्त तो मर ही जाएगी देखकर मुझे।

(गाती हुई जाती है।)

(रात 10 बजे वही कमरा–बंटी साहब, सोफे पर पसरे हैं, मुँह में सिगरेट होल्डर में लगा, बलग में छोटे टेबुल पर ह्विस्की का गिलास रखा हुआ। रेडियो पर बिलायती म्यूजिक। उनकी बीबी बड़े छमाके से कमरे में प्रवेश करती है, हाथ का बटुआ एक सोफे पर फेंक देती है।)

- हलो लवी, हाउ लवली यू आर लुकिंग गिव मी ए पेग (कितनी खूबसूरत, एक मिट्टी दो।)
- बंटी तुम्हारी वजह से मुझे आज कैसा बेवकूफ बनना पड़ा। तुम बिल्कुल बैकवर्ड हो। लेटेस्ट बातों की खबर नहीं रखते और काम करते हो कल्चर मिनिस्ट्री में।
- आखिर हुआ क्या डार्लिंग। कौन सा फंक्शन मिस हुआ। मुझे तो किसी भी वर्थह्इल (अच्छे) फंक्शन की कोई जानकारी नहीं। किस एम्बैसी में था। थाइलैंण्ड का कल्चर ट्रूप तो अभी अगले हफ्ते आने वाला है।
- फंक्शन नहीं जी। आज क्लब में कल्चरल इवनिंग थी। जर्मन एम्बेसडर के बीबी आई थी। उसने "कैलीडासा" पर टाक दिया। कहा इंडिया का ग्रेटेस्ट पोएट था। मैंने थैंक्स देना था। मगर मैं कहती क्या खाक। कुछ भी न कह सकी। मुझे इंट्रोड्यूस किया गया तो बोली तुम बिल्कुल कैलीडासा की हीरोइन की तरह लगती हो। जर्मन एंबैसी आप लोगों के कोलैबरेशन से कैलीडासा का प्ले प्रोड्यूस कराना चाहता है। तुमको हीरोइन रोल लेना होगा। तुमने तो जरूर पढ़ा होगा। हमारे नेशनल पोएट गेटे ने कहा था "बट आफ कोर्स यू रेमेंबर (तुमको तो याद होगा)। (मुँह बिगाड़कर नकल करती है और फिर बंटी पर बिगड़ कर कहती है) बेवकूफ की तरह मेरा मुँह क्या देख रहे हो। मैं क्या कहती। उल्लू की तरह उसकी बात पर हाँ हाँ करती रही और वादा कर आई कि कल मैं प्ले की कापी लेकर रीडिंग के लिए जर्मन एम्बैसी आऊंगी और मुझे मालूम ही नहीं कि हू इज दिस डैम कैलीडासा। अब तुम बताओ मैं क्या करूँ।
- (सिर खुजाता है और धीमे–धीमे कहता है) कैलीडासा, कैलीडासा, हू इस दिस बर्ड, नेवर हर्ड आफ हिम (कौन है यह चंडूल, कभी नाम भी नहीं सुना) (फिर एकाएक उछलकर कहता है)–ओह आई रेमेंबर। याद आया। डार्लिंग तुम्हें याद नहीं। अभी सेंटेनरी हुआ था, जिसमें बड़ा ग्रेड रेसेप्शन हुआ था। साहित्या अकाडमी की तरफ से। (चापलूसी के साथ) डीयर जिसमें तुमने अपनी ग्रीन ऐंड गोल्ड सारी पहनी थी, पी.एम. (प्रधान मंत्री) भी अट्रेक्ट हुए थे। ह्वाट वाज द नैम आफ द चैप (क्या नाम था उसका) वही दाढ़ीवाला।
- (क्रोध से देखता है)–मुझे क्या मालूम कौन से रेसेप्शन की बात तुम कर रहे हो। रोज तो तीन–तीन रेसेप्शन होते हैं। सेंटीनरी तो अभी शैक्सपीयर की हुई थी, मगर वह तो इंडियन पोयट नहीं था।
- (सिर खुजलाता है और दिमाग पर जोर डालता है एकाएक उछल कर कहता है) टैगोर टैगोर–वह जर्मन बुढ़िया टैगोर की बात कर रही होगी। उसी का प्ले हुआ था, जिसमें हम लोग वी.आई.पी. पर बैठे थे और तुम्हारी डाली ऊपर गैलरी में। थाईलैंड वाले शो का भी पास आ गया है। तुम्हें वी.आई.पी. रो (लाइन) में बिठाऊँगा।
- फजूल की बात मत करो। टैगोर की बात नहीं कर रही थी, शी वाज डिफिनटली टाकिंग अबाउट कैलीडासा (वह निश्चय ही कैलीडासा की बात कर रही थी) (जोर से चिल्लाकर कहती है) टेल मी, हू वाज कैलीडासा, डोंट ब्लफ मी, आइ एम नाट योर मिनिस्टर (मुझे झांसा न दो, मैं तुम्हारी मिनिस्टर नहीं हूं।)
- डार्लिंग सबेरा तो होने दो। अब इतनी रात को कौन मिलेगा, बताने वाला।
- सबेरे तो तुम 9 बजे तक सोओगे, फिर आफिस भागोगे और मुझे आफ्टर नून में ही जर्मन एम्बैंसी जाना है। कब किताब मिलेगी और कब मैं रीडिंग की तैयारी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करूंगी। तुम्हारे कल्चर मिनिस्ट्री में कोई आफिसर नहीं है, जो बताये।

- हाँ, यह तुमने खूब बताया। वो मिस मलहोत्रा है, असिस्टेंट अडवाइजर उससे पूछता हूँ। (बड़े तपाक से फोन उठाता है, और नंबर मिलाता है) हलो, कौन बोल रहा है, मोली। मैं बंटी.... (लवी टेढ़ी नजर से ताकती है, मगर बंटी को ध्यान नहीं) हाँ, क्या कर रही हो ? मैं (अपनी बीबी की ओर देखकर) हाँ लवी यही हैं। हाँ, तुम्हारी कल्चरल डेलीगेशन में जाने की बात चल रही है। फ्रांस में अभी नहीं अभी अफ्रीका ...क्या कहा अफ्रीका नहीं जाओगी। अच्छा कोशिश करूंगा। बास से मिल लो। शायद वह किसी दूसरे को भेजना चाहते हैं। तुम फ्रेंच नहीं जानती। ठीक है अफ्रीकन भाषा भी तुम नहीं जानती। मगर वहाँ तो अंगरेजी से काम चल जायेगा। अच्छा फिर इस बारे में कल बात करूंगा। इस वक्त तो एक बात पूछनी है। तुमको तो इंडियन कल्चर की खूब वाकफियत है, बताओ हू इस कैलीडासा। कैलीडोनिया नहीं, कैली डासा (एक–एक हर्फ पढ़ता है) डासा, डी फार डंकी कैली डासा। कौन है। यही तो मैं जानना चाहता हूँ। अब यह तो नहीं मालूम। ठहरो लवी से पूछता हूँ– लवी–यह कैलीडासा क्या है ?
- यही तो मैं घंटे भर से पूछ रही हूँ।
- आइमीन–यह पोएट है या क्या।
- पोएट है और प्ले भी लिखता है। यही जर्मन एम्बसेडर की बुढ़िया ने कहा था।
- हलो मोली–अरे भई, यह पोएट है पोएट. ... यह तो नहीं मालूम किस लैंग्वेज का। यह भी नहीं मालूम कि जिन्दा है या मर गया। मर ही गया होगा। तभी तो जर्मन एम्बसेडर ने ग्रेटेस्ट कहा। जिन्दा पोएट होता तो हमको भी जानकारी होती। कुछ पद्मभूषण बगैरा मिला होता। अच्छा पूछता हूँ–लवी कुछ प्ले का नाम बताया था।
- (सोचती है–फिर कहती है) हाँ, शायद कहा तो था। सैकुंटला–या ऐसा ही कुछ।
- मोली सुन रही हो। प्ले का नाम शायद सैकुंटला है। लवी को हीरोइन बनाना चाहते हैं–अरे भाई तुम्हीं बन जाओ मगर खुदा के वास्ते बताओ तो कि है कौन यह जानवर कैलीडासा। मिनिस्ट्री को तो कोई जानकारी नहीं और यह जर्मनी भी पहुंच गया। किताब भी ट्रांसलेट हो गई।..... नहीं, कम्युनिस्ट नहीं हो सकता, क्योंकि यह तो वेस्ट जर्मन वाली एम्बेसी है। नहीं जी हमारी मिनिस्ट्री ने तो किसी को स्पॉन्सर नहीं किया। हो सकता है, इनफारमेशन वालों ने किया हो। वे भी तो दखल देते हैं कल्चर के मामले में। भाई यही तो गड़बड़ है। हमारी गवर्नमेंट में, कोआर्डिनेशन तो है ही नहीं, सभी दखल देते हैं। एक्सटर्नल वाले अलग, रेडियो वाले अलग। खैर। एक तगड़ा नोट अबके लिखूंगा। हाँ, असल बात तो भूल ही गया। हू इस दिस व्लेसेड कैलीडासा। (सुनता है। लवी अधीरता से देखती है। एकाएक बंटी फोन रख देता है। कहता है)–कहती है सोचकर बताऊंगी।
- (क्रोध से) अच्छा यही है कुतिया–बड़ी गहरी छनती है तुम्हारी। मोली और बंटी के टर्म्स पर हैं, आप लोग।
- (सफाई देता हुआ) अरे भाई एक ही दफ्तर में काम करते हैं। फिर हम लोगों की फैमिली लाहौर में एक साथ रहती थी।
- अच्छा तो पुरानी जान–पहचान है। फिर शादी क्यों नहीं कर ली।
- लवी बेटे–इतना जीलस नहीं होते। तुम जानती हो यू आर द ओनली वूमन (तुम्हीं मेरे लिए अकेली औरत हो)
- चलो चलो बात न बनाओ। मौका मिल गया तुमको टेलीफोन से इश्क लड़ाने का –कैलीडासा तो बहाना था और किसी से क्यों नहीं पूछा।
- डोन्ट बी अनफेयर (अन्याय न करो) तुम्हीं ने नाम लिया था।
- झूठे, बिलकुल झूठ। मैं क्यों इस कुतिया का नाम लेती। तुम्हारे ही मुंह पर उसका नाम था। (नकल करती है) मोली–ई–ई दिस इज बंटी ई। ओ हो, ऐसा बोले जैसे मुँह में मिश्री घुल रही हो। दुनिया भर की बातें करते रहे। फ्रांस और अफ्रीका की। मैं तुम्हारे बॉस से शिकायत करूँगी, इस बदमाश को हरगिज फ्रांस न भेजें। इसे बस अफ्रीका ही भेज दो। काले कलूटे हबशियों के बीच। वहाँ उनको कल्चर सिखाए या जो करे।
- खामखां तुम नाराज हो रही हो, वह अफ्रीका जाए या फ्रांस। मुझे क्या फरक पड़ता है। तुम्हीं ने कैलीडासा का किस्सा उठाया। वरना मैं तो इन इंडियन पोएट्स की एक लाइन नहीं पढ़ता। यह तो कल्चर मिनिस्ट्री में काम करने के खातिर थोड़ी बहुत बाकिफकारी रखनी पड़ती है। नहीं तो है क्या इंडियन पोएट्री। सब अंगरेजी की नकल ही तो। ये फारेनर तो खुशा मदन इंडियन पोएट्स का नाम लेते हैं। हाँ फोक लिटरेचर अलबत्ता फैशन में है।
- हाँ, तुमको क्या गरज ! तुम अपनी मोली को लेकर मौज उड़ाओ। मुँह तो मेरा पिटेगा। जर्मन एम्बेसेडर की बीबी के सामने सिर तो मेरा नीचा होगा। एक वह है जो मेरी वकत पहचानती है। मुझे हिरोइन का रोल दे रही है। मगर तुम तो उस मोली कुतिया को हीरोइन बनाना चाहते हो।
- यह तुम्हारी जबर्दस्ती है। मोली ने मजाक में कहा कि वह हीरोइन के रोल के लिए फिट है। वह कोई सीरियसली तुम्हारा रोल छीनना नहीं चाहती।
- वह हरामजादी छीनेगी भी क्या, उसका मुँह है छीनने का। उसे कौन बनाएगा हीरोइन। उसकी कमर कितनी मोटी है और नाक चिपटी और ओंठों पर तमाम बाल हैं। मैडम जर्मन एम्बसेडर तो उसे नौकरानी का रोल भी न दें।
- तब तुम क्यों परेशान हो ?
- परेशान क्यों न होऊँ। कितना अच्छा चांस था। जर्मन एम्बेसी के प्ले के सभी राजदूत आएंगे, मिनिस्टर और सेक्रेटरी भी आएँगे। मेरा हीरोइन का रोल देखकर कितने इम्प्रेस होंगे। क्या ताज्जुब है, बल्कि सरटेन (तय) है कि मुझे जर्मनी जाने का चांस मिल जाये। फारेन इलस्ट्रेटेड मैगजीन्स (विदेशी सचित्र पत्रों में) में मेरी तसवीर छपेगी। मुझे स्क्रीन वर्ल्ड (फिल्म जगत) में भी चांस मिल सकता है मगर सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे जाहिलपने की वजह से सब रूइन (बर्बाद) हो गया। तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि कैलीडासा कौन है।

- सेलेक्ट करने वाले तो तुम्हारे रीवियर्ड फादर (पूज्य पिताजी) ही थे।

○ (क्रोध से थरथर कांप रही है) अब तुम माँ बाप पर उतर आए। मेरे बाप को गधा बना रहे हो।

- मैं नहीं तुम।

○ तुम, तुम सौ बार तुम, हजार बार तुम। मेरे डैडी रिटायर हो गये। इसीलिए तुम्हारी यह हिम्मत कि तुम उनको गाली दो।

- (गुस्से को संभालता है) लवी, तुम जानती हो कि डैडी की इज्जत मैं तुमसे कम नहीं करता और उनका भी मेरे ऊपर कितना लव और फेथ (प्रेम और भरोसा) है। उन्हीं के इनकरेज करने पर मैंने इस जगह पर अप्लाई किया और मेरे सेलेक्शन में भी उनका कितना हाथ था।

○ हाँ, हाँ तुम तो यही कहना चाहते हो कि तुम्हें दामाद बनाना चाहते थे मेरे डैडी, इसीलिए तुम्हें नौकरी दिलाई। यानी मेरे डैडी ने करप्शन किया, निपोटिज्म किया।

- डार्लिंग तुम मेरी बातों का उलटा मतलब क्यों लगा रही हो। मैंने कभी यह नहीं कहा कि डैडी में और मेरे में कोई अंडरस्टैंडिंग (समझौता) थी कि मुझे जॉब दिलाएं तो मैं तुमसे शादी करूँ।

○ अच्छा तो तुमने बड़ी मेहरबानी की जो मेरे से शादी की और डैडी पर बड़ी मेहरबानी की जो यह जाब एक्सेप्ट की (नौकरी कबूल की) क्या तुम समझते हो कि मुझे शादी के लिए लड़के नहीं मिलते थे। हजारों लड़के मेरे पीछे घूमते थे। डैडी के कहने से मैंने तुमको एक्सेप्ट किया– (आवाज रूंध जाती है और रोने–रोने को हो जाती है।)

- (बड़ी मुश्किल से क्रोध और खीझ संभल रहा है और घबरा भी रहा हूँ कि झगड़ा न जाने क्या रूप ले) मैं तो खुद कह रहा हूँ कि डैडी को मेरे ऊपर बहुत फेथ था, इसीलिए उन्होंने मुझे..... तुम्हारे हाथ के लायक समझा–वर्दी आफ योर हैंड–और मैं तुमको एश्योर करता हूँ कि मैंने अपने को लकी समझा और समझता हूँ। डार्लिंग लवी गुस्सा थूक दो। मोली मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुम्हारे ऊपर बीस मोली कुर्बान कर सकता हूँ और उसकी शादी तो तै हो गई है, ब्रिगेडियर हरजिंदर से।

○ ब्रिगेडियरन हरजिंदर, अंकिल भलिंदर का नेफ्यू (भतीजा) तुमने मुझे बताया क्यों नहीं। मैं डीयर मोली को कांग्रेट (बधाई) तो देती। लाओ अभी रिंग करती हूँ। (फोन मिलाती है)–मोली डियर, मैंने डिस्टर्ब तो नहीं किया। मैं लवी बोल रही हूँ। बंटी बदमाश ने मुझसे न्यूज छिपाई। बहुत बधाई। तुम तो फेमिली (घर) की हो। अंकिल भलिंदर तो डैडी के बहुत बड़े दोस्त हैं। मुझे सगी बेटी की तरह मानते हैं और यह बदमाश हरजिंदर बड़ा नाटी था बचपन से ही। बहुत तंग करता था लड़कियों को–अब उसी से पूछा कि क्या करता था। यहाँ बंटी कान लगाये बैठा है, स्नूपिंग (सुनने) की आदत है इसे। जल रहा होगा अन्दर–अन्दर क्या कहा कैलीडासा। हाँ, यह कैलीडासा तो रह ही गया। कल बताओगी, आफिस में हिन्दी असिस्टेंट से पूछ कर। हाँ, हो सकता है कोई हिन्दी पोएट हो। भाई मैंने तो हिन्दी पढ़ी नहीं। मैं तो कान्वेंट में ही पढ़ती रही। मगर अब तो कुछ सीखनी पड़ेगी, इन फारेन डिप्लोमेंटों (विदेशी राजदूतों) की खातिर। तुम जानती हो इनसे रोज का साथ रहता है। मैं तो बहुत एवाएड (बचना) करना चाहती हूँ। मगर क्या करूं ये छोड़ते ही नहीं। अब देखो जर्मन एम्बसेडर की ही मैडम को। एकदम पीछे पड़ गईं। अरे हाँ–मैं फिर भूल गई तो क्या बताया तुमने कैलीडासा को। मोली डार्लिंग, प्लीज तुम्हारा हिन्दी असिस्टेंट कल न आया दफ्तर तो। ये छोटी तनख्वाह वाले सरकारी एम्पलायी बड़े पाजी होते हैं। अब देखो। हमारा आर्डरली। हमी ने उसे पीयन लगवाया था। सर्वेंट क्वार्टर में जगह दी थी। साफ इनकार कर दिया काम करने से–कहा सिर्फ मोटर पोछूंगा और अब उसे सेवानगर में क्वार्टर अलाट हो गया तो छोड़कर चला भी गया। पता नहीं कैसे गवर्नमेंट इनको इतनी जल्दी क्वार्टर दे देती है। आफिसर्स तो बेचारे सालों टपते हैं, फिर भी उनको अलाटमेंट नहीं मिलता। पीयन्स को तो क्वार्टर मिलना ही नहीं चाहिए? बस अफसरों के सर्वेंट क्वार्टर में रहें। ये तो झोपड़ी में रहने वाले। इनको तो क्वार्टर में रहना ही नहीं आता। अरे हमारे सर्वेंट क्वार्टर को भी गन्दा कर देते हैं।

- (लवी की बातों का तार टूटता नहीं–बंटी ऊबकर जंभाई लेता है और कहता है–'कम आन डीयर–'देर हो रही है।'

○ नाराज होकर–हां–हां बन्द करती हूँ। तुम घंटे भर तक बात करते थे तब नहीं। तुम्हें भी मैडम अम्बसेडर के यहाँ जाना होता तो पता चलता। तो मोली डियर कल 11 बजे मैं तुम्हें रिंग करूंगी आफिस में। कैलीडासा का प्ले भी मंगाकर रख छोड़ना। टाटा....

- मोली का हिन्दी असिस्टेंट बड़ा होशियार है। पंजाब यूनिवर्सिटी का परभाकर है। वह जरूर बता देगा।

○ मगर मान लो वह आफिस न आया या कैलीडासा का प्ले न मिला।

- अरे तुम मैडम अम्बसेडर को कह देना कि मेरे पास प्ले की जो कापी थी, उसे बंटी का एक फ्रेंड लेकर टुअर पर चला गया।

○ ओह गुड ! यह एक्सक्यूज तुमने अच्छी बताई और इसी बहाने मैं उस खूसट के पास से प्ले की कापी लेकर देख लूँगी और पब्लिशर का नाम पता नोट कर लूँगी। कभी–कभी तुम्हारा दिमाग खूब काम करता है। बंटी डियर। वाकई यू आर ए जिवेल (तुम रत्न हो)। ह्वाट शुड आई डू विदाउट यू (तुम्हारे बिना मेरा काम कैसे चलता)।

- (फूलकर) एक्जैक्टली! बिलकुल यह लफ्ज बॉस भी कहते हैं।

○ बॉस या बॉस की मोटी भैंस..... (दोनों ठहाका मारकर हँसते हैं)●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुन्तला

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

सहगान

जय हो देव अनंग, तुम्हारी।

एक तुम्हारे इंगित पर ही, यह सारी वसुधा बलिहारी।।

अंगहीन तुम अंग–अंग में

तुम जन–जन की उमंग में

तुम चिर यौवन के मधु गायक, सुखदायक, सबके मन–हारी।

तान कुसुम–धनु पर खरतर शर

तुम लेते त्रिभुवन का मन हर

सदा तुम्हारे सम्मुख नत–शिर, स्वर्ग–धरा के सब नर–नारी।।

खिलते इच्छाओं के शतदल

सतत कामना से चित चंचल

पल–पल विकल किसी की सुधि से, मन जन–जन का इच्छाचारी।

(तपोवन में महाराज दुष्यंत–अकेले और चिंतित।)

दुष्यन्त–(स्वतः) कार्य बिना कारण के होता नहीं, कहते हैं सभी लोग, सिद्ध अनुभव से भी बात यह, है प्रतीत के भी योग्य; किंतु सारे चिंतन का, दर्शन का, अनुभव का, तर्क का समूह छिन्न–भिन्न कर, प्रीति कहती है–'मेरा कारण नहीं' है कुछ। वृक्ष जैसे वन का, उगता हूँ आप अपने ही से, डालपात शत–शत फैलाता है, फूलों से, फलों से भर जाता है, उसी भाँति मैं भी उगती हूँ मन–मन में, फैल जाती विष के समान एक क्षण में, देखती नहीं कि कौन कैसा है, नागर कुलीन है या कोई ऐसा–वैसा है; हृदयों को बाँध देती मसृण मृणाल के, एक कच्चे तंतु से, किंतु बनता है वही दृढ़ लौह–श्रृंखला; मार्ग कहीं मुक्ति का किसी को नहीं मिलता। बंदी है मनुष्य मेरा, दास है। निर्मम नियति का कठोर उपहास है। (निःश्वास लेकर) सत्य है, कठोर उपहास है–तू सत्य होता है कठोर ही। (विदूषक का प्रवेश)

विदूषक–

मानता हूँ मित्र, सत्य होता है कठोर ही।

दुष्यंत –

आओ विदूषक, आज मेरा चित्त खिन्न है। किंतु यह जन सदा तुमसे अभिन्न है। होता है कठोर 'सत्य' मानते हो तुम भी? कैसे मानते हो किन्तु, यह भी बताओ तो?

विदूषक–

कहना तो चाहता हूँ महाराज, किंतु कह पाता नहीं, बिना कहे भी है रहा जाता नहीं, दुविधा में प्राण झूलते हैं ये, और.....

दुष्यंत –

कहो, कहो, रुकते हो क्यों?

संकुचित हो यों झुकते हो क्यों? केवल विदूषक मैं तुम्हें नहीं मानता, मित्र तुम्हें अपना सदा ही रहा जानता! खिन्न दीख पड़ते हो तुम भी, क्या बात है?

विदूषक –

मन की विचित्र गति कोई नहीं जानता, सर्प–सा कुटिल, टेढ़ा–मेढ़ा चलता है वह, बहुत मुझे तो खलता है वह, कुपित न हों तो कहूँ महाराज, मैंने समझी है एक बात आज।

दुष्यंत–

बात समझोगे तुम कोई, कभी, इसकी मुझको प्रतीत नहीं होती है, फिर भी कहो तो सुनूं, सत्य है तुम्हारी बात या कि कोरा भ्रम है। मन भी तुम्हारे पास है क्या कहीं? आज तक मैं तो जान पाया नहीं; हो भी तो कुटिल गति उसकी बड़ी है, यही चाहते हो कहना कि और कोई बात है?

विदूषक – (हँसकर)

अनुमान से न पा सकेंगे आप सत्य को, क्षमा करें महाराज, राजा होना बहुत बुरा है, मुझे इसका आज ही हुआ है ज्ञान।

दुष्यंत–

चलो, बड़ी बात है! किंतु कोई युक्ति भी क्या ज्ञात है, सिद्ध करने की इसे?

विदूषक–

जो हो स्वयं सिद्ध उसे सिद्ध करने के लिए, महाराज, युक्ति की अपेक्षा नहीं होती है।

दुःख भला हमें क्या था वहाँ–राजधानी में? खीर–पूरी लड्डू–दही खाते थे, गुदगुदे गद्दे पर सुख से सो जाते थे, महारानी भरपूर दक्षिणा भी देती थीं।

किंतु यह इतना भी सुख नहीं देखा गया आप से, राजा से हुई थी मेरी मित्रता, न जाने किस पाप से खींचकर लाये मुझे वन में, जाने क्या समाई बात मन में, मृगया के पीछे सारा दिन आप खोते हैं, और रात को भी न सोने देते हैं, न सोते हैं; वन–पशुओं के पीछे भागते हैं फिरते, जाने कब भोजन की बेला बीत जाती है।

आपको तो याद इसकी न कभी आती है, किंतु यहाँ बड़वा–सी जठराग्नि जलती, आपके समक्ष मेरी एक भी न चलती, लौट चलें महाराज, अब राजधानी की–व्यसन आखेट का तनिक नहीं अच्छा है।

दुष्यंत– (निःश्वास लेकर)

मानता हूँ मित्र, तुम बात ठीक कहते, अच्छा होता राजधानी में ही रहते, जाने किस क्षण मैं चला था छोड़ घर को, अब लौटने का पथ बंद–सा नगर को।

विदूषक–(उत्साह से)

नहीं महाराज, पथ बन्द होगा क्यों भला? आज भी है वैसा, कल तक वह जैसा था; केवल विलंब है तो आप के निर्देश का, आज्ञा दें तो अभी सूचना दूं सेनापति को, और हम शीघ्र लौट चलें राजधानी को।

दुष्यंत–

शीघ्र लौटना तो मेरे वश में नहीं है अब, मन अनजाने बँध–सा गया यहीं है अब, चाहता हूँ लौट जाना, हिल भी न पाता हूँ, बार–बार अपने किए को पछताता हूँ; मृगया के लिए यहाँ आया था मैं घर से, आहत हुआ हूँ किंतु स्वयं किसी शर से।

विदूषक–(उत्तेजित)

परम दुरात्मा, वह कौन आततायी है, जिसने दृष्टि महाराज पर उठायी है? धर्म–नीति–न्याय–परायण आप धन्य हैं, वीर हैं अतुल, प्रजारंजक अनन्य हैं, यह अपमान चुपचाप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

मैं सहूँगा नहीं, दिये बिना दंड उस दुष्ट को, रहूँगा नहीं; दें तो मुझे धन्वा–शर, देखूं वह कौन हैं? कैसे वह जीवित है?.....अरे, आप मौन है!

दुष्यंत–(हँसकर)

मूर्ख मुझे आहत करे जो लौह शर से, बचकर वह कहाँ जाय मेरे कर से? पंचशर का है शर यह एक दृष्टि का, लेकर जो आयी है स्वरूप सारी सृष्टि का; देखा उसे कुछ क्षण को ही तपोवन में, बस–सी गयी है वह सुंदरता मन में, एक पल को भी उसे भूल नहीं पाता हूँ। भूल–सा गया हूँ अपने को, बहा जाता हूँ, अनुराग–सागर में; किंतु नहीं ज्ञात है, मेरे लिए उसके हृदय में क्या बात है?

विदूषक– (हँसकर)

ऐसी कौन प्रकट हुई है यहाँ अप्सरा, देव–पुण्य कौन–सा यहाँ अरण्य में झरा, जिसने वयस्य, मन आप का चुराया है?

दुष्यन्त –

सच, वह रूप है अनूप, देख पाया है। जिसे मैंने वन में, अलभ्य त्रिभुवन में। कण्व मुनि की है वह दुहिता विजन की खिली एक कली–सी, शिरोमणि भुवन की।

विदूषक –

(मुँह बिगाड़कर) मुनि–दुहिता है महराज? आप भी कहाँ जाके गिरे! चाहिये न दृष्टि डालनी जहाँ, कहाँ आप राजेश्वर, वह वनवासिनी, भूमि–पग–चारिणी औ वल्कल–विलासिनी; पग कंटकों से भरा होगा, रूक्ष केश भी, होम–धूम–सजल नयन होंगे, वेश भी, मलिन–सा होगा; महाराज, न उचित है ध्यान देना उस ओर; योग्य ही विहित है।

दुष्यन्त–

देखा नहीं उसको, इसी से मित्र, कहते, देख लेते उसे तो ठगे–से खड़े रहते; वह है त्रिलोक में अपूर्व एक सुन्दरी, पालिता है कण्ड की, अपूर्व शोभा से भरी, मेनका की जायी, जिसे जन्मते ही छोड़ के अप्सरा गयी थी दुहिता से मुँह मोड़ के; रक्षा की शकुंतों ने प्रसिद्ध हुई इससे नाम से शकुंतला के; और इसी मिस–से रूप की अलौकिक विभा धरा न पायी है। बात एक और भी स्मरण मुझे आयी है–पुरुवंशियों का मन जाता न विपथ में, दोष इस हेतु तुम दे न सकते हमें।

विदूषक–

देखता हूँ मन्मथ ने मथ डाला मन है, आपको इसी से हुआ उपवन–सा वन है, किंतु सखा, व्याधि यह बुरी लगी आपको, इसका निदान क्या है? प्रीति को औ ताप को दूर रखो, यही गया विहित बताया है, किंतु आपने तो जान–बूझ अपनाया है; जो हो, कहें प्रेम यह एक ओर का ही है, या समीर यह दोनों कूलों का प्रवाही है? डोर यह प्रीति की बँधी है एक ओर ही, बाँध डाले या कि इसने हैं दोनों छोर ही?

दुष्यंत–

कैसे कहूँ बंधु, बात दूसरे के मन की? किंतु लगा ऐसा, जैसे भूली सुधि तन की देख मुझे, लज्जा से अरुण मुख हो गया; विकल हुई थी, जैसे सब कुछ खो गया, लोचन हुए थे नत, बोल नहीं पायी थी, मुख फेर थोड़ा, धीमे–धीमे मुसकायी थी, सखियों के संग जाती–जाती रुक जाती थी, फिर–फिर देखती थी, पग न बढ़ाती थी, जाती थी सिमटती–सी लज्जा से दुकूल में, कह, उलझा है वस्त्र कंटकों के मूल में, यद्यपि नहीं था कहीं कंटक, थी ठगती, प्रीति उसमें भी मुझे अंकुरित लगती।

विदूषक –

फिर क्या विलंब है? विवाह कर लीजिये ले के वधू नूतन, यहाँ से चल दीजिये।

दुष्यन्त –

संभव नहीं है, यह वह परवश है, ऋषि भी नहीं हैं यहाँ, हृदय अवश है, मेरा, उसे देखने को चित्त अकुलाता है, बार–बार मन उसी ओर खिंचा जाता है, जाना गया मैं हूँ ऋषि–बालकों के दल से, जाऊँ फिर आश्रम में अब किस छल से?

द्वारपाल–

जय महाराज ! दो तपस्वी यहाँ आये हैं!

दुष्यन्त–

लाओ उन्हें शीघ्र–जाने किस हेतु आये हैं!

(तपस्वियों का प्रवेश)

तपस्वी–

मंगल हो राजन! हम आश्रम–निवासी हैं, आपको उपस्थित निकट यहाँ जान कर, आश्रम–तपस्वियों का अनुरोध लाये हैं।

दुष्यंत –

सेवक हूँ मैं तो, आज्ञा : दें अशंक हो।

तपस्वी–

गुरु कण्व आश्रम से बाहर गये हैं, विघ्न डालते हैं राक्षस हमारे यज्ञ–याग में, जप–तप ध्यान हम कर नहीं पाते हैं! इससे निवेदन हमारा यही आपसे, आप चलें आश्रम में, कुछ दिन ठहरें, और हमें राक्षसों के भय से उबार लें।

दुष्यन्त–

धन्य भाग्य मेरे, किसी काम आ सकूँगा मैं आज्ञा शिरोधार्य, सेवा–लाभ पा सकूँगा मैं; आप चलें, आ रहा मैं बीते बिना काल के।

विदूषक–(हँसकर)

छींका टूटता है सदा भाग्य से विडाल के। आपकी भी पूरी हुई अब मनोकामना।

दुष्यंत–

सारथी को कहो, रथ लाओ यहाँ शीघ्र ही और दो धनुष–बाण–

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल–

महाराज, जय हो !

करभक आया राजधानी से अभी–अभी, भेजा राजमाता ने है आवश्यक कार्य से।

दुष्यंत–

कहाँ करभक है, उपस्थित करो उसे।

करभक–

जय महाराज, राजमाता का निर्देश ले आया हूँ मैं स्वामी के समीप, कहा उन्हें चौथे दिन पुत्र–पिंड–पालन का व्रत है, उस दिन आपकी उपस्थिति अभीष्ट है।

दुष्यंत–

इधर पुकार रहा मुझे कर्तव्य है, और है उधर आज्ञा स्वयं राजमाता की; दोनों में से भी न टालने के योग्य हैं; ऐसे समय मुझको क्या करना उचित है?

विदूषक–

एक बार ऐसी ही दशा हुई त्रिशंकु की, स्वर्ग न जा सका, न भू पर ही आ सका; बस महाराज, आज आप भी वही करें; न तो जायँ आश्रम में और न राजधानी में।

दुष्यंत–

मूर्ख ! यह समय नहीं है परिहास का, मेरा मन उभय–संकट में पड़ा हुआ; ठीक, याद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयी, माँ तुम्हें भी पुत्र कहतीं, जाओ राजधानी, क्षमा माँग लेना माता से, कहना कि आश्रम का गुरु–कार्य–भार ले रुकना पड़ा है मुझे यहाँ; मेरे बदले पुत्रोचित कार्य वहाँ तुम सभी करना।

विदूषक–

मनचाहा आपको मिला तो मुझे भी मिला; आश्रम में अटक रहा है मन आपका, और राजधानी के लिए मैं भी विकल हूँ।

दुष्यंत –

नहीं मित्र, मैंने परिहास मात्र था किया; ध्यान में न लाना, वनवासिनी शकुंतला पत्नी मृगियों के संग, मेरे योग्य है नहीं। रुक मैं रहा हूँ यहाँ आश्रम की रक्षा को। राक्षसों को मार मैं भी शीघ्र लौट आऊँगा; तब तक जाओ तुम, मार्ग सुखकर हो।

दूसरा दृश्य

(आश्रम–तपोवन में घूमते हुए दुष्यंत)

दुष्यंत – (स्वतः)

मानता हूँ सबसे बड़ा है तपोबल ही, और है शकुंतला कुमारी, परवश है, किंतु मेरा चित्त है उसी में नित्य अटका, एक पल को भी उसे भूल नहीं पाता हूँ, पल–छिन ध्यान उसका ही बना रहता, मन उसकी ही कथा बार–बार कहता, दृष्टि डालता हूँ जहाँ, वहीं छवि दीखती, विश्व जैसे तन्मय है मेरे लिए हो गया।

जैसे निम्न–भूमि–गामी जल नहीं लौटता, मेरा मन वैसे ही न लौटकर आता है। पुर, परिजन, राज्य या कि यज्ञ–रक्षा की बात सोचता हूँ तो उसी का ध्यान आता है, मन–पोत डूबा जाता प्रीति के उदधि में। चिन्ता यह और मुझे सतत सताती है, लौट जाना होगा मुनि–यज्ञ पूर्ण होने पर। हृदय रहेगा यहीं, देह दूर जायेगी, प्रीति यह और भी मुझे तब सतायेगी मन मेरा होगा मीन जैसे बिना जल का, प्राण से रहित काया किस काम आयेगी? सोचता हूँ ज्यों–ज्यों बढ़ी जाती है विकलता, किंतु मेरा एक भी उपाय नहीं चलता। होगी कहीं यहीं प्रिया, मालिनी के तट पर, किसी लता–कुंज में, विरह–ताप विकला; अवसर अल्प है, यहाँ हूँ जब तक मैं, नयन जुड़ा के उसे जी–भर के देख लूं। ढूंढ़ देखूं, है कहाँ नयन–मन–हारिणी।

(दूर से आती बीत–ध्वनि। लता–कुंज में बैठी शकुंतला गा रही है।)

कैसे उन्हें रिझाऊँ?

दुर्लभ धन वे, मन न मानता, कैसे उनको पाऊँ औचक ही वे सम्मुख आयें जन्म–जन्म के सुकृत अघायें। जाने कब मन हुआ पराया, रह–रह कर अकुलाऊँ उनके पहले ही दर्शन में अविचल प्रीति भरी इस मन में, अब नयनों से उमड़ रही वह, कैसे उसे छिपाऊँ? वनवासिनी मैं, वे राजेश्वर मुझ में उनमें कितना अंतर जानें को उनके समीप, मैं कितना पुण्य कमाऊँ? सखि, कैसे उनको पाऊँ?

दुष्यंत –

यह स्वर लोकोत्तर मधुर, प्रिया का है, निश्चय ही; किंतु यह स्वप्न है कि सत्य है? दाह तब क्या यह समान दोनों ओर है? होती न प्रतीति, कैसे विस्मय की बात है–दोनों हृदयों में प्रीति एक–सी निहित है, एक ही तरंग दोनों नदी–कूल छूती है, एक ही विभा से धरा–नभ आलोकित है। मैं हूँ यहाँ विकल वहाँ अधीर होती है प्रिया भी, रहस्य यह कैसा अलौकिक है!

(दूसरे मार्ग से आती हुई अनुसूया और प्रियंवदा को देखकर)

अरे–जा रही है अनुसूया और प्रियंवदा, उसी लता–कुंज–ओर, जहाँ है शकुंतला, चलूं, छिप जाऊँ कहीं मैं भी आस–पास में, सखियों की बातें सुनूं, प्रिया को निहार लूं।

(अनूसूया और प्रियंवदा का प्रवेश)

प्रियंवदा–

सखि अनुसूये ! दशा देखी है शकुंतला की? दिन–दिन कैसी वह क्षीण हुई जाती है। म्लान हो गयी है मुख–कांति, शांति मन की खो गयी हो जैसे, चाहती है दूर रहना हमसे भी, भीगी–भीगी आँखें सदा रहतीं, बैठ के अकेली कहीं शून्य में निहारती, कहती भी बात नहीं मन ही किसी से है, पहले–सा हास और हुलास नहीं उसमें, जल नहीं देती आलबाल में उमंग से, मृगशावकों को भी दुलारती न चाव से। देख दशा उनकी अपार दुःख होता है!

अनुसूया–

जब से पड़ी है दृष्टि उसकी प्रियंवदे, उस नर श्रेष्ठ राजा पर, वह तब से हो गयी निछावर है तन–मन–प्राण से; किंतु किसी भाँति की न देखकर समता अपने से उनकी, विकल मन छीजती जाती है दिनों दिन, मुझे है जान पड़ता।

प्रियंवदा–

अनुमान मेरा भी यही है, किन्तु इसका शीघ्र ही उपाय हमें होगा कोई करना। हो सका जो मिलन कहीं न महाराज से, जीवित शकुंतला सखी न रह पायेगी।

अनुसूया–

सत्य कहती ही, चलो देखें, कहाँ छिप के बैठी है विसुध, प्रिय–सुधि में शकुंतला देख काम में हमें, असावधान जान के। उठ चुपचाप इसी ओर कहीं आयी है।

प्रियंवदा–

अभी–अभी गीत–स्वर सुनने में आया था, निश्चय ही स्वर था सखी का, नहीं जिसने गान–विद्या सीखी किन्तु शिक्षक प्रणय ने दे दिये स्वयं ही जिसे गीत है विरह के।

अनुसूया–

अद्भुत रहस्य.....अरे देखो, यहाँ, बैठी है कुंज में शकुंतला, हमें न देख पाती है; ऐसी है प्रणय में बेसुध चित्तचोर के, देखती उन्हीं का रूप मानो कण–कण में।

(शकुंतला के सम्मुख जाकर)

प्रियंवदा–

जागो सखी, हो गया प्रभात, तुम्हें ढूंढ़ के हम तो थकी हैं लता–कुंज–उपवन में; तुम हमें छोड़ के अकेली चली आयीं हो और सो रही हो यहाँ जागती ही जागती।

शकुंतला– (लज्जित)

श्रांत हो गयी थी सखी कुछ, काम करके, लज्जित थी; इससे इधर चली आयी थी।

अनुसूया–

पहले तो श्रांत इस भाँति नहीं होती थीं और हमें छोड़ नहीं जाती थी कभी, कहीं; दिन–दिन क्षीण होती जा रहीं, मलिन–सी कांति पड़ी मुख की, रही नहीं प्रफुल्लता, कारण भी इसका अवश्य गुरुत्तर है; किन्तु हमसे तो रहती हो दूर–दूर तुम, बतलाती भी न क्या तुम्हारी मनोवेदना, हम प्राण–संगिनी हैं, हमसे छिपाना क्या।

शकुंतला–

मैं तो नहीं चाहती छिपाना सखी कुछ भी, किन्तु क्या कहूँ, मैं यही समझ न पाती हूँ, जन्म से पली हूँ संग–संग तुम दोनों के, फूल–पत्तियों से, मृगशावकों से खेली हूँ, जल विटपों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया, सेवा की अतिथि की और जप–तप–यज्ञ–अग्निहोत्र देखा है, छोड़ इनको न कभी, भ्रमित हुआ था मन मेरा यह किसी ओर, किन्तु जाने क्या हुआ, देखा जब से है मैंने उन नर–वर को–

प्रियंवदा –

कहो सखी, हमसे है लज्जा किस बात की?

शकुंतला–

मन मेरा विवश रहा न मेरे बस में, जाने किस भाँति यह हो गया है क्या से क्या किन्तु सखी, सच कहती हूँ, महाभाग वे यदि न मिले तो प्राण नहीं रह पायेंगे।

अनुसूया–

बात कहती है, सत्य ही सखी प्रियंवदे, इसकी दशा ही इस बात का प्रमाण है, ऐसा कुछ करना उपाय हमें चाहिये, हो सके सखी का मनस्काम पूर्ण जिससे।

प्रियंवदा–

प्रीति है तुम्हारी धन्य, योग्य सब भाँति है, क्योंकि वीर वह शिरोमणि पुरुवंश का, तुमने दिया है मन जिसे अनजानते। महानदी सर्वदा समुद्र में ही गिरती और मिलती है सहकार से ही माधवी।

अनुसूया–

उचित कथन है तुम्हारा, सोचती हूँ मैं, क्यों न एक पत्र लिखे राजा को शकुंतला, पूजा के प्रसाद–पुष्प–बीच जिसे रख के भेज दिया जाय, वृत्त गोपन रहे अभी।

शकुंतला –

पत्र मैं लिखूं? परन्तु शील मुझे रोकता वे कहीं निरादर करें न मेरी प्रीति का; कौन हैं वे और मैं हूँ कौन, भूल जाती हो!

प्रियंवदा –

प्रेम ऊँच–नीच, कुल–गौरव न देखता, धन–मान–प्रभुता अपेक्षित नहीं उसे, राह पाता, वहीं फैल–फूल जाता है। और उस दिन, जब राजा दुष्यन्त थे आये तपोवन में अपरिचित अतिथि–से, देखा था उन्होंने, जब सखी को प्रथम बार, अनुराग उनके दृगों में भर आया था, और वे भी तब से शकुंतला की सुधि में दीन से बने हैं क्षीण होते चले जाते हैं।

शकुंतला –

ऐसे में भी सखी, उपहास करती हो तुम?

अनुसूया –

नहीं सखि ! प्रेम तो है दोनों ओर पलता, जलता पतंग है तो दीपक भी जलता, पतंग है तो दीपक भी जलता, है भी यही उचित, अकातर हृदय लिखो उन्हें पत्र तुम, मेरी बात मान लो।

शकुंतला – (विवश)

जो कहो, करूँ; पड़ी हूँ मंझधार में, डूबती–सी जाती हूँ, विवेक कहाँ मुझ में? किन्तु लिखूं कैसे? पत्र–लेखनी कहाँ यहाँ?

प्रियंवदा –

पत्र यह सम्मुख है कोमल कमल का, नख से इसी पर लिखो न बात मन की, सेतु बने वही दोनों कूलों को मिलाने का।

शकुंतला –

लाओ, वैसा ही करूँ.....

दुष्यंत –

(अलग).....न हृदय अधीर हो, अवसर अच्छा है, प्रिया को नेत्र भर के देखने का; समय समीप–सा मिलन का; गोपन रहा न भाव उसके हृदय का, मेरे ही समान वह पीड़ित विकल है, कर–गत–सा है रत्न आज त्रिभुवन का।

शकुंतला –

लिख दिया जैसा तैसा मैंने यह पत्र तो, किन्तु उर मेरा यह काँप रहा अब भी, शंका से, व्यथा से, भय से, गम्भीर लज्जा से।

अनुसूया –

पढ़ के सुनाओ, क्या लिखा है, सुनें हम भी।

शकुंतला –

लो, सुनो, है गोपन क्या मेरा तुम दोनों से?

(पत्र पढ़ती है)

देखा जब से है मैंने आपको पुरुष–सिंह, तन छोड़ मेरा मन जा बसा है, आप के चरणों में, आपका हृदय नहीं जानती; अब तो अधीर हो रही हूँ आपके बिना, आतुर है उर मिलने के लिए आप से। मदन सताता क्षण–क्षण मेरे मन को।

(दुष्यन्त का आकस्मिक प्रवेश)

दुष्यंत –

सुन्दरी! तुम्हें तो वह केवल सताता है, किन्तु देखो, मुझे भस्मसात् किये डालता, होती है कुमुदिनी मलिन जिस रवि से, वही चन्द्रमा को नष्ट–जैसा कर देता है। कितनी सहूँ मैं व्यथा दुस्साह विरह की? है सदा सहन की भी सीमा हुआ करती।

प्रियंवदा –

महाराज ! आपने तो सीमा पार कर ली, बीत गयी आपकी विरह की तमोनिशा, आगमन आपका सुखद सब भाँति हो, पूरे हुए सखी के मनोरथ सहज ही।

अनुसूया –

स्पष्ट ही है प्रीति आप दोनों की, परन्तु मैं फिर भी करूँगी कुछ प्रार्थना महीप से। आज्ञा दें.....

दुष्यंत –

अवश्य कहो, बात यदि मन की, रह जाती मन में तो वेदना ही बनती।

अनुसूया –

एक व्यक्ति भी हो प्रजा का जो आर्त्त दुख से धर्म यह राजा का है, दूर उसको करे।

दुष्यंत –

सत्य कहती हो, यह श्रेष्ठ राजधर्म है।

प्रियंवदा –

मन्मथ ने मथ डाला हृदय सखी का है, देखा पहले भी, अब आज इसे देख लें, प्राण इसके हैं टिके आपके स्मरण में, योग्य समझें तो अबला की रक्षा कर लें।

दुष्यंत –

प्रार्थना तुम्हारी दोनों ओर ही समान है, अपनी सखी से भी यही क्यों नहीं कहतीं?

शकुंतला –

सखि ! न अधिक देर रोको यहाँ नृप को, बंदी उर इनका है राज्य–अंतःपुर में।

दुष्यंत –

व्यर्थ यह शंका है तुम्हारी मृगलोचनी! मन मेरा केवल है वश में तुम्हारे ही, अधिकार इस पर और किसी का नहीं, फिर भी तुम्हें हो यदि शंका, जान लूँगा मैं, मन्मथ ने मारा मुझे, मारती हो तुम भी।

अनुसूया –

नृपति ! सुना है राजाओं के अंतःपुर में, होती है अनेक रानियाँ नयन–पुतली; प्रार्थना है, ऐसा निर्वाह सखी का करें, जिससे न कष्ट होने पाये परिजन को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्यंत –

व्यर्थ यह चिंता है तुम्हारी है तपस्विनी! दो ही होंगी मेरी कुल–शीलवती रानियाँ एक तो स–सागरा धरा औ यह दूसरी, सखी ही तुम्हारी होगी प्राणप्रिय मुझको।

प्रियंवदा –

चिंता मिटी नृपति ! कृतज्ञ हम आपकी।

अनुसूया –

देखो तो प्रियंवदे ! हरिण–शिशु कैसा वह, भोले–भाले से चकित हो निहारता, बिछड़ गया है माँ से, ढूँढ़ता है फिरता चारों ओर, उसको मिला दें चलो दोनों को।

शकुंतला – (व्यग्र)

दोनों मत जाओ, पड़ जाऊँगी अकेली मैं, एक भी तो सखि, मेरे निकट बनी रहो।

प्रियंवदा –

पालक धरा का तो तुम्हारे पास बैठा है, चाहोगी न तब भी अकेली रह पाओगी।

(दोनों का प्रस्थान)

शकुंतला –

हाय! सखियां तो दोनों सत्य ही चली गयी।

दुष्यंत –

भय क्या तुम्हें है? पास ही तो मैं तुम्हारे हूँ; सेवक तुम्हारा, सब भाँति अनुगत है; कहो तो शरीर पै उशीर–लेप कर दूं, व्यजन करूँ या मंद–मंद सरसिज का, अथवा कहो तो पग जावक–लगे–से ये, गोद ले के दाबूँ, सब श्रम–भार हर लूँ।

शकुंतला – (लज्जित)

लेते अपराध हैं बड़ों का नहीं, छोड़िये, आश्रम है सूना, मुझे वहाँ जाना चाहिये।

दुष्यंत –

स्वप्न जो हुआ है सत्य, तोड़ो नहीं उसको, मिल इस भाँति, मुख मोड़ो नहीं मुझसे, कोमल शरीर धूप कैसे सह पावेगा?

शकुंतला –

पुरु–कुल–गौरव ! अनीति मत कीजिये आहत मदन–शर से भी परतंत्र हूँ।

दुष्यन्त –

भय गुरुजनों का निरर्थक तुम्हारा है, अविदित नहीं धर्म–मर्म ऋषि कण्व को। पहले भी ब्याही ऋषि–कन्याएँ अनेक हैं विधि गांधर्व से, परोक्ष में स्वजन के, और उन्हें मिला है समादर भी कुल में। वंचित न हूँगा सम्पदा पा त्रिभुवन की, तुम्हें अपने से दूर जाने नहीं दूँगा मैं।

(वाद्य)

तीसरा दृश्य

(चिंता–मग्न शकुंतला गा रही है)

शकुंतला –

चले गये सखि पाहन मन के, कैसे धीर धरूँ?

कैसे काटूँ पल वियोग के, कौन उपाय करूँ?

स्वप्न खिला कोई जीवन में

मधुर उमंग भरी इस मन में

मधु ऋतु ने चाहा, इस आँगन की छवि बन उतरूँ।

चाहा जिनका संग निरंतर

रुक पाये वे निकट न पल भर

कहाँ चरण वे, जिन पर कलि बनकर मैं आज झरूँ?

मन है एक, भले दो तन हैं,

झर–झर झरते यह लोचन हैं,

बरसाकर कब तक दृग–जल मैं उर का ताप हरूँ?

चले गये सखि पाहुन मन के, कैसे धीर धरूँ?

(फूल चुनती हुई अनुसूया और प्रियंवदा)

अनुसूया –

प्रियंवदे ! स्वप्न के समान बीते दिन ये, हो गया गांधर्व रीति से विवाह राजा से रूपसी शकुंतला का, दूर हों दुरित सब, चिंता अब भी है लगी किंतु मेरे मन में।

प्रियंवदा –

अब और कारण क्या शेष रहा चिंता का?

अनुसूया –

पूर्ण करा यज्ञ तापसों का राजा आज ही, लौट के गये हैं राजधानी, भय होता है, जा के वहाँ भूल मत जायें सखी को कहीं !

प्रियंवदा –

नहिं, नहिं सखि, वैसे जन और होते है, शीघ्र समारोह से बुला लेंगे सखी को वे; चिंता है यही कि पिता कण्व जब लौटेंगे, सुनेंगे समस्त वृत्त तो जाने कहेंगे क्या !

अनुसूया –

होंगे वे प्रसन्न, ऐसा मेरा अनुमान है। देना चाहते हैं गुरुजन सदा कन्या को हाथ में गुणज के, कहीं जो दैव योग से, मेल मणि–कांचन का ही तो बड़ी बात है।

प्रियवंदा–

ईश्वर करें कि ऐसा ही हो !.....सखी, अब तो पूजन के हेतु पुष्प हो गये प्रचुर हैं, चलो, अब लौट चलें.....

अनुसूया –

(कान देकर) सुनो यह कौन है! (आश्रम–कुटी के द्वार पर क्रुद्ध दुर्वासा)

दुर्वासा – (क्रोध से)

कब से पुकारता में द्वार पै खड़ा हुआ, कोई कान देता नहीं, यहाँ क्या अतिथि का स्वागत इसी प्रकार आजकल होता है?

प्रियंवदा –

यह है अतिथि कोई, आके लौटा जा रहा।

अनुसूया –

उन्मता शकुंतला कुटी में नहीं स्यात् है, होगी भी तो आज चित्त उसका विकल है।

प्रियंवदा –

चलो सखी, देखें तो अतिथि यह कौन हैं, ऐसा न हो, लौट जाये यह अनादृत हो।

दुर्वासा – (दूर से आता क्रोधित स्वर)।

अतुल तपोधन मैं विश्व में विदित हूँ, द्वार पर आके लौटता हूँ पर आके लौटता हूँ अनादृत हो, ऐसा अपमान मैंने पहले न पाया था। अतिथि–अनादारिणी! ध्यान में तू जिसके, सुध–बुध भूल इस भाँति खोयी बैठी है, वह भी भुलायेगा तुझे, कठोर शाप से, स्मरण उसे न तेरा किसी भाँति आयेगा।

प्रियंवदा –

हो गया अनर्थ ! यह तो न कोई और है, महाकोधि ऋषि दुर्वासा लौटे जा रहे, क्रोध–वश हो कठोर शाप दे के वेग से, नासा–पुट फूले, अधर फड़कते, पड़ते हैं पग भी त्वरा से डगमग–से, विश्व में हैं दो ही तो समर्थ, भस्म कर दें चाहे जिसे–एक अग्नि, दूसरे महर्षि ये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसूया–

हाय अब होगी दशा मंदभागिनी की क्या,
भूल गये सत्य ही जो नृप कहीं उसको।
जाओ सखी, लौटा उन्हें लाओ किसी भाँति से, पैरों पड़ के या प्रार्थना विनीत करके।

प्रियंवदा –

आशा नहीं, फिर भी प्रयत्न कर देख लूँ।

अनुसूया–

अपराध तो बड़ा शकुंतला से हो गया। किन्तु वह दुःखिनी विरह की सतायी है। बेसुध बनी है, उसे ईश्वर क्षमा करें। हाय, यह क्या हुआ? सुमन पूजा के गिरे। चंचल है चित्त, देह भय से है काँपती। शकुन नहीं है यह अच्छा, लो, प्रियंवदा लौटी आ रही है।.....सखि, लौटे नहीं ऋषि क्या?

प्रियंवदा –

नहीं सखि, उबल रहे थे वे तो क्रोध से। लौटे न किसी प्रकार, किन्तु मेरी प्रार्थना निष्फल भी हो न सकी; बोले, यह शाप तो मिट न सकेगा, किन्तु अंगूठी देख के भूली हुई बात उसे फिर याद आवेगी।

अनुसूया –

डूबते को यह भी सहारा कौन कम है? अच्छा ही हुआ कि राजा दे गये सखी को हैं नामांकित अपनी अंगूठी विदा–वेला में, वही अब उसे इस शाप से उबारेगी।

प्रियंवदा –

सखि अनुसूये ! वृत्त शाप का महर्षि के भूलकर भी नहीं शकुंतला से कहना! यों ही वह बावली–सी हो रही वियोग में, सह न सकेगी यह वज्रघात सरला।

अनुसूया–

सत्य कहती हो, बड़ा कोमल हृदय है उसका, कहीं न टूट जाये वह काँच सा।

चौथा दृश्य

(आश्रम में प्रियंवदा और अनुसूया)

प्रियंवदा –

आश्रम में आये पिता कण्व हैं प्रभात में। जाने अब होगा क्या, मुझे तो भय होता है।

अनुसूया –

कारण प्रियंवदे ! रहा न अब भय का; होते ही प्रभात मैं गयी थी क्षेम जानने निकट सखी के, तभी आ गये पिता वहीं, देख उन्हें सम्मुख, शकुंतला सभीत–सी लज्जा–नत–लोचन खड़ी रही, स्नेह से मस्तक पर कर फेर कहने लगे पिता–"बेटी जानता हूँ वृत्त सब योग–बल से, लज्जित न होओ, यह गौरव तुम्हारा है, खेद नहीं होता विद्या दे के योग्य शिष्य को, कन्या दे गुणज्ञ को पिता को सुख होता है, जैसे शमी–गर्भ में अनल का निवास है, पुत्रि, तुझमें है तेज ऋत का विराजता, तुझको उचित पति–गृह में ही रहना, प्रस्तुत हो, आज तुझे भेजूँगा सहर्ष मैं शारद्वात–गोतमी के संग राजधानी को।"

अनुसूया–

चलो, एक चिंता मिटी है बड़ी प्रसन्नता। किन्तु खेद होता यह, सोच तपोवन को छोड़ के सदा के लिए जायगी शकुंतला।

प्रियंवदा –

सुख से रहेगी पति–संग बड़भागिनी, बनेगी हमारे लिए यही बात सुख की। समय नहीं है अब अधिक, चलो चलें, मंगल–विधान करें सखी की विदाई का।

कण्व–(दूर से) कहो गौतमी से और शारद्वत मिश्र से प्रस्तुत रहें शकुंतला के संग जाने को।

प्रियंवदा –

अनुसूये ! सुनो, पिता हैं उन्हें पुकारतें हस्तिनापुर जायेंगे जो संग सखि के। चलो, शीघ्र हम भी उसे सजा–सँवार दें, आज वन–कन्या जा रही है राजपुर को।

अनुसूया –

हाँ, हाँ, चलो, मंगल की बेला यह आयी है।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रियंवदा –

देखो, शिरस्नान कर बैठी है शकुंतला, तापसियाँ जा रही हैं उसको असीस दे।

शकुंतला –

(रुद्ध कंठ से)।

आओ, सखि बैठो, तुम दोनों छूट जाओगी आज सब दिन के लिए, विकल चित्त है।

अनुसूया –

सखी, इस भाँति जी को छोटा नहीं करते, पाने के लिए है कुछ छोड़ना ही पड़ता, यही है जगत् व्यवहार; समय है नहीं। आओ, हम मंगल का नेगचार कर दें।

शकुंतला – (कातर)

सखियों, मुझे न यह समय
मिलेगा फिर, फिर न तुम्हारे हाथ का सिंगार पाऊँगी, आज जो भी चाहो करो, रोकूँगी नहीं तुम्हें, याद तुम दोनों की सदा मुझे रुलायेगी।

प्रियंवदा –

इस भाँति होओ न अधीर सखी, यह तो मंगल की घड़ी; हँसी–खेली तपोवन में अब तक, अब सुख भोगो पति–गृह का; सुख से तुम्हारे ही हमें भी सब सुख है।

कण्व – (आते हुए)

जा रही शकुंतला है आज पति–गृह को, आकुल–सा जाने क्यों है चित्त मेरा हो रहा, कंठ अवरुद्ध, आँखें भर–भर आती हैं; बाल–काल से ही रही संग–संग डोलती, रोय–हँसी, खेली–खिली लोचनों के सामने– मृगशावकों क संग खेली, खिली लता संग–आश्रम की कुसुमित शोभा–सी शकुंतला। आज वही ले रही विदा है तपोवन से, मन वीतराग मेरा भर–भर आता है। मेरी भी दशा है जब ऐसी तो भला गृही कन्या की बिदा में हो विकल तो विस्मय क्या?

अनुसूया –

लो सखी, तुम्हारी अब सज्जा पूरी हो गयी।

प्रियंवदा –

मूर्त बनी मानो स्वयं सुन्दरता बैठी हो।

गौतमी –

बेटी, पिता आये हैं, प्रणाम इन्हें कर लो।

शकुंतला – (रुद्ध कण्ठ से)

करती प्रणाम पिताः ! मुझे क्षमा करें, अपराध मुझसे न जाने कितने हुए!

(रोती है)

कण्व –

सुखी रहो बेटी ! बनो पति की सुहागिनी, माता बनो चक्रवर्ती पुत्र की, स्वजन की सुखदायिनी सदैव तुम बनी रहना।

कर लो हुताग्नि इस वेदी की प्रदक्षिणा, शांत होवें इससे अमंगल तुम्हारे सब।

(शकुंतला प्रदक्षिणा करती है)

गौतमी, उपस्थिति विदा की शुभ बेला है, अब न विलंब करो, कहाँ शारद्वत है?

शारद्वत –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह मैं उपस्थित हूँ गुरुदेव, आज्ञा दें!

कण्व –

मार्ग बतलाओ अपनी इस बहन को।

शारद्वत –

आओ देवि, आगे बढ़ चलो, इस मार्ग से।

कण्व – (आर्द्र स्वर में)

तरुगण, देखो सहवासी तपोवन के, जा रही शकुंलता है आज पति–गृह को।

जल तुम्हें देती पहले थी, फिर पीती थी, भूषण के हेतु भी न पत्र–पुष्प तोड़ती; आते जब फूलने के दिवस तुम्हारे थे, उत्सव मनाती सदा, फूली न समाती थी, स्नेह के सहित तुम भी इसे विदा करो, दो असीम, पथ के अमंगल विनष्ट हों।

(कोयल कूकती है)

कूक कर कोयल तपोवन की संगिनी, आज्ञा तुम्हें दे रही है समुद्र प्रयाण की।

शकुंतला – (अलग, धीमे से)

प्रियंवदे ! यद्यपि अधीर है हृदय यह, आतुर है अति आर्यपुत्र के मिलन को, छोड़ते हुए परन्तु आज तपोवन को, वृक्ष–लताओं को, पशु–पक्षियों को, तुमको, आहत हृदय यह टूटता–सा जाता है।

प्रियंवदा –

सखि, यह दशा नहीं केवल तुम्हारी है, हम सभी आगत वियोग से विकल हैं। छोड़ा दूब चरना मृगों ने, शिखियों ने नृत्य, लता पीत पत्र त्याग अश्रु बरसा रही, किन्तु इस वेदना में भी निहित सुख है, नारी के लिए तो होता उत्सव, विछोह यह।

शकुंतला – (कण्व से)

पिता, मिल लूँ मैं इस माधवी लता से, यह मुझको रही है प्रिय सोदरा समान ही।

कण्व –

जानता हूँ बेटी, यह बायीं ओर है लता।

शकुंतला – (अश्रु–गदगद)

प्यारी वनज्योत्स्ने, सहकार से है लिपटी यद्यपि तू, फिर भी बढ़ा के शाखा–बाहु को भेंट ले मुझे मैं दूर होती आज तुझसे।

कण्व –

पुत्री, तेरे पति के लिये भी जैसी कल्पना मेरी, वैसा पा लिया है तूने पुण्य–बल से; और यह मल्लिका मिली है आम्र–तरु से आज तुम दोनों से उऋण हूँ मैं हो गया।

शकुंतला –

सखियों, इसे मैं सौंपती हूँ तुम दोनों को।

अनुसूया –

और हम दोनों को सखी, हो किसे सौंपती?

कण्व –

तुमको अधीरता न यह शोभा देती है, तुम्हें तो शकुंतला को धैर्य देना चाहिये।

शकुंतला –

अरे, यह कौन मेरा अंचल है खींचता?

कण्व–

बेटी ! यह वही मातृहीन मृगछौना है, जन्मते ही जिसके हुई थी मृत्यु माता की, तब था बचाया जिसे तूने पाल चाव से, अपने करों से ही खिलाया सवाँ धान था, फिर जब कुश से कटे थे ओंठ इसके, तेल लगा इँगुदी का चंगा जिसे था किया, जान जिसे पुत्र के समान, मानती रही, आज वही पग तेरे छोड़ नहीं पाता है।

शकुंतला – (रोकर)

अरे मृगछौने ! छोड़े जा रही मैं तुझको, तू क्यों संग मुझ निष्ठुरा का छोड़ता नहीं? आज तक लालन किया था मैंने, अब से पालन करेंगे पिता तेरा उसी चाव से।

शारद्वत –

आश्रम से दूर आ गये हैं तपोवन, हम; सम्मुख सरोवर है, अब आप लौटिये; कहलाना जो कुछ ही नृप से, कहें मुझे, सुन उसे भली भांति मन में सहेज लूँ।

कण्व –

शारद्वत ! नृपति स्वयं ही अति विज्ञ हैं, उनसे कहूँ क्या और ? कह देना फिर भी–

"नृप! हैं तपस्वी हम, तुम राजवंश के, प्रीति तुम दोनों की परस्पर है हो गयी, करके स्मरण इन बातों का कृपालु तुम रखना शकुंतला को अन्य रानियों–सी ही; इससे अधिक जो ही इसके प्रारब्ध से, उसके लिए हमें नहीं है कुछ कहना !"

शारद्वत –

स्मरण रखूँगा भली–भाँति इन बातों को, और समझा के कह दूँगा मैं नृपति से।

कण्व –

बेटी ! तुझसे भी मुझे कहना है इतना– आज तक मेरी थी, परायी हुई आज से, जाके पतिगृह में बड़ों की सेवा करना, सौतों में सखी का–सा सदा ही भाव रखना, पति जो करे कभी निरादर तुम्हारा तो रूठना न उससे, न अभियान करना; बोलना सदैव मीठी वाणी दासियों से भी, गर्व करना न बड़े भाग्य पर अपने।

गौतमी –

कुलवधुओं के लिए योग्य उपदेश है; बेटी ! सदा रखना पिता की बात ध्यान में।

शकुंतला –

पिता का निर्देश सिर आँखों पर रखूँगी।

कण्व –

बेटी, बीतती है बेला, अब हम लौटेंगे; सखियों से अपनी औ मुझसे भी मिल ले।

शकुंतला –

हा पिता, क्या सखियाँ यहीं से लौट जायेगी?

कण्व –

हाँ, ये हैं कुमारी अभी, इनका नगर में जाना न उचित, गौमती तो संग जाती है।

शकुंतला–(कण्व के गले लगकर रोती हुई)

छूटती हूँ आज मैं पिता की प्यारी गोद से, जैसे मलयगिरी से चन्दन की डाल है; हाय, वहाँ जीवित रहूँगी किस भाँति मैं, छोड़ के तपोवन को, सखियों को, तात को।

कण्व –

कन्ये ! ऐसी बात नहीं मुख पर लाते हैं, जा के वहाँ राजवधू बनेगी, विभव के शत–शत कामों से न अवकाश पावेगी; पूर्व दिशा जैसे जन्म सविता को देती है जन्म देगी वैसी ही यशस्वी पुत्र को तू जब, मेरे छूटने की व्यथा तुझको न व्यापेगी।

शकुंतला –

दो पिता चरण, रज माथे पर ले लूँ मैं।

कण्व –

पूरी होगी सब भाँति तेरी मनोकामना।

शकुंतला –

आओ सखि, तुम दोनों जी भर के भेंट लो।

अनुसूया –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैव योग से जो कहीं भूल जायँ तुमको नृप, तो दिखाना यह अंगूठी उनकी; देख इसे वृत्त सब उन्हें याद आयेगा।

शकुंतला –

पिता का निर्देश सिर आँखों पर रखूँगी।

शकुंतला –

सुन यह बात काँपने लगा हृदय है; कारण क्या है भला तुम्हारी इस शंका का?

प्रियंवदा –

कुछ नहीं; केवल प्रणय की अधिकता जन्म देती मन में अनेक–रूप शंका को।

शारद्वत –

हो रहा विलम्ब, अब चलना भी चाहिये।

शकुंतला– (रोकर)

देखूँगी पिता, मैं फिर कब तपोवन को?

कण्व –

बेटी, जब बहुत दिनों तक तू नृप की वन के सुहागिनी रहेगी, सुत भी बड़ा होगा, सब भाँति से समर्थ और योग्य भी; उसका विवाह कर, राज–काज सौंप के हो के चिन्ताहीन जब नृप यहाँ आवेंगे, आना तू भी उनके संग तपोवन में।

गौतमी –

बीती जा रही है बेला अब तो प्रयाण की, लौट जावें आप तपोवन अब, यह तो बातें इसी भाँति कहती रहेगी; मन का भावावेग शीघ्र कम होने नहीं पायेगा।

कण्व– (निःश्वास छोड़कर)

चलूं, अग्निहोत्र का समय है, शकुंतले!

शकुंतला –

पिता, मेरे लिए शोक अधिक न कीजिये, दुर्बल शरीर आपका कठोर तप से।

कण्व – (साश्रु)

बेटी! पूजा–हेतु तूने धान्य जो चुने थे वे अभी–अभी उग आये है उरज–द्वार पर; देख उन्हें तेरी स्मृति बार–बार आयेगी शामित न होगा शीघ्र शोक तो बिछोह का। किन्तु अब जा तू, देख, वेला बीती जाती है।

शकुंतला – (व्यथित)

जाती हूँ पिता, करें स्वीकार मेरी वंदना।।

पांचवां दृश्य

(राजभवन में राजा दुष्यंत और विदूषक।)

द्वारपाल –

जय महाराज ! ऋषि कण्व के तपोवन से नारियों के संग एक तापस पधारे हैं।

दुष्यंत –

आये हैं तपस्वी, ऋषि कण्व के यहाँ से? उन्हें आदर से लाओ.....

द्वारपाल –

जैसी आज्ञा महाराज की। आइये तपोधन, पधारिये इधर से।

दुष्यंत –

आये हैं तपस्वी एक आश्रम से कण्व के कहो विदूषक, क्या संदेश लाये होंगे वे? विघ्न आ पड़ा है बड़ा कोई क्या तपस्या में, या है किया पीड़ित किसी ने तपोवन के पशु–पक्षियों को; या कि तरु–लता–बल्लरी पाकर भी समय से न फूलते, न फलते?

विदूषक –

नहीं महाराज, नहीं संभव किसी प्रकार आपके सु–राज में अनर्थ कभी ऐसा है; स्यात् वे प्रसन्न हो के आपकी सु–नीति से ले के उपहार कुछ आये तपोवन से– तभी तो है राल मेरी जिह्वा में आ रही।

द्वारपाल–

आइये तपोधन, पधारिये इधर से।

शकुंतला – (स्वतः)

हाय, यहाँ आते ही लगी है क्यों फड़कने आँख मेरी दाहिनी, हे ईश्वर, कुशल हो।

गौतमी –

पुत्रि ! होगा मंगल, यशस्वी तेरा पति है, भय क्या है? भर्ता के समीप अब आयी है।

द्वारपाल –

आइये तपस्वि ! महाराज बाट जोहते, पालक प्रसिद्ध जो हैं वर्णाश्रम धर्म के।

शारद्वत –

जय हो सदैव प्रजापालक महीप की।

दुष्यंत –

करता प्रणाम आप सबको तपोनिधान।

शारद्वत –

आपके मनोरथ सकल सदा सिद्ध हों।

दुष्यंत –

सुख से तो होती है तपस्या आप सब की?

विघ्न पड़ता तो नहीं कोई धर्म–कार्य में?

शारद्वत –

नहीं महाराज ! भासता है सूर्य नभ में जब तक भास्कर, न अंधकार होता है; उसी भाँति आपसे यशस्वी महीपति के रहते तपोवन में विघ्न नहीं आते हैं।

दुष्यंत –

जान यह परम प्रसन्नता हुई मुझे, लोक–हितकारी कण्व मुनि तो प्रसन्न है?

शारद्वत –

रहती कुशलता है तप के अधीन ही, सुखी सब भाँति वे, उन्होंने हमें भेजा है–

दुष्यंत –

आज्ञा क्या महर्षि की है, शीघ्र बतलाइये?

शारद्वत –

कहा है उन्होंने– "मैं तो था न तपोवन में, आपने पधार के विवाहा इस कन्या को, अंगीकार कार्य करता हूँ यह आपका, क्योंकि जहाँ आप सज्जनों में श्रेष्ठतम हैं, है वहाँ शकुंतला भी सत्क्रिया– स्वरूपिणी; अतएव योग्य है मिलन आप दोनों का, समगुण भाग्य से ही कभी मिल पाते हैं; भेजता हूँ इससे समीप इसे आपके, अंतःसत्वा आपकी है, ग्रहण इसे करें।

गौतमी–

महाराज, मैं भी कुछ कहना चाहती हूँ, सुन लें उसे भी, आप नीति–धर्म–ज्ञाता हैं, ब्याह आप दोनों ने किया है जो स्वतः ही, आपने न पूछा बंधु–जन से, न इसने लिया गुरुजन का आदेश, अतः अब भी बातें आप दोनों परस्पर कर लीजिये।

शकुंतला – (स्वतः)

देखूं, भला अब आर्यपुत्र कहते हैं क्या!

दुष्यंत –

तपोनिष्ठ, यह सब सुन मैं रहा हूँ क्या, समझ न पाता बात आपकी मैं कुछ भी; भला कब ब्याह हुआ मेरा इस देवि से?

शकुंतला –

हाय, यह बात आर्यपुत्र कैसे कहते?

शंका जो हृदय को थी, सत्य वह होगी क्या?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुष्यंत –

आप हैं तपस्वी, फिर समझ न पाता मैं, मिथ्या अपवाद किस हेतु मुझे देते हैं?

शारद्वत –

होते जो विभव–मद–मत्त चित्त उनका चंचल इसी प्रकार होता है स्वभाव से।

गौतमी –

बेटी, यह समय नहीं है अति लज्जा का, ला, मैं तेरा घूंघट हटा दूं, तुझे देख लें पति तेरे, और देखकर पहचान लें।

दुष्यंत –

स्मरण नहीं है किसी भाँति मुझे आ रही, कभी इस सुन्दरी को कहीं मैंने देखा है, बात तो वरण करने की बड़ी दूर है। आप कहते हैं, अंतःसत्वा यह देवी है, फिर इसे ग्रहण करूं तो किस भाँति मैं? भागी बनूं कैसे जान–बूझ के अधर्म का?

शकुंतला –

आर्यपुत्र अस्वीकार करते विवाह ही हाय दैव ! और भला आशा भी करूं तो क्या?

शारद्वत –

नृपति ! न ऐसी बात कहनी उचित है; कन्या जिसकी थी छली तुमने अनीति से, होकर उदार अंगीकार उसने किया ब्याह को तुम्हारे; हर्षयुत कन्या भेज दी; जैसे कोई चोरी गयी वस्तु लौटा देता हो चोर को ही; और उसे साधु मान लेता हो; योग्य है क्या वह तपोधन अपमान के आप ही के द्वारा इस भाँति, स्वयं सोच लें।

(शकुंतला से)

आज्ञा हमें जो थी गुरुदेव की शकुंतले, कर दिया हमने निवेदन नृपति से, अब तू ही कह, जो भी कहना हो तुझको, जिससे प्रतीति इन्हें हो, वही उपाय कर।

शकुंतला – (स्वतः)

प्रीति ही रही न जब पहले–सी इनकी स्मरण दिलाने का प्रयोजन ही क्या रहा? किन्तु बचने के लिए लोक–अपवाद से अब तो प्रयत्न करना है मुझे; (प्रकट) आर्यपुत्र !

(रुककर स्वतः) नहीं, नहीं, जब ये स्वीकार नहीं करते, ब्याह को तो संबोधन यह अनुचित है।

(प्रकट)

नृपति ! तपोवन में आपने प्रथम बार मीठी–मीठी बातों से, अनेक प्रतिज्ञाओं से वश में किया था मुझे, आज आँखें फेर के अस्वीकार करते हैं मुझको, विवाह को, शोभन क्या आपके लिए है व्यवहार यह?

दुष्यंत –

देवि ! यह उचित नहीं है, पाप शांत हों, समझ न पाता, आप सभी किस हेतु से चाहते डुबाना मुझे इस पाप के पंक में, और दोष–दुष्ट कर देना मेरे वश को? नदी तट तोड़ के गिराती तरुदल को, जल और शोभा होती मलिन उसी की है।

शकुंतला –

महाराज, सत्य ही क्या भ्रांति हुई आपको? पर–नारी सत्य ही क्या आप मुझे मानते? सत्य होता यद्यपि स्वतः प्रमाण, फिर भी देखती हूँ, देना होगा उसका प्रमाण भी, तो लें यह अंगूठी, आपने दिया जिसे, स्मृति–चिन्ह–रूप में मुझे था तपोवन में, अंकित जो इस पर है नाम, आप देख लें।

(अंगूठी को उंगली में न पाकर)

हाय हाय, अंगुली तो मेरी यह सूनी है, क्या हुई अंगूठी वह, सहसा कहाँ गयी?

दुष्यंत – (हँसकर)

निस्संदेह, रचना विचित्र यह आपकी, आती कभी–कभी काम बुद्धि अवसर की; नारियाँ चतुर लेतीं इसका सहारा हैं, किन्तु आपसे भी भूल हो गयी है थोड़ी–सी, होते सभी स्थान–अवसर नहीं एक–से।

बालक नहीं हूँ मैं, भुलावे में न आऊँगा।

शकुंतला – (तिरस्कार से)

अपना–सा कुटिल हृदय आप सबका जानते हैं, धर्म की दुहाई बड़ी देते हैं किन्तु सच, आप उस कूप के समान हैं, घास–फूस से ढका जो रहता, न दीखता।

शारद्वत –

लाभ क्या है ऐसी बातों से भला शकुंतला, दे दिया संदेश, हम लाये थे जो गुरु से;

(दुष्यंत से)

नृप, यह वधू आपकी है, आप इसके पति हैं, है अधिकार सब भाँति आपका– पालन करें या आप चाहें इसे त्याग दें; गौतमी, चलो, चलें, हमारा यहाँ काम क्या?

(दोनों आगे बढ़ते हैं। रोती हुई शकुंतला भी पीछे–पीछे जाती है।)

शकुंतला –

इस छली राजा ने तो त्याग ही दिया मुझे, तुम भी क्या मुझको अकेली छोड़ जाओगे?

गौतमी –

पुत्र शारद्वत, है अभागिनी शकुंतला साथ छोड़ती न, पीछे–पीछे आती है।

शारद्वत – (क्रोधित) –

हतभागिनी! तू क्या स्वतंत्र हुआ चाहती? आयी जिस पति के समीप, वहीं रह तू; नृप कहते हैं तुझे जैसी, यदि वैसी है, पतिता तू अब नहीं आश्रम के योग्य है; किन्तु यदि वास्तव में तू है सत्यचारिणी, दासी बनके भी बनी रह पतिगृह में, मार्ग मत रोक, हमें आश्रय को जाने दे।

(दोनों जाते हैं)

शकुंतला – (रोकर)

गये मेरे बांधव अकेली मुझे छोड़ के, पति ने दिया न ठौर चरणों में अपने, हाय, अब क्या करूँ मैं, जाऊँ कहाँ? हे धरा ! तू ही निज अंक में छिपा ले मुझे जननी।

छठा दृश्य

(राजभवन में महाराज दुष्यंत और विदूषक)

दुष्यंत –

दिन बीते, मास–वर्ष बीत गये कितने, आज सुधि आती मुझे सतत प्रिया की तिरस्कार द्वार पर आयी हुई लक्ष्मी का मैंने ही किया था, जाने किस मतिभ्रम से प्रत्यय किया न उसकी किसी भी बात का। सब विधि सुधि दिलाकर जब हारी थी, कहा था कि 'देखें, यह अगुरीय अपनी, किन्तु थी अँगूठी नहीं उंगली में उसकी; भीता हरिणी–सी थर–थर वह कांपी थी कह–'स्यात् गिरी है अंगूठी शत्रीतीर्थ में।' और तब मैंने उपहास कर उसका मिथ्यावादिनी था कहा मर्मतुद वाणी में, किन्तु आज सहसा.....

विदूषक –

.....हुआ क्या महाराज है?

दुष्यन्त –

आज मछुवा था आया एक शचीतीर्थ से,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाया था अंगूठी वही, जिसे तपोवन में मैंने था शकुंतला को दिया स्मृति के लिए; कहा उसने एक मछली के पेट से निकली अंगूठी शचीतीर्थ सरोवर की; देख उसे सहसा–ही विस्मृति को भेद के घटनाएं एक–एक गयी मुझे स्मरण, रवि–रश्मि सघन घनों को भेदकर ज्यों होती है प्रखार और अधिक गगन में।

आया मुझे स्मरण, प्रिया न झूठ बोली थी, जो कुछ कहा था, तापसों ने, सब सत्य था; याद आयी मृगया की उस तपोवन में, याद आयी प्रिया–संग प्रथम मिलन की, याद आयी उसके अतींद्रिय प्रणय की, याद फिर आयी हम दोनों के विवाह की, याद आयी विदा की, दिये हुए वचन की, याद आयी अश्रु–भरे उसके नयन की, जल–विन्दु–भरे जैसे दल सरसिज के; युग कर जोड़, रुद्ध–कंठ वह बोली थी– राजधानी जाके मुझे भूल तो न जायेंगे?

नाथ, ये चरण, इस दासी की शरण है।' भावाकुल मैंने दृढ़ बाहुओं मे बाँध के उसको कहा था–'प्रिये! मिथ्या यह भय है, ज्योति तुम लोचनों की, प्राण हो शरीर की, स्मृति से तुम्हारी रोम–रोम पुलकित है, मन यह छोड़ के तुम्हारे पास जाता हूँ अल्प काल ही को, अंगुरीय यह देता हूँ, अंकित है नाम मेरा इस पर, गिनना एक–एक अक्षर इसी का प्रतिदिन तुम, शेष वर्ण एक ही रहेगा जब नाम का, उसी दिन शिविका तुम्हारे लिए आवेगी, आओगी समीप तुम मेरे सदा के लिए।' यह कह अश्रु गीले–पीले–से कपोल पर अंकित किया था था मैंने विह्वल–विभोर हों, एक प्रणयातुर चुंबन, देह–बल्लरी उसकी शिथिल हो पड़ी थी मेरी बाहु में– हाय, जाने कैसे यह सब भूल पाया मैं, रोम–रोम जिसके स्मरण में बेसुध थे, चित्त जिसके बिना था खोया–खोया रहता, कैसे वह विस्मृत हुई थी अल्प काल में किसी भाँति समझ न पाता हूँ रहस्य यह। हाय, हतभाग्य अनुताप के अनल में जलता हूँ पल–पल आज मैं विकल हो, किसी भाँति शांति मुझको न मिल पाती है, स्यात् वह जीवन में मिलेगी कभी नहीं।

विदूषक –

शोभा नहीं देती मित्र आपकी निराशा यह, ढूंढ़ने का देवी को प्रयत्न होना चाहिये।

काटती कहीं न कहीं होंगी दिन दुःख के, थोड़े से प्रयत्न से अवश्य मिल जायेंगी।

दुष्यंत–

नहीं बंधु, भ्रम है तुम्हारा; उसे छोड़ के जब वनवासी दोनों संग के चले गये, होकर अधीर, पीर से विकल रोयी थी, बोली थी– वसुंधरे! छिपा लो मुझे गोद में।' और फिर जाने कहाँ हो गई अदृश्य–सी। कुछ दिन बीते, सुधि उसकी न भूला मैं, जागृति में स्वप्न में उसी का ध्यान आता था, जाने किस दुष्ट ने ठगा था उसे, और वे तापस भी संग छोड़ गये थे, अनाथिनी जाने वह कहाँ गयी दुःख से द्रवित हो भेजे थे चतुर चर मैंने सब ओर को, किन्तु कोई उसका पता नहीं लगा सका। हाय, वह दुष्ट तो था मैं ही, दिया मैंने ही अपनी प्रिया को दुःख दुस्सह विरह का।

राज–सुख आज भी मैं भोगता, जो प्राणों से प्रिय थी, बनाया उसे पथ की भिखारिणी; और भाग्यहीना वह तब अंतःसत्वा थी!

विदूषक –

महाराज ! इस भाँति आप न अधीर हों।

दुष्यंत –

और मैं करूँ क्या विदूषक? अब और क्या रह गया मेरे हेतु शेष अनुपात के? लगता मैं व्याध–सा ही आप अपने को हूँ, देकर प्रलोभन प्रिया को मारा मैंने ही; और तुमने भी मुझे दी नहीं सहायता। भ्रष्ट हो गयी थी किसी भाँति मति मेरी तो तुमने तो सुध–बुध अपनी न खोयी थी। जब मैं गया था मृगया के हेतु वन में, तुम भी थे संग, वृत्त जानते प्रिया का थे।

विदूषक –

क्षमा महाराज! मुझे भेजा आपने ही था राजधानी; आप रुक गये यज्ञ–रक्षा को; चलते समय आपने था कहा मुझसे–

'मित्र, जो शकुंतला की बात कही तुमसे, वह तो विनोद मात्र था, न सत्य जानना' देवी आयी, बात मुझे आपकी स्मरण थी, बात पहली से दूसरी भी मिल जाती थी, स्थान भी कहाँ था वहाँ स्मरण दिलाने का?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल –

जय महाराज ! गुप्तचर एक आया है दूर–देशवासी महाराज इंद्रसेन का।

दुष्यंत –

शीघ्र मेरे सम्मुख उपस्थित करो उसे।

द्वारपाल –

आज्ञा महाराज !

(कुछ क्षण बाद) हाँ, पधारें इस मार्ग से।

(मातलि का प्रवेश)

मातलि –

जय महाराज! मैं उपस्थित हूँ सेवा में भेजा महाराज इंद्रसेन का; हैं आप जिनके सखा अंतरंग, इसी से विपत्ति–काल में स्मरण किया है उन्होंने विनीत भाव से आपको; दिया है निमंत्रण निज रक्षा का।

दुष्यंत –

बात क्या है मातलि ! समझ नहीं पाया मैं, कौन–सी विपत्ति मेरे बंधु पर आयी है? बहुत दिनों से भेंट उनसे हुई है नहीं, मित्र का विपत्ति में ही काम आना धर्म है।

मातलि –

कहा है उन्होंने– 'चढ़ आया एक शत्रु है, प्रबल पराक्रमी है, सेना भी अपार है; युद्ध में हमारा सैन्य–बल क्षीण हो गया, त्राहि–त्राहि करती प्रजा भी दिन–रात है, आपकी सहायता इसी से अपेक्षित है, आप ही हैं योद्धा अप्रतिम त्रिभुवन में, होगा आप ही से पराभव उस शत्रु का, महाराज, आकर हमारी रक्षा कीजिये।

दुष्यंत–

आमंत्रण उचित समय पर आया है, निष्क्रिय–सा हो रहा हूँ डूबा अनुताप में, युद्ध–रत हो के कुछ स्फूर्ति पा सकूंगा मैं, मित्र की सहायता भी करनी अवश्य है। मातलि, विराम लो, मैं प्रस्तुत हूँ हो रहा। जीवित रहना है यदि कर्म करना ही है, कर्म से ही पौरुष–पुरुष में है जागता पौरुष–विहीन जो है, जीवन, धिक्कृत है!

(वाद्य)

सातवां दृश्य

(रथ पर आते हुए मातलि और दुष्यन्त)

मातलि –

बजती विजय–दुंदुभी है महाराज की आज चारों ओर, इंद्रसेन भी कृतार्थ हैं, शांति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर पुरवासियों को मिली, फिर से एक बार राज्य हुआ सुख का, समृद्धि का, आपके पराक्रम से भय शत्रु का मिटा, बाहुबल आपका त्रिलोक में अतुल है। उऋण न होंगे कभी हम लोग आप से।

दुष्यंत –

मातलि ! मनुष्य तो निमित्त मात्र होता है, कार्य सभी होते सदा इंगित से ईश के; महाराज इंद्रसेन; विजयी हुए, मुझे इसकी प्रसन्नता है; आयी जो विपत्ति थी, टल गयी वह शत्रु सत्य ही प्रबल था। किन्तु इंद्रसेन ने कृतज्ञता–विनय से, अधिक प्रशंसा से, प्रभूत सत्कार से, सत्य कहता हूँ मुझे लज्जित ही है किया।

मातलि –

महाराज ! आपने किया जो उपकार है, उसके लिए जो करें हम, वह थोड़ा है, जीवन की रक्षा आपने की हम सबकी, हम क्या न इतना भी करने के योग्य हैं? मान या बड़ाई तो है लोकाचार मात्र हो, हृदय हमारे सदा आपके अधीन हैं।

दुष्यंत –

यह तुम लोगों की है अतुल उदारता, इतना तो सब के लिए हैं सभी करते, किन्तु कहो, कौन वह पर्वत है दीखता, पश्चिम समुद्र–बीच स्वर्ण–सा दमकता?

मातलि –

यह है प्रसिद्ध हेमकूट, तप क्षेत्र है, कश्यप महर्षि सपत्नीक यहीं रहते, इच्छा आपकी हो महाराज, तो चलें यहां, कर लें विराम और दर्शन भी ऋषि का।

दुष्यंत –

चाहिये अवश्य चलकर तपोधन का पद–रज लेना, पूर्व पुण्य के उदय से अवसर ऐसे मिलते हैं कदाचित् ही।

मातलि –

आप लें विराम यहाँ कुछ देर छाया में, बैठें इस स्फटिक–शिला पर, मैं जाता हूँ आश्रम में, देकर संवाद का आगमन आपके, अनुज्ञा लिए आता हूँ महर्षि का।

दुष्यंत –

ऐसा ही करो, मैं देखता हूँ शोभा तब तक इस वन–भूमि की, नयन–मन हारिणी। देख के उचित अवसर जाना चाहिये निकट सदा ही ऋषियों के, योग्य है यही।

मातलि–

आप बैठें, शीघ्र ही मैं लौटकर आता हूँ।

(प्रस्थान)

दुष्यन्त –

आशा नहीं अब है प्रिया के आलिंगन की, फिर क्यों है बाहु मेरी व्यर्थ ही फड़कती? करती हुई–सी उपहास मंदभाग्य का? सुख जब सम्मुख स्वयं ही आया, तब तो अंध हो के मैंने किया तिरस्कार उसका, जलता हूँ अब अहोरात्रि अनुताप में, मुझ–से पाखंड को उचित यही दंड है।

(कुछ दूर पर, वृक्षों के अंतराल में बालक सर्वदमन के साथ एक तपस्विनी)

तपस्विनी –

अरे सर्वदमन! बड़ा ही तू चपल है, बार–बार रोकती हूँ, ढीठ नहीं मानता।

दुष्यंत – (स्वर सुनकर)

अरे, यह कौन किसे दे रहा है ताड़ना! करता है कौन तपोभूमि में चपलता? अहो, यह बालक है किसका पराक्रमी? दूध–पीते सिंहनी के शावक को खींचता बल से बलात्, खेलने को संग उसके, रोकती तपस्विनी है, फिर भी न मानता।

सर्वदमन –

सिंहिनी ! अरी, तू मुख खोलती नहीं है क्यों? देखूं भला मुख में हैं दांत तेरे कितने?

तपस्विनी –

अरे आततायी! तू बड़ा ही दुष्ट हो गया, रहता सताता वन–पशुओं को व्यर्थ ही, हम मानते है जिन्हें पुत्र के समान ही; किन्तु तेरा साहस तो बढ़ता ही जाता है, बात सुनता ही नहीं, सबसे उलझता, स्यात् इसी हेतु है महर्षि ने विचार के नाम रक्खा तेरा सर्वदमन, जो सत्य है।

दुष्यंत –

जाने कौन कारण है, देखकर इसको अनायास पुत्र–प्रेम मन में उमड़ता, हृदय इसी की ओर खिंचा चला जाता है, स्यात् मैं अपुत्रक हूँ, ममता स्वभाव की इसी से सहस्त्रधार होकर उमड़ती।

तपस्विनी –

अरे हठी ! छोड़ इस शावक को, अन्यथा झपट पड़ेगी तुझ पर यह सिंहिनी।

सर्वदम –

बड़ी यह आयी है झपटने को मुझ पै मुख खोलती क्यों नहीं, दांत गिनूं इसके।

दुष्यंत – (स्वतः)

दीखता बड़ा ही तेजवान् यह बालक है, डरता नहीं है सिंहिनी से, शिशु, उसका छीनकर कौतुक उसी के संग करता; जान पड़ता है मानो प्रज्जवलित–सी अग्नि यह ईंधन के हेतु है मचलती।

तपस्विनी –

बेटा, छोड़ शावक को, आ तुझे खिलौना दूं।

सर्वदमन –

तुम पहले लाओ खिलौना तब छोड़ूंगा।

दुष्यंत –

शिशु तो नहीं है यह साधारण दीखता, हाथ में है लक्षण समस्त चक्रवर्ती के, जाने क्यों, उठाने को इसे है निज गोद में बार–बार मेरा मन विह्वल–सा हो रहा।

तपस्विनी –

आश्रम में चल मेरे संग, वहीं दूंगी में।

सर्वदमन –

मैं तो यहीं खेलूंगा, मुझे न कहीं जाना है, देना तो ही लाकर खिलौना दो यही मुझे, अन्यथा मैं इसी सिंह–शावक से खेलूंगा।

तपस्विनी –

यह तो नहीं है कोई बात मेरी मानता, क्या करूँ, छुड़ाऊँ कैसे इसके कवल से सिंहिनी के शिशु को.....यहाँ न कोई जन है!

(अचानक दुष्यंत को देखकर)

अरे ! आप कौन? महाभाग, कष्ट करके कृपया छुड़ा दें सिंह–शावक को इससे।

दुष्यंत –

आया यह, आज्ञा शिरोधार्य है तपस्विनी ! ऋषिपुत्र! कैसी यह रीति सीखी तुमन! तुम्हें क्या उचित किसी प्राणी को सताना है? आश्रम–निवासी तो सदा ही प्रीति रखते वन–पशुओं पर भी अपने समान ही।

तपस्विनी –

महाभाग! बालक यह ऋषि–पुत्र है नहीं।

दुष्यंत –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यद्यपि यह लक्षित है लक्षणों से, कार्य से, इसे यहाँ देख मैंने ऋषि–पुत्र जाना था, आओ वत्स, सिंहिनी के शावक को छोड़ दो।

(सिंह–शावक को सर्वदमन से छुड़ाकर)

कैसा है, सुशीतल, सुखद स्पर्श इसका, जाने किस वंश का है गौरव–प्रदीप यह, किस बड़भागी ने दिया है जन्म इसको !

तपस्विनी –

अहा, देखिये तो, कैसे विस्मय की बात है।

दुष्यंत –

विस्मय हुआ है किस बात से तपस्विनी?

तपस्विनी –

रूप अनुरूप आपके ही इस शिशु का; इसने न देखा कभी आपको, न जाना है, फिर भी हठीले ने सहज आपका कहा मान लिया, विस्मय यही क्या कुछ कम है?

दुष्यंत –

आपने कहा तपस्विनी कि पुत्र ऋषि का यह है नहीं, तो किस वंश का प्रकाश है?

तपस्विनी –

महाभाग ! यह तो है पुरू के वंश का, माता इस बालक की मेनका की कन्या है।

दुष्यंत – (स्वतः)

ईश्वर! करूँ क्या ? धैर्य साथ छोड़े जाता है, बालक है पुरु–वंश का ही, माता इसकी मेनका की कन्या है–भला यों आशा मुझको छलती–सी क्यों है?

(प्रकट) हे तपस्विनी, बतायेंगी–कौन इस बालक का पिता बड़भागी है?

तपस्विनी –

त्याग दिया जिसने अकारण ही अपनी ब्याहता वधू को, नाम लेगा कौन उसका?

दुष्यंत – (स्वतः) बात यह मेरे ही लिए है क्या कही गयी? मैंने भी तो त्यागा है शकुंतला को ऐसे ही !

सर्वदमन–

तुमने तो मुझको दिया नहीं खिलौना भी और छीन लिया मेरे साथी को भी मुझसे!

तपस्विनी –

देख वत्स, कैसा है शकुंत–लावण्य यह!

सर्वदमन –

कहाँ यहाँ दीखती है माँ मेरी शकुंतला?

तपस्विनी –

मैंने कहा, देखो, कैसा सुन्दर मयूर यह।

दुष्यंत –

सुन क्या रहा हूँ यह? ऐसा है अदृष्ट क्या संग–संग पुत्र के प्रिया को आज पाऊंगा? बालक की माता का भी नाम है शकुंतला किन्तु नाम एक ही क्या औरों के होते हैं?

तपस्विनी – (घबराकर)

हाय, वत्स। तेरा रक्षा–कवच क्या हो गया?

दुष्यंत –

खेलता था जब सिंह–शावक से यह, तो स्यात् मत करें–लें, कवच यह भूमि पर.....

तपस्विनी – (घबराकर)

हाँ, हाँ, मत उसको उठायें, दूर ही रहें।

दुष्यंत –

मैंने तो उठा ही लिया इसे; है परन्तु क्या बात, जो हैं रोक मुझे इसे छूने से?

तपस्विनी –

विस्मय पर विस्मय है आज होता जा रहा, कवच नहीं है यह साधारण, सिद्ध है मंत्र द्वारा; दिया हुआ कश्यप महर्षि का। कहा था महर्षि ने, कभी जो गिरे भूमि पर, बालक और माता–पिता ही इसे उठावेंगे; दूसरा छुये तो सर्प बन डस लेगा यह।

दुष्यंत – (आनन्द–विह्वल)

जान पड़ता है, आज ईश्वर प्रसन्न हैं, पूरा हुआ मेरा मनोरथ आज सत्य ही, प्रायश्चित स्यात् पूरा हुआ मेरे पापों का। आओ पुत्र, आओ, तुम्हें गोद में उठा लूं मैं।

तपस्विनी –

चलूँ, दूँ संवाद यह सुख का शकुंतला को, बहुत दिनों से जो विरह–व्यथा सहती।

सर्वदमन –

पुत्र मैं न आपका हूँ, पुत्र कहते हैं क्यों?

मेरे पिता विदित त्रिलोक में दुष्यंत हैं; छोड़ दीजिये मुझे, मैं माँ के पास जाऊँगा।

दुष्यंत –

पुत्र तुम माता के समीप चलो मुझको साथ लेके, सुखी हो अधिक बड़भागिनी।

शकुंतला – (आती हुई स्वतः)

सुना है कि कोई महाभागा यहाँ आये हैं, उन्होंने उठाया रक्षा–कवच दमन का, किन्तु उनका न कुछ भी अहित हो सका! दैव! वे क्या सत्य आर्यपुत्र ही हैं? भाग्य में इतना कहाँ है सुख, इस भाग्यहीना के? देखूँ तो भला है क्या छलावा यह भाग्य का?

सर्वदमन –

(देखकर मां के पास दौड़ आता है)

देख तो माँ कौन सुपुरुष वह आये हैं, पुत्र कह गोद में जिन्होंने मुझे ले लिया? तूने तो कहा था, दुष्यंत पिता मेरे हैं।

शकुंतला –

वे ही महाभाग पिता सामने तुम्हारे हैं, इनको प्रणाम करो,

सर्वदमन –

.....करता प्रणाम हूँ, तात–चरणों में; आप अब तक थे कहाँ?

दुष्यंत –

बेटा, दूर तुमसे रखा था भाग्य ने जहां देवि! अब तुमसे कहूं क्या? अपराधी हूँ; किन्तु अपराध वह दैव का विधान था! फिर भी क्षमा हूँ आज तुमसे मैं माँगता। उस तिरस्कार किया था तुम्हारा मैंने, कहूँ कैसे आज, मुझे अंगीकार कर लो?

शकुंतला – (विह्वल)

ऐसी बात कहें मत नाथ, दोष लगता, दुःख पाप क्षीण हुये, आप मिले फिर से, मुझ मंदभागिनी ने सब कुछ पा लिया।

बाद दुःख के जो सुख मिलता है, उसका रस होता अधिक मधुर और स्थायी है।

दुष्यंत –

आगे कर पुत्र को चलो तो शुभे, चल के कर लें प्रणाम हम कश्यप महर्षि को, मंगल मुहूर्ति में लें स्वस्ति ऋषिवर की। धन्य कर जीवन, सफल करें जन्म को।

शकुंतला –

चले नाथ! आज्ञा शिरोधार्य मुझे आपकी।

मातलि –

देता हूँ बधाई शत बार महाराज, मैं पुण्य तीर्थ में हुई सफल मनोकामना; पत्नी के सहित पाया पुत्र–रत्न आपने क्षेम सब का हो इस मंगल की बेला में।

(वाद्य)

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास अलंकार

डा. उषा बनर्जी

महाकवि कालिदास का एक ही ग्रंथ अध्ययन की अनन्त सम्भावनाओं को अपने में समाहित किये हुए हैं। सम्प्रति उनके एक ही सुप्रसिद्ध नाटक की अलंकार योजना के एक माणिक का दर्शन करने की कोशिश की जा रही है। काव्य बिना अलंकार योजना के अधूरा है। एक सामान्य स्त्री भी अपने को सुन्दर प्रदर्शित करने के लिये अपनी सुविधानुसार छोटे-मोटे अलंकार अवश्य धारण करती है। अलंकार हमारे जीवन में किसी भी क्षेत्र को सामान्य से विशेष प्रदर्शित किये जाने के लिये प्रयुक्त होते हैं। फिर वह चाहे स्त्रियों का प्रसाधन रूप हो या संगीत में विभिन्न स्वर विन्यास हो या फिर साहित्य में अपनी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने की एक अनूठी शैली। ये दो प्रकार के होते हैं। शब्दों या अक्षरों के प्रयोग वैचित्र्य से शब्दालंकार और अर्थ वैचित्र्य को अभिव्यक्त करने वाले अर्थालंकार।

कालिदास ने अपनी भावाभिव्यक्ति को सीधे–शब्दों में कहने की अपेक्षा अलंकृत भाषा का प्रयोग किया है। जिसमें उन्होंने व्यंजना वृत्ति से अपने कथ्य की ओर संकेत भर कर देना उचित समझा है। वे कोमल और सुकुमार अभिव्यक्ति में अत्यन्त निपुण है। उन्होंने अर्थालंकार के प्रायः सभी प्रकारों को भलीभाँति प्रयोग किया है जिसमें उनकी उपमा अनुपम एवं विश्वविदित है।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास अलंकार किसी को भी स्पन्दित करने में सक्षम हैं। कालिदास इस अलंकार के अद्‌भुत प्रयोक्ता रहे हैं। इस अलंकार के प्रयोग द्वारा किसी विशेष परिस्थिति का सामान्य सत्य से समर्थन कर एक सार्वभौम सत्य को उद्‌घाटित किया जाता है। अर्थात् किसी विशेष घटना के वर्णन के माध्यम से एक सर्वविदित सार्वभौम ऋत् सत्य को अलंकारिक भाषा में समर्थन हेतु प्रतिपादित करने की प्रक्रिया अर्थान्तर न्यास अलंकार कहलाती है। दार्शनिक भाषा में कहें तो किसी अलंकार के माध्यम से यह व्यष्टि को समष्टि से जोड़ने की कला है। यह बिन्दु को याद के रूप में प्रतिध्वनित करने की कथा है। इस अलंकार में शब्दों द्वारा वर्णन तो हम एक स्थिति का करते हैं किन्तु उससे प्रतिध्वनित सत्य सारे विश्व में निहित है और उस स्थिति को अपने समर्थन के बल से अनुनादित कर रहा है। यह सभी सत्य इस प्रकृति के ही विभिन्न स्वरूप होने के कारण हमारे चारों ओर बिखरे पड़े हैं। बस उनके अनुनाद को सुनकर उन्हें जीवन में जीने की आवश्यकता है।

इस अलंकार के माध्यम से कवि कालिदास ने अपने नाटक की अनेकों परिस्थितियों का समर्थन करके हमें भी उसी का हिस्सा बना दिया है। ये सत्य सहज ही हमारी आचरण संहिता के अंग थे है और भविष्य में होने भी चाहिये। कालिदास ने अपने नाटक के श्लोकों के अन्तर्गत इस अलंकार का खूब प्रयोग किया है। जिसमें श्लोक के पूर्वार्ध में नाट्य की विशेष परिस्थिति है और उत्तरार्ध में उसे समर्थन करते हुए एक सर्व सामान्य ऋत् सत्य को कहा है। कभी–कभी श्लोक के अंतिम चरण में भी यह प्रयोग कर छोटे में बहुत कुछ कहने का उपक्रम किया है।

1. श्लोक–

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति
च बाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा
भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।।16।।

(प्रथम अंक, श्लोक 16)

अन्वय–इदम् आश्रमपदं शान्तम् बाहुः च स्फुरति, इह अस्य फलं कुतः? अथवा भवितव्यानाम् द्वाराणि सर्वत्र भवन्ति।

अर्थ–यह आश्रम एक शान्त स्थल है और मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है। यहाँ इस शुभ संकेत का फल कहाँ सम्भव है? या फिर होनहार अर्थात् भविष्य का लिखा कहीं भी घटित हो सकता है।

विशेष–उक्त श्लोक का पूर्वार्ध एक विशेष परिस्थिति है जिसमें दुष्यंत महर्षि कर्ण्व के आश्रम में आया है और उसकी दाहिनी भुजा फड़क कर शुभ संकेत दे रही है। यह देखकर राजा स्वयं प्रश्न करता है कि इस शुभ संकेत का यहाँ क्या फल मिल सकता है? श्लोक के उत्तरार्ध में अपने उसी प्रश्न का उत्तर एक सामान्य ऋत् सत्य से समर्थित करता हुआ कहता है कि होनी तो कही भी घटित हो सकती है। यहाँ विशेष को सामान्य से समर्थन के साथ कवि वह ऋत् सत्य भी उद्‌घाटित कर रहा है जो कहीं भी किसी के साथ घटित हो सकता है। यह अभिव्यक्ति अर्थान्तरन्यास अलंकार की है।

2. श्लोक–

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म
लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा,
वल्कनेनपि तन्वी किमिव हि मधुराणां
नाकृतीनाम्

(प्रथम अंक, श्लोक–20)

अन्वय–शैवलेन अनुविद्धं अपि सरसिजं रम्यम् मलिनं लक्ष्य अपि हिमांशोः लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेनापि इयं तन्वी अधिक मनोज्ञा, मधुराणाम् आकृतीनाम् किमिव हिन मण्डनम्।

अर्थ–सेवार से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर लगता है। (चंद्रमा में निहित) काला धब्बा भी चंद्रमा की शोभा बढ़ाता है। (उसी प्रकार) बल्कल वस्त्रों में भी यह सुन्दरी अत्यन्त मनोरम दिखाई दे रही है। भला सुन्दर आकृति वालों के लिये कौन सी वस्तु अलंकार नहीं बन जाती? अर्थात् सुन्दर आकृति वालों के लिये कुछ भी अलग से संलग्न वस्तु उसकी शोभा ही बढ़ाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष–उक्त श्लोक में आरम्भ की तीन पंक्तियों में तीन अलग–अलग विशिष्ट स्थितियाँ वर्णित है जिनके समर्थन में श्लोक की चौथी पंक्ति में एक सामान्य सत्य जो सार्वभौम रूप से सृष्टि का ऋत् सत्य कहा गया है। इसी सत्य के कारण उक्त तीनों विशेष स्थितियाँ अलग–अलग होकर भी एक स्थान पर एक ही सत्य का समर्थन कर रही है। अतः यह स्थिति अर्थान्तरन्थास अलंकार एवं प्रतिवस्तूपमा अलंकार की कारक है।

3. श्लोक–

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा,
यदार्यमस्यामभिलाषि में मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु,
प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः।। 23।।

(प्रथम अंक, श्लोक 23)

अन्वय–(इयम्) असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा (अस्ति), यत् मे आर्य मनः अस्याम् अभिलषति। संदेहपदेषु वस्तुषु सताम् अन्तःकरणप्रवृत्तयः हि प्रमाणम्।

अर्थ–यह निःसंदेह ही क्षत्रिय के द्वारा (पत्नी के रूप में) ग्रहण की जाने योग्य है। क्योंकि मेरा साधु मन इसे चाहता है। संदेहास्पद स्थितियों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण होती है।

विशेष–उक्त श्लोक के पूर्व की दो पंक्तियाँ स्थिति विशेष की सूचक है। जिनका श्लोक के उत्तरार्ध की दोनों पंक्तियां समर्थन करती हुई एक ऋत् सत्य का उद्घाटन कर रही है। इसी सत्य के कारण उक्त स्थिति घटित हो रही है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में पुष्प वाटिका में सीता के प्रथम दर्शन के समय इसी स्थिति को और उसके साथ जुड़े इस ऋत् सत्य को भी दुहराया है।

4. श्लोक–

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु
तद्भावदर्शनाश्वासि।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे,
रतिमुभयप्रार्थना कुरुते।।

(द्वितीय अंक, श्लोक–1)

अन्वय–प्रिया कामं न सुलभा,
तु मनः तद्भावदर्शनाश्वसि।
मनसिजे अकृतार्थेऽपि उभयप्रार्थना
रतिं कुरूते।।

अर्थ–प्रिया इच्छानुसार सुलभ नहीं है, किन्तु मन उसके भावों को देखकर निश्चिंत है। (क्योंकि) कामदेव के सफल न होने पर भी दोनों की (नायक–नायिका) अभिलाषा प्रेम उत्पन्न करती है।

विशेष–श्लोक की प्रथम पंक्ति में वर्णित विशेष स्थिति का द्वितीय पंक्ति में कहे गये सामान्य सत्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

5. श्लोक–

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि
नयने यत्प्रेरयन्त्या तया,
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरूतया
मंदं विलासादिव।
मा गा इत्युपरूद्धया यदपि
सा सासूयमुक्ता सखी,
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो
कामी स्वतां पश्यति।।

(द्वितीय अंक, श्लोक 2)

अन्वय–अन्यतः नयने प्रेरयन्त्या अपि तया यत् स्निग्धं वीक्षितम्, नितम्बयोः गुरुतया विलासात् इव यत् च मन्दं यातम्, मा गा इति उपरूद्धया सा सखी यदपि सासूयम् उक्ता, तत् सर्वं मत्परायणं किल, अहो कामी स्वतां पश्यति।

अर्थ–दूसरी ओर देखती हुई भी उसने (शकुन्तला) जो स्नेह भरी चितवन डाली, नितम्बों के भारी होने के कारण मानो लीलापूर्वक जो धीरे–धीरे चली, 'मत जाओ' इस प्रकार रोके जाने पर उसने सखी को जो क्रोध से कहा, वह सब मेरे लिये ही था। आह कामी (प्रेमी) सभी कुछ सब जगह अपनी आत्मीयता को ही देखता है अर्थात् वह सब मेरे लिये ही था, ऐसा सोचता है।

विशेष–यहाँ श्लोक के अन्तिम चरण "कामी स्वतां पश्यति" में सामान्य से पूर्व कथित विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। श्लोक के अन्तिम चरण में एक सहज ऋत् सत्य उद्घाटित किया गया है। जो कि सामान्य कथन है।

6. श्लोक–

अनुकारिणी पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः।।

(द्वितीय अंक, श्लोक 17)

अन्वय–पूर्वेषाम् अनुकारिणी त्वयि इदं युक्तरूपम्।
पौरवाः आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिता खलु।।

अर्थ–पूर्वजों का अनुकरण करने वाले आपके लिये यह अत्यन्त उचित है। (क्योंकि) पुरूवंशी राजा विपत्ति ग्रस्त लोगों को अभय देने के यज्ञ में दीक्षित रहते आये हैं। अर्थात् वे अपने आश्रित विपत्तिग्रस्त लोगों को अभयदान देने में कुशल हैं।

विशेष–श्लोक की प्रथम पंक्ति अर्थात् पूर्वार्ध किसी विशेष परिस्थिति को व्यक्त कर रहा है जिसका समर्थन श्लोक के उत्तरार्ध द्वारा किया गया है जिसमें एक सामान्य सुप्रसिद्ध सत्य कहा गया है।

7. श्लोक–

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको,
विशङ्कते भीरू यतोऽवधीरणाम्।
लभते वा प्रार्थयिता न वा श्रियं,
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।।

(तृतीय अंक, श्लोक 16)

अन्वय–भीरू ! यतः अवधीरणां विशङ्कते, स अयं
ते संगमोत्सुकः तिष्ठति।
प्रार्थयिता श्रियं लभेत
वा न वा, श्रिया ईप्सितः कथं दुरापः भवेत?

अर्थ–हे डरने वाली ! तुम जिससे तिरस्कार की आशंका करती हो सो यह दुश्यन्त तुमसे मिलने के लिये उत्सुक होकर खड़ा है। चाहने वाला लक्ष्मी को प्राप्त कर पाये न कर पाये किन्तु जिसे लक्ष्मी चाह ले वो व्यक्ति को लक्ष्मी कैसे दुर्लभ हो सकती है।

विशेष–श्लोक के पूर्वाध में एक विशेष परिस्थिति का समर्थन श्लोक के उत्तरार्ध में वर्णित एक सामान्य सत्य करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8. श्लोक–

अयं स यस्मात्प्रणयावधीरणा
मशङ्कनीयां करभोरु ! शङ्कसे !
उपस्थितस्त्वां प्रणयोत्सुको जनो
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।।

(तृतीय अंक, श्लोक 17, पृ. 241)

अन्वय–करभोरु ! यस्मात्
अशङ्कनीया प्रणयावधीरणां
शङ्कसे सः अयं जनः
प्रणयोत्सुकः त्वाम् उपस्थितः
हि रत्नं न अन्विष्यति तत् मृग्यते।

अर्थ–हे करभ के समान ऊरू वाली ! तुम जिससे न शंका करने योग्य प्रेम भंग की आशंका करती हो, वह यह व्यक्ति (तुमसे) प्रेम करने के लिये उत्सुक होकर तुम्हारे पास आया है। क्योंकि रत्न किसी को स्वयं नहीं ढूंढ़ता बल्कि ढूँढा जाता है।

विशेष–नाटक की उक्त विशेष स्थिति का समर्थन एक सामान्य सत्य कर रहा है जिससे उसकी नैसर्गिकता बढ़ रही है और इसी के ब्याज से एक सामान्य सत्य सबको विदित हो रहा है।

9. श्लोक–

रहः प्रत्यासत्तिं यदि सुवदना यास्यति
पुनर्न कलं हास्यामि प्रकृतिदुरवापा
हि विषयाः।
इति क्लिष्टं विघ्नगणपति च
मे मूढ़हृदयं
प्रियायाः प्रत्यक्षं किमपि च
तथा कातरमिव।।

(तृतीय अंक, श्लोक 40 पृ. 304)

अन्वय–यदि सुवदना पुनः रहः प्रत्यासत्तिं यास्यति कालं न हास्यामि हि विषया प्रकृतिदुरवापाः। वघ्नैः क्लिष्टं मे मूढ़हृदयं इति गणयति च प्रियायाः प्रत्यक्षं तथा किमपि कातरमिव (आसीत्)

अर्थ–यदि सुमुखी अर्थात् शकुन्तला पुनः एकान्त में मुझे मिल जाय तो व्यर्थ समय नहीं जाने दूंगा। क्योंकि भोग–पदार्थ स्वभाव से ही दुर्लभ होते हैं। अर्थात् कठिनाई से प्राप्त होते हैं। विघ्नों के कारण दुःखी मेरा मूर्ख हृदय इस प्रकार सोचता तो है किन्तु प्रिया के सामने न जाने क्यों कर्तव्य शून्य सा हो जाता है।

विशेष–यहाँ भी श्लोक के पूर्वार्ध में वर्णित विशेष परिस्थिति का समर्थन श्लोक के उत्तरार्ध में सामान्य सत्य से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

10. श्लोक–

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना–
माविष्कृतोऽरूणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवैषदशान्तरेषु।।

(चतुर्थ अंक, श्लोक–2, पृ. 325)

अन्वय–एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरूणपुरः सरः अर्कः आविष्कृतः। एष लोकः तेजोद्वयस्य युगपद्व्यासनोदयाभ्याम् दशान्तरेषु नियम्यत इव।

अर्थ–एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल के शिखर पर जा रहे हैं और दूसरी ओर अरूण को आगे किये हुए सूर्य उदित हो रहे हैं। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा अवस्था विशेषों में मानों शिक्षित किया जा रहा है।

विशेष–श्लोक के पूर्वार्ध में विशेष स्थिति का एक ऋत् सत्य से श्लोक के उत्तरार्ध में वर्णित एक ऋतु सत्य से समर्पित एवं उपमा जैसी दी जा रही है। यहाँ यद्यपि तुल्ययोगिता अलंकार है किन्तु अर्थान्तरन्यास का भी भास हो रहा है।

11. श्लोक–

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वितीयं
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनेन
दुःखानि नूनमिति मात्रा दुरुद्वहानि।।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 3, पृ. 327)

अन्वय–शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीयशोभा (सती) में दृष्टि न नन्दयति। नूनम् अबलाजनेन इष्टप्रवास जनितानि दुःखानि अतिमात्र सुदुःसहानि (भवन्ति)।।

अर्थ–चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही कुमुदिनी (अब) संस्मरणीय शोभा से युक्त होने के कारण मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। निश्चित ही स्त्रियों के लिये, अभीष्ट व्यक्ति के प्रवास से उत्पन्न दुःख अत्यन्त असह्य हो जाते हैं।

विशेष–श्लोक उत्तरार्ध में विद्यमान सामान्य सत्य के द्वारा श्लोक के पूर्वार्ध में विद्यमान विशेष का समर्थन किये जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

12. श्लोक–

पादन्यासं क्षितिधर
गुरोर्मूध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा
मध्यमं धाम विष्णोः।
सोऽयं चन्द्रः पतति
गगनादल्प शेषैर्मयूखैः
रत्यारूढिः भविति
महतामप्यपप्रभ्रंशनिष्ठा।।

(चतुर्थ अंक, श्लोक–5, पृ. 331)

अन्वय–क्षपिततमसा येन क्षितिधर गुरोः सुमेरोः मूर्ध्नि पादन्यासम् कृत्वा विष्णोर्मध्ययमं धाम क्रान्तं स अयं चन्द्रः अल्पशेषैः मयूखैः गगनात् पतति। महतामपि अत्यारूढिः अपभ्रंशनिष्ठा भवति।

अर्थ–अन्धकार को नष्ट करके जिन्होंने पर्वत श्रेष्ठ सुमेरू के पर्वत पर पैर (किरण) रखकर विष्णु के मध्यम स्थान (आकाश) पर आरोहण किया, वही ये चन्द्रमा थोडी सी बची हुई किरणों के साथ आकाश से गिर रहे हैं। महान व्यक्तियों का भी ऊँचे स्थान पर चढ़ना पतन में ही परिणत होता है।

13. श्लोक–

एषापि प्रियेणबिना गमयति
रजनीं विषाददीर्घतराम्।
गुर्वपि विरह दुःखमाशाबन्धः
साहयति।।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 18, पृ. 380)

अन्वय–एषा अपि प्रियेण बिना विषाद दीर्घतराम् रजनीं गमयति। आशाबन्धः गुरु अपि विरहदुःखं साहयति।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ–यह भी प्रिय के बिना दुःख के कारण बहुत लम्बी (प्रतीत होने वाली) रात्रि को बिता रही है। मिलन की आशा का बन्धन भारी विरह के दुःख को भी सहन करा देता है।

विशेष–यहाँ विशेष द्वारा सामान्य अर्थ का समर्थन किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास है। श्लोक के पूर्वार्ध के विशेष और उत्तरार्ध में सामान्य ऋत् सत्य उद्घाटित एवं समर्थन का कारक है।

14. श्लोक–

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू
प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया
मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा, परिजने
भोगेष्वनुत्सेकिनी।
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो
वामाः कुलस्याधयः।।

(चतुर्थ अंक, श्लोक 20, पृ. 386)

अन्वय–गुरून् शुश्रूषस्व, सपत्नीजने प्रिय सखीवृत्तिं कुरू, विप्रकृतापि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव, भोगेषु अनुत्सेकिनी (भव)। एवं युवतयः गृहणीपदं यान्ति, वामाः कुलस्य आधयः।।

अर्थ–गुरू जनों की सेवा करो, सौतों के साथ प्रिय सखी का सा व्यवहार करो, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध में आकर स्वामी के प्रतिकूल व्यवहार मत करो। आश्रित जनों के प्रति अधिकाधिक उदार रहो, भोगों को पाकर अभिमान मत करो। इस प्रकार बरतने वाली युवतियाँ गृहिणी के पद को प्राप्त करती है और इसके विपरीत चलने वाली कुल के लिये कष्टदायी होती है।

विशेष–इस श्लोक के अन्तिम चरण में "आन्त्येनं गृहिणीपदं युवतयः वामा कुलस्याधयः" इस सर्व सामान्य सत्य के द्वारा श्लोक के पूर्व तीन चरणों में कहे गये विशेष का समर्थन किये जाने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

15. श्लोक–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै–
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 13 पृ. 434)

अन्वय–तरवः फलोद्गमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नवाम्बुधिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति)। सत्पुरुषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)। एष परोपकारिणां स्वभाव एव।

अर्थ–वृक्ष फलों के लगने से झुक जाते हैं। मेघ नये जल के भार से बहुत नीचे आ जाते हैं। सज्जन लोग ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर विनम्र हो जाते हैं। यही परोपकारियों का स्वभाव है।

विशेष–श्लोक की तीन पंक्तियों में वर्णित विशिष्ट अर्थों का समर्थन चौथी पंक्ति में कहे गये एक सामान्य सत्य द्वारा हो रहा है। अतः अर्थान्तरन्यास–न्यास अलंकार की स्थिति स्पष्ट है।

16. श्लोक–

किं कृतकार्यद्वेषात् धर्मं प्रति
विमुखितोचिता राज्ञः
मूर्च्छन्त्यमी विकाराः
प्रायेणैश्वर्यमत्तनाम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 19, पृ. 448)

अन्वय–किं कृतकार्यद्वेषात धर्मं प्रति विमुखितोचिता राजा मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 19, पृ. 448)

अन्वय–किं कृतकार्यं द्वेषात् धर्मं प्रति राज्ञः विमुखता उचिता?
ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी
विकाराः मूर्च्छन्ति।

अर्थ–क्या किये हुए कार्य के प्रति अरुचि के कारण धर्म से विमुख होना राजा के लिये उचित है? ऐश्वर्य से प्रमत्त हुए लोगों में प्रायः ये विचार फैल जाते है।

विशेष–श्लोक की पूर्व पंक्ति विशेष स्थिति को अभिव्यक्त कर रही है जिसका समर्थन श्लोक का उत्तरार्ध एक सामान्य सत्य से करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

17. श्लोक–

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीष्णां,
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात–
मन्यद्विजैः, परभृताः किल पोषयन्ति।।

(पंचम अंक, श्लो. 23, पृ. 463)

अन्वय–अमानुषीणां स्त्रीणाम् (अपि) आशिक्षितपटुत्व संदृश्यते, याः परिबोधवत्यः (तासां) किमुत? परभृताः अन्तरिक्षगमनात् प्राक् स्वम् अपत्यजातम् अन्यैः द्विजै, पोषयन्तिकिल्।

अर्थ–मनुष्य जाति से भिन्न (अन्य जातियों में भी) स्त्रियों में बिना शिक्षा के ही स्वभावतः चतुरता देखी जाती है। लेकिन जो ज्ञान सम्पन्न हैं, उनका तो कहना ही क्या? कोयल भी आकाश में जाने से पहले अपने बच्चों को अन्य पक्षियों के पास छोड़ जाती है अर्थात् उनसे पोषण करवाती है।

18. श्लोक–

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्
संगतं रहः।
अज्ञात हृदयेष्वेवं वैरी
भवति सौहृदम्।।

(पंचम अंक, श्लोक 27 पृ. 471)

अन्वय–अतः रहः संगतं विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम्।
अज्ञात हृदयेषु सौहृदम्
एवं वैरीभवति।

अर्थ–इसीलिये एकान्त में समागम (गन्धर्व विवाह) खूब अच्छी तरह परीक्षा लेकर करना चाहिये। अज्ञात हृदय वाले व्यक्तियों में प्रेम–सम्बन्ध की स्थापना इसी प्रकार शत्रुता के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

विशेष–श्लोक की प्रथम पंक्ति में वर्णित विशेष का द्वितीय पंक्ति में वर्णित सामान्य सत्य द्वारा वैधर्म्य से समर्थन किये जाने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

19. श्लोक–

तदेषा भवतः पत्नी त्यज
वैनां गृहाण वा।
उपयन्तुर्हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।।

(पंचम अंक, श्लोक 29, पृ. 474)

अन्वय–तत् एषा भवतः पत्नी, एनां त्यज वा गृहाण वा। हि दारेषु उपयन्तुः सर्वतोमुखी प्रभुता

अर्थ–यह आपकी पत्नी है। आप इसे छोड़िये अथवा स्वीकार कीजिये। क्योंकि पत्नी पर पति की सब प्रकार की प्रभुता रहती है।

विशेष–श्लोक के उत्तरार्ध में कहे गये सामान्य अर्थ एवं सत्य के द्वारा श्लोक के पूर्वार्ध में स्थित विशेष अर्थ का समर्थन होने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

श्लोक–

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता
बोधयति पंकजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रह
संश्लेषपराङ्गमुखी वृत्तिः।।

(पंचम अंक, श्लोक 31 पृ. 479)

अन्वय–शशाङ्कः कुमुदानि एव सविता पंकजानि एव बोधयति। हि वशिनां वृत्तिः परपरिग्रहसंश्लेष पराङ्गमुखी।

अर्थ–चंद्रमा कुमुदिनियों को और सूर्य कमलों को ही विकसित करते हैं। क्योंकि जितेन्द्रिय पुरुषों की वृत्ति पराई स्त्री के सम्पर्क से दूर रहती है।

विशेष–श्लोक के उत्तरार्ध में स्थित सामान्य सत्य द्वारा श्लोक के पूर्वार्ध भाग में स्थित विशेष स्थिति का समर्थन होने से अर्थन्तरन्यास अलंकार है।

21. श्लोक–

सहजं किल यद्विनिदितं
न तु तत् कर्म विवर्जनीयकम्।
पशुमारणकर्मदारूणोऽनुकम्पा–
मृदुकोऽपि श्रोत्रियः।।

(षष्ठ अंक, श्लोक 1, पृ. 494)

अन्वय–विनिन्दितम् यत् कर्म किल सहजं तत् न तु विसर्जनीयकम्।
अनुकम्पामृदुकः अपि श्रोत्रियः पशुमारण कर्मदारूणः।

अर्थ–निन्दनीय होकर भी जो कर्म स्वाभाविक वंशानुक्रम से प्राप्त हुआ है, उसे नहीं छोड़ना चाहिये। दया से युक्त कोमल हृदय ब्राह्मण भी यज्ञ में बलि करते समय पशु हत्या के रूप में क्रूर कर्म करते हुए निर्दयी हो जाता है।

विशेष–पूर्वार्ध में वर्णित विशेष का श्लोक के उत्तरार्ध में वर्णित सामान्य सत्य का समर्थन होने से अर्थान्तरण अलंकार है।

22. श्लोक–

कथं नु तं कोमल बन्धुरांगुलिं,
करं विहायासि निमग्नमभसि?
अचेतनं नाम गुणं न वीक्षते,
मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया।।

(षष्ठ अंक, श्लोक 14, पृ. 556)

अन्वय–कोमलबन्धुराङ्गुलिं तं करं विहाय कथं नु अम्भसि निमग्नम् असि अथवा अचेतनं गुणं नाम न वीक्षते, मया एव कस्मात् प्रिया अवधीरता?

अर्थ–कोमल तथा ऊँची नीची अंगुलियों वाले उस हाथ को छोड़कर तू कैसे जल में निमग्न अर्थात् डूब गई अथवा, अचेतन पदार्थ तो गुण को नहीं देखता है, किन्तु मैंने ही क्यों प्रिया का तिरस्कार किया?

विशेष–इस श्लोक के तृतीय चरण में वर्णित सामान्य सत्य से अन्य सभी पंक्तियों में वर्णित विशेष का समर्थन किये जाने पर अर्थान्तरन्यास है।

23. श्लोक–

कृताः शख्य हरिणा तवासुराः
शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृदजने
पतन्ति चंक्षूषि न दारूणाः शराः।।

(षष्ठ अंक, श्लोक 35, पृ. 613)

अन्वय–हरिणा असुराः तव शरव्यं कृताः तेषु इदं शरासनं विकृष्यताम। सतां सुहृद्जने प्रसादसौम्यानि चंक्षूषि पतन्ति, दारूणाः शराः न।

अर्थ–इन्द्र ने असुरों को आपके बाणों के लक्ष्य बनाना तय किया है, उन पर यह धनुष खीचिये और बाण चलाइये। सज्जनों की अपने बन्धु वर्ग पर प्रसन्नता के कारण सौम्य दृष्टि पड़ती है, भयंकर बाण नहीं।

विशेष–इस श्लोक को पूर्वाध विशेष का उत्तरार्ध में वर्णित सामान्य सत्य से समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

24. श्लोक–

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः
पन्नगः फणां कुरुते।
तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः प्रतिपद्यते तेजः।।

(षष्ठ अंक, श्लोक 37, पृ. 617)

अन्वय–अग्निः चलितेन्धनः ज्वलन्ति, पन्नगः विप्रकृतः फणां कुरुते। तेजस्वी संक्षोभात् प्रायः तेजः प्रतिपद्यते।

अर्थ–अग्नि ईंधन को हिला देने से धधक उठती है। साँप छेड़ने पर फन फैलाता है। इसी प्रकार तेजस्वी पुरुष उत्तेजना या प्रेरणा पाने पर प्रायः अपना तेजः प्रकट करते हैं।

विशेष–श्लोक के उत्तरार्ध में वर्णित सामान्य सत्य से पूर्वार्ध में कहे गये विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार की स्थिति है।

25. श्लोक–

मनोरथाय नाशंसे कि बाहो स्पन्दसे मुधा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते।।

(सप्तम अंक, श्लोक 13, पृ. 646)

अन्वय–मनोरथाय न आशंसे। बाहो।
मुग्धा कि स्पन्दसे?
पूर्वावधीरितं श्रेयः दुःखं हि परिवर्तते।

अर्थ–मैं अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये आशा नहीं रखता। हे भुजा। तुम व्यर्थ ही क्यों फड़क रही हो? पहले तिरस्कृत किया गया कल्याण दुःख रूप में ही परिणत होता है अर्थात् यदि कल्याणकारी अवसर किसी कारण से छूट जाता है तो दुःख ही मिलता है।

विशेष–यहाँ भी श्लोक का उत्तरार्थ सामान्य सत्य को कहते हुए पूर्वार्ध के विशेष को समर्थन दे रहा है। अतः अर्थान्तरण अलंकार है।

26. श्लोक–

सुतनु। हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते, किमपि मनसः सम्मोहो मे तदा बलवानभूत्। प्रबलतमामेवं प्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः, स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया।

(सप्तम अंक, श्लोक 24, पृ. 677)

अन्वय–सुतनु। ते हृदयात् प्रत्यादेशव्य लोकम् अपैतु। तदा में किमपि बलवान मनसः सम्मोहः अभूत। हि शुभेषु प्रवलतमसां वृत्तयः प्रायाः। अन्धः शिरसि क्षिप्तां स्रजम् अपि अहिशङ्कया धुनोति।

अर्थ–हे सुन्दरी। तुम्हारे हृदय से परित्यागजन्य दुःख दूर हो। उस समय मेरे मन में कोई बलवान अज्ञान उत्पन्न हो गया था। क्योंकि कल्याणों के विषय में प्रबल मोह वालों की चित्तवृत्तियाँ प्रायः इसी प्रकार की हुआ करती है। अंधे के सिर पर डाली गई पुष्पमाला को भी वह साँप की आशंका में फेंक देता है।

विशेष–इस श्लोक के तृतीय चरण में सामान्य सत्य के द्वारा अन्य पंक्तियों में वर्णित विशेष के समर्थन से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास की कोयल

सुरेन्द्र अग्निहोत्री

महाकवि कालिदास ने अपने साहित्य की रचना करते समय पक्षी विज्ञान/जन्तु विज्ञान के सन्दर्भ में अपने अद्भुत ज्ञान का उल्लेख करके जनसाधारण के बीच वैज्ञानिक सामग्री काव्य के माध्यम से संप्रेषित की। इस विज्ञान सम्बन्धी जानकारी को 1959 में जबलपुर मध्यप्रदेश में हुए भारतीय प्राणी विज्ञान की प्रथम कांग्रेस के अवसर पर चम्पत स्वरूप गुप्त ने अपने निबंध के माध्यम से महाकवि कालिदास की रचनाओं के माध्यम से उल्लेखित किया।

लगभग 32 विभिन्न स्थानों पर कालिदास ने अपने ग्रन्थों में कोयल का उल्लेख किया है। कोयल के लिए अन्भृता, परभृता, अन्यपुष्टा कोकिला, परपुष्टा आदि शब्द प्रयुक्त किये गये है। कोयल के स्वर, ऋतुओं का उसके जीवन पर प्रभाव, उसका भोजन, अनुरंजन, अण्डे देने की तथा शिशु–पोषण की क्रिया, चतुरता आदि विषयों पर महत्वपूर्ण निरीक्षण मिलते हैं। बहुत से स्थानों पर एक ही विचार की पुनरावृत्ति है, अतः इस लेख में केवल वे ही दस अवतरण चुने गये हैं जिनमें से बिना विशेष पुनरावृत्ति के आवश्यक सामग्री प्राप्त हो सके। अवतरणों का संदर्भ तथा हिन्दी अनुवाद–सहित उल्लेख करके उनका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जायगा तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक जन्तु–विज्ञान का उनसे किस प्रकार संबंध है। अनुवाद का अधिकांश आधार पण्डित सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित कालिदास ग्रन्थावली है।

कलमन्यभृतासु भाषितं
कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं
पवना धूतलतासु विभ्रमः।।
–रघुवंश, 8–59

इन्दुमती की मृत्यु पर राजा अज विलाप करते हुए कह रहे है कि "तुम्हारी मीठी बोली कोयलों ने ले ली है, तुम्हारा धीरे–धीरे चलना कलहंसिनियों ने ले लिया है, तुम्हारी चंचल चितवन हरिणियों को मिल गयी है और तुम्हारा चुलबुलापन वायु से हिलती हुई लताओं में पहुँच गया है।"

प्रथममन्य भृताभिरूदीरिताः
प्रविरला इव मुग्धवधूकथाः।
सुरभिगनिधषु शुश्रविरेः गिरः
कुसुमितासु मितावन राजिषु।।
–रघुवंश, 9–34

राजा दशरथ के सिंहानारूढ़ होने के पश्चात् उनके राज्य में प्रथम बसन्त ऋतु का वर्णन है। सुगन्ध से महकती और पुष्पों से भरी हुई वनों की पंक्तियों में कोयल की पहली कूक सुनी गयी। प्रारम्भ में और प्रथम बार बोली जाने के कारण कोयल का वह शब्द मुग्ध नायिका के शब्द के समान नपा–तुला और अटकता हुआ–सा लगता था।

अरुणाराग निषेधिरंशुकैः
श्रवणलब्धपदैश्च यवाकुरैः।
परभृताविरूतैश्च विलासिनः
स्मरबलैकरसाः कृताः।
'रघुवंश, 9–43

राजा दशरथ के राज्य में प्रथम वसन्त ऋतु का वर्णन है। प्रातः काल की ललाई से भी अधिक लाल वस्त्रों, कान पर रक्खे हुए जौ के अंकुरों तथा कोयल की कूकों रूपी सेना लेकर कामदेव ने ऐसा जाल बिछाया कि सभी विलासी पुरुष युवती स्त्रियों के प्रेम में सुध–बुध खो बैठे।

त्यजत मानमलं बत विर्नहग
न पुनरेति गतं चतुरं वयः।
परभृताभिरतीव निवेदिते
स्मरते रमते स्म वधूजनः।।
–रघुवंश, 9–47

राजा दशरथ जी के राज्य में प्रथम वसन्त ऋतु का ही वर्णन चल रहा है।

उन दिनों कोयल जो कूक रही थी वह कामदेव का मानों यह आदेश सुना रही थी कि हे स्त्रियों, रूठना छोड़ो। लड़ाई–झगड़ा छोड़ो। गया हुआ यौवन फिर हाथ नहीं आता। यह सुनकर सभी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ फिर रमण करने लगीं।

स्वरेणा तस्याममृतसुतेव
प्रजल्पितायामनिजात वाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताडयामाना।।
–कुमारसम्भव, 1,–45

विवाह के पूर्व पार्वती जी के यौवन का वर्णन है। मधुवाणी वाली पार्वती जी जब बोलने लगती थीं तब मानों अमृत की धारा फूट निकलती थी। उनकी उस मीठी बोली के आगे कोयल की कूक कानों को ऐसी कड़वी लगती थी जैसे किसी अनाड़ी ने अनमिली वीणा के बेसुरे तार छेड़ दिये हों।

चूतांकुरास्वादकषायकंठः
पुंसकोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनी मानविद्यातदक्षं
तदेव जातं वचनं स्मरस्य।।
–कुमारसम्भव, 3–32

हिमालय पर बसन्त के आगमन से उस नर कोयल के मीठे शब्द जिसका कंठ आम की मंजरियों के खा लेने से साफ हो गया था घमंडी, सुन्दरियों के घमंड को तोड़ने के लिए मानों कामदेव के आज्ञा–रूपी वचन बन गये।

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन
मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः।
कूजद्द्विरेफोऽप्यबुजस्थ
प्रियं प्रियायाः प्रकरोति चाटू।।
–ऋतुसंहार–6–16

वसन्त ऋतु का वर्णन है। देखो–यह नर कोयल आम की मंजरियों के रस में मदमस्त होकर अपनी प्यारी को बड़े प्रेम से प्रसन्न होकर चूम रहा है। कमल पर बैठ कर गुनगुनाता हुआ यह भौंरा भी अपनी प्यारी का मन चाहा काम कर रहा है।

राजा–तापसवृद्धे!
स्त्रीणामशिक्षित पटुत्वममानुषीषु
संदृश्ते किमुत याः प्रतिवोधवत्यः।
प्रगान्तरिक्षगमनात्स्वमपत्य जात–
मन्यैर्द्विजैः परभृताः वलुपोषयन्ति।।
अभिज्ञानशाकुन्तल, 5–22

गर्भवती शकुन्तला को साथ लेकर तपस्विनी गौतमी तथा कण्व के वैखानस राजा दुष्यन्त के पास पहुँचे हैं। गौतमी शकुन्तला के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोलेपन को बतला रही हैं। राजा दुष्यन्त प्रत्युत्तर में गौतमी से कह रहे हैं "बूढ़ी तपस्विनी जी, जो मानवी स्त्रियां नहीं हैं, वे भी बिना सिखाये पढ़ाये ही बड़ी चतुर हो जाती है, फिर इन समझ वाली स्त्रियों का तो कहना ही क्या है। जानती हो। जब तक कोयल के बच्चे उड़ना नहीं सीख जाते तब तक वह दूसरे पक्षियों से ही उनका पालन कराती है"।

अये इयमातपान्त संधुक्षितमदा
जम्मू–विटपमध्यास्ते परभृता विहगंमेषु
पंडिता जाटिरेषु। यावदेनामभ्यर्थये। परभृते
मधुरप्रलापिनी कान्ते नन्दनवने स्वच्छन्दं
भ्रमन्ती। यदि त्वया प्रित्यमा सा मम दृष्टा
तह्यर्याचक्ष्व में परपुष्टे।। भवति (24)
त्वां कामिनो मदनदूतिमुदाहरन्ति
'मानावभंगनिपुण त्वामोघमस्त्रम्।
तामानय प्रियतमां मम वा समीपं मां वा
नयाशु कल भीषणी यत्र कान्ता। (25)
किमाह भवती। कथं त्वामेवमनुरत्तं
विहागता इति (अग्रतोअबलोक्य) श्रणोतु
भवंती। कुपिता न तु कोपकारणं
सकृदप्यात्मगतं स्मराम्यहम्। प्रभुता रमणेषु
योषितां नहि भावस्वलितान्यपेक्षते (26)
–ससंभ्रमुपविश्य अनन्तरं जानुभ्यां स्थित्वा
कुपिता इतिपुनः पठित्वा उत्थाय विलोक्य
च} कथं कथाविच्छेदकारिणी स्वकार्य एवं
व्यासत्ता।

अथवा–

महदपि परदुःखं शीतलं सम्यगाहुः
प्रणयमगणयित्वा यन्मापद्गतस्य।
अधरमिव मदान्धा पातुमेषा प्रवृता
फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्रुमस्य (27)
एवंगतेऽपि प्रियेव में मंजुस्वनेति न में
कोपोऽस्याम्। सुखमास्तां भवती। इतो वयं
साधयामस्तावत। (28)
–विक्रबोर्वशीय–4

राजा पुरुरवा अपनी प्रिया उर्वशी के वियोग से शोकातुर गन्धमादन पर्वत के वनों में घूमता हुआ जीवित तथा–अ–जीवित प्रत्येक पदार्थ से उर्वशी के विषय में समाचार पूछ रहा है।.....अरे, यह गर्मी बीतने से मतवाली कोयल जामुन की शाखा पर बैठी हुई है। पक्षियों में कोयल ही सबसे चतुर मानी जाती है। चलूं इसी से पूछता हूँ।.....। (23)

अरे रे रे ! मीठी–मीठी कूकती हुई–सुन्दर कोयल, यदि इस नन्दन वन में मनचाहे ढंग से उड़ती–फुदकती हुई तुमने कहीं मेरी प्रिया को देखा हो तो बता दो। (24)

देखो ! कामी लोग तुम्हें मदन की दूती बताते हैं और मानिनी स्त्रियों का रूठना दूर करने के लिए तुम अचूक हथियार समझी जाती हो। इसलिए या तो तुम प्रियतमा को मेरे पास ही ले आओ या फिर हे मीठी–बोली, तू मुझे ही उसके पास झटपट ले जाकर पहुँचा दे।....(25)

"क्या कहा तुमने तुम्हारी इतना प्यार करने पर भी वह तुम्हें छोड़कर क्यों चली गयी? (आगे देखकर) सुनो। मुझे एक भी बात ऐसी स्मरण नहीं आती जिसके कारण रूठकर वह चली गयी हो। देखों, स्त्रियाँ तो वैसी ही अपने पतियों पर शान जमाये रखती है, इसलिये यह आवश्यक नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करें।.....(26)

(झट से बैठकर फिर घुटने टेककर ऊपर वाली बात फिर से कहता है। फिर ऊपर उठ कर देखता हुआ) यह क्या! मेरी बात पूरी होने से पहले ही यह अपने धन्धे में लग गयी। दूसरे का दुःख कितना भी अधिक हो पर लोग उसे कम ही समझते है। इसलिये मुझ विपत्ति के मारे की बातें अनसुनी करके यह कोयल पकी हुई फरैना जामुनों का रस पीने में उसी प्रकार आँख मूंदे लगी हुई है, जैसे कोई मतवाला अपनी प्यारी के होठों का रस पीने लग गया हो।....(27)

पर सब कुछ होने पर भी यह भी वह गाती है, मेरी प्यारी के समान हो, इसलिये मैं इस पर क्रोध नहीं, करता। तुम बैठी रहो सुख से। हम ही यहाँ से चले जाते हैं।....(28)

मधुरस्वरा परभृता भ्रमरी च
बिबुद्वचूतसंगिन्यौ।
कोटरमकालंवृष्टया
प्रबलपुरोवातया गमिते।।
–मालविकाग्निमित्र, 4–2

विदूषक के द्वारा यह समाचार मिलने पर कि मालविका और बकुलावलिका को रानियों ने बेड़ी डालकर उन्हें नाग कन्याओं के समान ऐसे पाताल में ले जाकर रख दिया है जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँच सकतीं। राजा बहुत कष्ट के साथ कहता है कि–"यह तो बड़ा बुरा हुआ कि बौरे हुए आम के साथ रहने वाली मिठबोली कोयल और भौंरी दोनों को प्रचण्ड पूर्वी वायु और असमय की वर्षा ने पेड़ के खोखले में बन्द कर दिया।"

कोयल का शब्द–श्लोक 1, 5, 9–24, 9–28 तथा 10 में कोयल का शब्द अत्यन्त मधुर बतलाया गया है। कोकिला शब्द ही मधुर गान का सूचक है। अमरकोश में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है–"कोकते चित्तंगृस्णाति कोकिलः" अर्थात् जो हमारा चित्त हरती है, वह कोयल है। श्लोक 3, 4 और 6 में यही शब्द कामोत्तेजक बतलाया गया है। मधुर तथा चित्ताकर्षक होने के कारण ही इस शब्द को मदोन्मत्त कर देने वाला माना जा सकता है। इन्हीं श्लोकों में यह भी संकेत है कि कोयल का शब्द बसन्त ऋतु में ही सुनाई देता है। श्लोक 6 में एक विचित्र ही कल्पना की गयी है और वह यह कि आम की मंजरी खा लेने से कोयल का कंठ मधुर हो जाता है। इस विचार की पुष्टि के लिए आधुनिक विज्ञान के परीक्षणों की आवश्यकता है ताकि आम की मंजरी का, 'इस विशेष गुण के कारण, अन्यत्र भी उपयोग किया जा सके। श्लोक 6 और 7 तथा अन्य बहुत से उन श्लोकों में जिनका उल्लेख पुनरावृत्ति के कारण ऊपर नहीं किया गया यह महत्वपूर्ण निरीक्षण स्पष्ट है कि मधुर गान नर कोयल के कण्ठ से ही निकलता है। मधुर गान के साथ यदि कहीं स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग हुआ भी है तो वह केवल इसी अर्थ में समझा जा सकता है जिसमें कि हम प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा में बन्दर, कुत्ते और कुतिया को कुत्ता, तोते और तोती को तोता, चिड़िया और चिड़ौटा को चिड़िया आदि शब्दों से तथा नर और मादा कोयल दोनों को स्त्रीलिंग शब्द से ही संबोधित करते हैं। कोयल चाहे नर ही क्यों न हो किन्तु प्रत्येक हिन्दी भाषी उसे यही कहता है कि कोयल बोलती है, न कि कोयल बोलता है।

कालिदास के इन वर्णनों की तुलना आधुनिक वैज्ञानिकों के निम्नलिखित कथनों से कर लेना उचित होगा–(1) नर कोयल एक प्रसिद्ध गाना गाता है जो मधुर माना जाता है। इसके शब्द कूओक्यू कूं ऊ यू के सदृश सुनाई देता है। मादा कोयल का स्वर छोटा है कि वह उड़ते समय निकालती है। इस स्वर में विशेष प्रकार की कर्कश ध्वनि हैं जो सन्तानोत्पादन ऋतु में सुनाई देती है अन्यथा वह चुप ही रहती है।"

"यह जानना भी मनोरंजक है कि प्राचीन अथवा आधुनिक भारतीय कवियों ने मादा कोयल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को ही मधुर गान का गुण प्रदान किया है, किन्तु वास्तव में वह नर है जिसमें यह गुण विद्यमान है।" (धर्मकुमार सिंह)

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि धर्मकुमार सिंह का कथन अन्य किन्हीं कवियों के विषय में ठीक या त्रुटिपूर्ण हो किन्तु कालिदास के विषय में यह ठीक नहीं है। कालिदास का निरीक्षण आधुनिक निरीक्षण के समान ही है।

श्लोक 2 में यह बतलाया गया है कि कोयल की पहली कूक बसन्त ऋतु में सुनी जाती है। प्रारम्भ में और प्रथम बार बोले जाने के कारण यह शब्द मुग्धानायिका के शब्द मुग्धानायिका के समान नपा–तुला और अटकता हुआ–सा लगता है।

यही भाव कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है:–

"अन्यभृताभिः कोकिलाभिः प्रथम प्रारम्भे षूदीरिता उक्ताअतएवं मिता परिमिता गिरे अलापाः"

कालिदास के इस कथन की तुलना आधुनिक पक्षी–विशेषज्ञ सालिम अली के निम्नलिखित वर्णन से की जा सकती है:–

"कोयल (नर) शीत ऋतु में चुप रहता है और दिखाई न देने के कारण अनुपस्थित माना जाता हैं। ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ होने तक बढ़ती हुई गति से घोषकर प्रातःकाल बोलने वाली सबसे पहली चिड़िया होती है। इसका स्वर एक धीरे से कू से प्रारम्भ होता है, प्रत्येक पश्चादागत कू के साथ वह बढ़ता जाता है और सातवें या आठवें कू पर वह शब्द अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है फिर यकायक टूटता है और उसके पश्चात् सारा शब्द फिर से दुहराया जाता है। मादा कोयल का शब्द तीक्ष्ण तथा शीघ्रता से पुनरावृत्त होने वाला किक–किक है जो एक पेड़ पर से दूसरे पेड़ तक उसके उड़ते समय निकलता है।

स्पष्ट है कि कोयल के शब्द के विषय में कालिदास के वर्णन विज्ञान से बहुत अधिक मेल खाते है।

कोयल के जीवन पर ऋतु–प्रभावः– जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है (श्लोक 2) कोयल की पहली कूक बसन्त के प्रारम्भ में सुनी जाती है। इसका अर्थ यह है कि वह शीत ऋतु में चुप रहती है। श्लोक 3,4,6 से तथा अन्य श्लोकों से भी स्पष्ट है कि कोयल ,बसन्त ऋतु भर गाती है। श्लोक 7 में बसन्त कोयल की अनुरंजन ऋतु बतलायी गयी है। श्लोक 9–23 में कोयल को ग्रीष्म ऋतु के अन्त में भी मदमस्त और कामोन्मत्त बतलाया गया है। धर्मकुमार सिंह तथा सालिम अली की पूर्वोल्लिखित पुस्तकों में भी कोयल का अंड–सेवन काल अप्रैल से अगस्त तक है। अतः कोयल के जीवन पर ऋतु–प्रभाव के विषय में कालिदास का कथन सत्य है। श्लोक 10 में कोयल के एक और विशेष स्वभाव की ओर संकेत है और वह यह कि बसन्त ऋतु के अनुरंजन काल में उसे वर्षा और पूर्वी वायु रुचिकर नहीं है। असमय के इन प्रतिकूल ऋतु प्रभावों से बचने के लिए कोयल किसी पेड़ के खोखले में जाकर शरण लेती है।

कोयल का भोजनः–आधुनिक जन्तु–विज्ञान की पुस्तकों में कोयल का भोजन अधिकांश रूप में फल जैसे गूलर, अंजीर, शहतूत, अंगूर और पपीता आदि तथा कुछ अंश में कीट और इल्ली आदि माना गया है। कालिदास ने श्लोक 6,7 और 10 में आम रस को कोयल का भोजन बताया है–जामुन भी विशेष प्रकार की अर्थात् 'राजजम्बू' है। साथ ही साथ जामुन के रस पीने की विधि के ऊपर भी तीक्ष्ण निरीक्षण है और वह यह कि कोयल जामुन का रस आँख मूंद कर उसी प्रकार पीती है जैसे कोई मतवाला अपनी प्यारी के होठों का रस पीने में लग रहा हो। इन शब्दों में कवि–कल्पना और श्रृंगार रस तो है किन्तु वैज्ञानिक तथ्य से भी ये खाली नहीं है।

अनुरंजन (कोर्टशिप)–ऋतुओं के प्रभाव में पहले यह बतलाया जा चुका है कि बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कोयल कामोन्मत्त रहती है। श्लोक 7 में नर और मादा के बीच चुम्बन और प्रेमालाप स्पष्ट है। आधुनिक विज्ञान की पुस्तकों में नर और मादा कोयल को पेड़ की शाखा पर साथ–साथ बैठे जिस प्रकार से चित्रित किया गया है उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास ने भी प्रकृति में इसी प्रकार के दृश्य का गूढ़ अवलोकन करके ही यह चुम्बन और प्रेमालाप का श्लोक लिखा होगा।

अंड तथा शिशुओं का पोषण–अन्यभृता, परपुष्टा आदि जितने शब्द कोयल के लिए प्रयोग में आये है उन सबका एक ही आशय है और वह यह कि कोयल के अंडों और बच्चों का पोषण अन्य पक्षियों के द्वारा होता है। श्लोक 8 में कोयल की यह पोषण विधि पूर्ण रुप से स्पष्ट कर दी गयी है कि जब तक कोयल के बच्चे उड़ना नहीं सीख जाते तब तक वह दूसरे पक्षियों से ही उनका पालन कराती है। सम्भवतः इसीलिए श्लोक 9–23 में कोयल को बहुत चतुर पक्षी माना गया है। कोयल का यह स्वभाव एक वैज्ञानिक तथ्य है। वह अपने अंडे कौवे या अन्य पक्षियों के घोंसले में रखती हैं यह कार्य कोयल के लिए अत्यन्त संघर्ष और चतुरता का है। जिस पक्षी के घोंसले में अंडे रहते हैं वह मूर्ख धोखे में आकर उनको पालता रहता है। अंडे में से निकलने के बाद भी कोयल के बच्चे कभी–कभी तो वास्तविक गृहस्वामी के बच्चों को घोंसले से निकाल बाहर करते है और उन्हीं के साथ पलते रहते है। कौवा–कौवी जो भोजन लाते हैं वे अपने और कोयल के बच्चों को समान रूप से खिलाते रहते हैं। जब तक कोयल के बच्चे बोलने न लग जायें तब तक कौवा और कौवी धोखे में ही रहते है। बोलने के समय तक कोयल के बच्चे समर्थ हो जाते हैं और घोंसले से बाहर भाग जाते हैं। इस प्रकार मूर्ख बने हुए और ठगे हुए कौवे–कौवी कोयल के बच्चों का पीछा भी करते हैं। किन्तु सब व्यर्थ होता है। प्रहार और आक्रमण से पहले ही कोयल के बच्चे अपना अन्य सुंरक्षित स्थान ग्रहण कर लेते है। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए ही कालिदास ने तथा आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी कोयल को सबसे अधिक चतुर पक्षी माना है।

स्पष्ट है, प्राचीन भारत के संस्कृत साहित्य से जन्तुओं के जीवन के विषय में बहुत कुछ लाभदायक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह ज्ञान वैज्ञानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में इस प्राचीन धनकोश का आधुनिक ढंग से खोले जाना अन्तर्राष्ट्रीय और वैज्ञानिक दृष्टि से संसार के सभी वैज्ञानिकों के लिए आवश्यक और लाभदायक है तथा भारतीय जनता के लिए गौरव की बात है और अपनी उच्च संस्कृति का एक उज्जवल प्रमाण है।●

संपर्क : ए–305 ओसीआर, बिल्डिंग,
विधानसभा मार्ग, लखनऊ
मो. : 9415508695

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास और रवीन्द्रनाथ
(विचित्र सम्भाषण)

प्रथम नाथ विशी

कालिदास–कवि, मुझ पर तुम्हारी कृतज्ञता की कोई सीमा नहीं।

रवीन्द्रनाथ–मुझे लज्जित न करें महाकवि, मेरी कृतज्ञता ! कवि मात्र ही मनुष्य की कृतज्ञता के पात्र हैं। आपके समान महान् कवि महती कृतज्ञता के पात्र हैं।

कालिदास–यही तो दुःख है कवि ! लोगों ने मुझे महाकवि के रूप में कब स्वीकार किया ?

रविन्द्रनाथ–स्वीकार नहीं किया? भारत में महाकवि कहलाने योग्य तो तीन ही महापुरुष हैं–वाल्मीकि, व्यास, कालिदास।

कालिदास–महाकवि कालिदास ? महाकवि तो वह किसी भी रूप में नहीं। क्या किसी महाकवि की जीवन–कथा के नाम पर अशिष्ट, अश्लील और बेतुकी कहानियों का प्रचार हो सकता है ! क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं?

रवीन्द्रनाथ–ज्ञात क्यों नहीं? आदि–कवि वाल्मीकि के नाम पर भी तो रत्नाकर डाकू होने का कलंक लगाया जा चुका है।

कालिदास–वह ऋषि हैं। लेकिन, मैं तो एक लौकिक कवि हूँ।

रविन्द्रनाथ–ये कथाएं लौकिक कवियों के प्रति लोक–सम्मान तुल्य हैं।

कालिदास–सम्मान ! ये अपमानजनक कथाएं!

रवीन्द्रनाथ–ऐसा लगना स्वाभाविक ही है। लेकिन मैं फिर निवेदन करता हूँ कि उनका सर्जन आपको अपमानित करने के लिए नहीं हुआ।

कालिदास–तो?

रवीन्द्रनाथ–आपको सम्मानित करने की ही आशा से।

कालिदास–वे स्थूल, रूढ़, ग्राम्य चर्चाएं?

रवीन्द्रनाथ–जब गुप्त सम्राट् अपने राज्य का निरीक्षण करने निकलते थे, जनपद के शिल्पी उनकी सेवा में ग्राम्य वस्त्र भेंट किया करते थे। क्या वे राजा के कोमल अंगों पर कटुस्पर्श से नहीं लगते थे?

कालिदास–अवश्य लगते रहे होंगे।

रवीन्द्रनाथ–सामान्य प्रजा के वे तुच्छ उपहार, उनके सरल हृदय से प्रसूत उनकी सम्मान की इच्छा के प्रतीक थे।

कालिदास–अवश्य, अवश्य! कितनी ही बार विश्राम–वार्तालाप के समय महाराजकुमार भी ठीक यही बात हमसे किया करते थे। लेकिन उसके साथ इन कथाओं का क्या सम्बन्ध है ?

रवीन्द्रनाथ–चूंकि आप अत्यन्त विचलित हो गये हैं इसीलिए समझ नहीं पा रहे हैं, नहीं तो आपके समान मर्मज्ञ के लिए यह दुर्बोध्य बात नहीं है।

कालिदास–व्याख्या द्वारा स्पष्ट करो तो अच्छा।

रवीन्द्रनाथ–लोग जानते हैं कि कवित्त एक ऐसा दुर्लभ दैवीगुण है जो सप्रयास वश में नहीं आता, वह अकस्मात् आकाश से वज्राग्नि–सा उतर आता है।

कालिदास–इसमें क्या सन्देह है ?

रवीन्द्रनाथ–आपका कवित्व आकाश–संभव विद्युत् है, वाणी के किरीट से स्खलित शतदल का पराग है, वह दिंङ्नाग का प्रभूत श्रम–जन्य जलपुष्ट ज्ञानवृक्ष नहीं है–उसकी प्रकृति ही अलग है। यही बात जन–जन में कथाओं के रूप में फैली। यह आपको समझने का उनका एक प्रयास मात्र है।

कालिदास–इसीलिए वे मुझे मूर्ख बनाते हैं?

रवीन्द्रनाथ–पात्र पूर्ण करने से पूर्व उसे रिक्त कर लिया जाता है।

कालिदास–जिस शाखा पर मैं बैठा हुआ था उसी को मैंने काटा?

रवीन्द्रनाथ–कवि तो साधक होता है। संसार–शाखा को उच्छिन्न कर क्या साधक उसे फेंक नहीं देता?

कालिदास–उस मूर्ख का अपमान उसकी पत्नी के हाथों हुआ?

रवीन्द्रनाथ–पत्नीव्रत को जीवन की परम निर्भरता के रूप में जिन्होंने दिखाया है उनके बारे में इस कलंक की सार्थकता क्या है, क्या यह आपकी समझ में नहीं आया?

कालिदास – तुम्हीं समझा दो।

रवीन्द्रनाथ–इसे भी हम पात्र को रिक्त कर पुनः पूर्ण करने का प्रयास कह सकते हैं। आपके काव्य में पत्नी को आदर्श के शिखर पर पहुंचाया गया है–इसलिए उस कथा में पत्नी को वस्तुतः चरमावस्था तक पहुँचा दिया गया है। शून्य पात्र की शून्यता यही दिखाया गया है। पूर्ण पात्र कितना पूर्ण हो सकता है यही उन लोगों ने आपके काव्य में देखा है। दुःखी न हो कविवर, क्रौंच विरह से पीड़ित कवि को लोगों ने इसीलिए पाषाण–हृदय डाकू बनाया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणा का स्रोत यदि पाषाण को विदीर्ण कर न निकले, तो उसका महत्व ही क्या?

रत्नाकर डाकू के पट पर करुणा की वाणी–मूर्ति उज्ज्वल–तर होकर उभर आयी है–जैसे अज्ञान के काले पट पर आपकी शुक्र नक्षत्र–सी प्रतिभा अधिकाधिक देदीप्यमान हो गयी है।

कालिदास – स्यात्, तुम्हारे कथन में सत्यांश होता। तुम्हारे नाम पर भी, क्या उन लोगों ने कुछ गढ़ा है?

रवीन्द्रनाथ – अभी तो नहीं गढ़ा है, पर, समय आने पर गढ़ेंगे ही, सम्भवतः अभी से लोगों की रसना सरस हो उठी है।

कालिदास – अच्छा ही होगा, कलंक के घाट पर भारत के चौथे महाकवि को भी साथी के रूप में पाऊंगा।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन आपके दुःख का कारण मैं अभी तक न जान सका।

कालिदास – तुमने मेरा वह दुःख दूर कर दिया।

रवीन्द्रनाथ – कैसा दुख?

कालिदास – आत्मग्लानि का दुख।

रवीन्द्रनाथ – आत्मग्लानि? आपकी आत्मग्लानि?

कालिदास – हां, हां, आत्मग्लानि और सो भी मेरी ही।

रवीन्द्रनाथ – तनिक और स्पष्ट करें।

कालिदास – अस्पष्टता ही अच्छी है। अभी तो लोगों ने मुझे केवल संभोग, मिलन–माधुर्य तथा श्रृंगार रस के ही कवि के रूप में देखा और माना है। इससे अधिक भी मेरा कुछ भागधेय है, यह उन्हें स्वीकार नहीं। क्या यह महाकवि के लक्षण हैं?

रवीन्द्रनाथ – नहीं, नहीं, कदापि नहीं।

कालिदास – महाकवि की दृष्टि जीवन के किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमाबद्ध नहीं होती–वह दृष्टि और जीवन समव्यापी है।

रवीन्द्रनाथ – मैंने तो आपके इसी जीवन दर्शन की व्याख्या की है और जीवन तत्व को भी समझाने का प्रयत्न किया है।

कालिदास–इसीलिए तो तुम्हारे प्रति मेरी कृतज्ञता की सीमा नहीं। सहृदय मल्लिनाथ ने अवश्य ही सरस टीका की है– लेकिन वह कोई कवि तो थे नहीं, अलंकार–शास्त्री मात्र थे। उन्होंने मेरे काव्य का नैसर्गिक सौन्दर्य ही समझाने का प्रयास किया है। लेकिन, क्या उससे अधिक मेरा कोई अधिकार नहीं? तुम तो पाठक की दृष्टि मेरे काव्य के अन्तर लोक में खींच लाये हो।

रवीन्द्रनाथ – हां, ऐसा ही तुच्छ प्रयास मेरी ओर से अवश्य हुआ है।

कालिदास – तुच्छ प्रयास! सहृदय व्याख्या को ऐसी सफलता सम्भवतः अन्यत्र कहीं नहीं। डेढ़ सहस्र वर्ष तक मुझे तुम्हारे जैसे प्रतिभावान् सहृदय की बाट जोहनी पड़ी।

रवीन्द्रनाथ – महान् सर्जन की प्रतीक्षा?

कालिदास – बिल्कुल! वृक्षराज को कोई जल्दीबाजी नहीं, औषधि–गुल्म को ही त्वरा है।

रविन्द्रनाथ – महाकवि, आपके प्रति मेरा आभारी होने का कारण कितना महान है वह मैं ही जानता आपका काव्य पढ़कर ही मैं भारतवर्ष को समझ पाया हूँ।

कालिदास – यह तो नयी बात है।

रवीन्द्रनाथ – नयी हो सकती है पर असत्य नहीं।

कालिदास – कैसे?

रवीन्द्रनाथ – भारतवर्ष को समझने के लिए कितने ही महापुरुषों के द्वार खटखटाये। इतिहास का अध्ययन किया। पर इतिहास तो केवल तथ्य ही दे पाता है सत्य तक नहीं पहुंच पाता। वास्तविकता के द्वार भी गया, वहाँ पर केवल आज का ढेर पड़ा है– चिरन्तन का संवाद नहीं। उपनिषद् की अरण्य छाया में कुछ आभास–सा मिला। लेकिन वह तो तत्ववाद निकला। जीवन का सत्य उसमें है, पर उसकी समग्रता नहीं। कहाँ है उसमें रक्त–मांस से संजीवित मानव? ऐसे ही समय पर आपके काव्य को नये दृष्टिकोण से देखा और जो कुछ खोजता–भटकता रहा उसे पा गया।

कालिदास – तुम्हें क्या मिला, जरा सुनें तो। अपना सत्य दूसरे के मुख से अधिक शुभ्र लगने लगता है।

रवीन्द्रनाथ – पहले ऋतु–संहार को ही लिया जाय।

कालिदास – वह तो किशोर वय की रचना है, उस समय केवल काव्य की रीति ही मुझे मिल पायी थी, जीवन की नीति उस समय नहीं मिली थी। उसमें सौन्दर्य है पर सत्य नहीं। सत्य सौन्दर्य के मिलन से उसका द्विजत्व लाभ नहीं हुआ था।

रवीन्द्रनाथ – हां, कुछ–कुछ मेरे संध्या संगीत की तरह। लेकिन आपके उस अपरिणत काव्य में मैंने देखा कि प्रकृति को सिर्फ जड़ नहीं माना गया है, रंगमंच का मनोरम पर्दा नहीं माना गया है बल्कि उसे प्राणमय बना कर मनुष्य की सहेली के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य के जीवन में जिस ऋतुचक्र का नित्य प्रत्यार्त्तन हो रहा है उसी का बाहरी प्रकाश आपने निःसर्ग की ऋतु मेखला में देखा है, निसर्ग का सत्य मानव जीवन का सत्य बन गया।

कालिदास–कवि के अलावा ऐसा सहृदय द्रष्टा और कहां मिलेगा?

रवीन्द्रनाथ–उसके बाद नये दृष्टिकोण से आपकी मालविका, विक्रम, कुमार, शाकुन्तला, मेघदूत और देखा। देखा सारे काव्यों के नीचे एक ही स्रोत प्रवाहित हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहा है। मैंने आपका जीवन–तत्व समझ लिया।

कालिदास – तुम्हारे जीवन में वह किस तरह से प्रतिफलित हुआ यह भी तो सुनें।

रवीन्द्रनाथ – अपने सभी काव्यों में आपने एक ही सत्य प्रतिष्ठित करना चाहा है–मनुष्य के घर में मानव–शिशु का आगमन।

कालिदास – लिखते समय यह बात नहीं सूझी थी, बाद में समझ पाया।

रवीन्द्रनाथ – चलते समय पग–चाप की ओर ही दृष्टि लगी रहती है पर चलने के अन्त में ही पथ की सम्पूर्णता का बोध हो पाता है।

कालिदास – मालविका में तत्व को प्रस्फुटित करने का अवसर न मिला। उसे एक उत्सव के कारण महाराजा के अनुरोध पर लिखना पड़ा था। उस समय भी राजसभा में मेरा आसन भली–भांति जम नहीं पाया था तो चमत्कार सर्जन की ओर ही अधिक दृष्टि थी। वह काव्य दूसरों के मुंह की ओर देखकर लिखा गया है।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन उससे सौन्दर्य के साधन में कोई कमी नहीं आई।

कालिदास – प्लावन था इसीलिए तो उसमें शतदल नहीं खिल पाया। कुमार और शकुंतला हैं सौन्दर्य के मानस सरोवर जिसमें सत्य के श्वेत–कमल खिले। लेकिन तुम्हारा कहना भी असत्य नहीं; मालविका, विक्रम, कुमार वा शकुन्तला एक ही सूत्र के विन्यास है। हर स्तर पर परीक्षा करते हुए चलना पड़ा है–पथ का चिह्न कोई भी न था।

रवीन्द्रनाथ–यह बात सच है। काव्य की परिणति या तो विवाह में है या मृत्यु में। आपके काव्य में उस चिराचरित पथ का अनुसरण नहीं है– आपके काव्य की परिणति शिशु के जन्म में है।

कालिदास–साधु–साधु! मालविका में मानव–कन्या की कथा सुनायी, पर शिशु न आ सका। विक्रम में मैंने शापभ्रष्ट अप्सरा की कथा सुनायी जो कि स्वर्ग की अधिवासिनी थी पर देवी नहीं। आया शिशु। लेकिन मन ने कहा–नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं हुआ। मैं मनुष्य के घर में मानव–पुत्र चाहता हूँ। कुमार में इस प्रयोग का श्रीगणेश हो गया। इस बार निसर्ग और देवता में जोड़ा बांधा गया, महादेव के साथ हिमालय कन्या उमा का विवाह। कुमार मांगा था, मिला, पर मानव कुमार ना मिला। प्रयोग की सफलता मिली शकुन्तला में, एकदम मानव के आलय में पूर्ण मानव का अभ्युदय हुआ, स्वर्ग मर्त्य–अन्तरिक्ष एक साथ बंध गये। तपोवन और जनपद, विश्वामित्र के शान्त तपस्या के समुद्र में संगता, अप्सरा मेनका की उच्छृह्वल–यौवन तरंगिणी के मुख पर कोमल अकलंक शकुन्तलारूपी कन्या–भूमि दीख पड़ी, इतने दिनों से जिसका सन्धान कर रहा था।

रवीन्द्रनाथ – यह महाकवि के योग्य ही व्याख्या है।

कालिदास – उसके बाद कहने को नया कुछ नहीं था, रघु में अपना ही पुनरावर्त्तन किया है। रघु मेरे काव्य जीवन का योगफल है। अंकपात पहले ही हो गया था उसमें केवल उसका समष्टिकरण है।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन मेघदूत?

कालिदास – हां मेघदूत ! उसमें अपनी कल्पना को मैंने छुट्टी दें दी थी। पाठशाला से पलातका की नाई वह जहाँ–तहाँ नये–नये पतिंगों के संकेत का पीछा करती, आनन्द से घूमती रही।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन वे संकेत भी तो आकस्मिक नहीं। रामगिरि और अलका जो हुई है और जो होनी चाहिये थी, मर्त्य का क्षणिक सुख–दुःख और चिरानन्द, यह सब क्या मेघदूत की विद्युत राखी में एक साथ बंध नहीं गये?

कालिदास – अब समझ पा रहा हूँ कि बंध गये हैं पर कभी इस पर विचार करने को मन नहीं हुआ। जल तो नापा जा सकता है पर फेन? मेघदूत मेरे काव्य प्रवाह का फेनपुंज है।

रवीन्द्रनाथ – फेनपुंज का मूल्य सम्भवतः मुद्राओं से नहीं आंका जा सकता पर वे विचार से परे की वस्तु भी नहीं है। उत्तर मेघ और सूर्यवंश के आदर्श नृपतियों का रामराज्य क्या एक स्वर में टंका हुआ नहीं है। दोनों जगहों पर ही आपने आदर्श लोक का चित्र खींचा है। यक्ष की अलका और सूर्यवंश की अयोध्या क्या एक ही चित्र के दो पक्ष नहीं हैं।

कालिदास–मेघदूत के बारे में इस तरह तो मैंने कभी नहीं सोचा। मैंने पहले ही कहा है कि मेघदूत में मेरी कल्पना इच्छानुसार भ्रमण करती रही। शलभ के पंख का पीछा करती हुई अगर वह फुलवाड़ी में जा पहुँची हो तो कोई अन्याय नहीं हुआ। फिर भी रघुवंश के बारे में जो कुछ तुमने कहा है वह असत्य नहीं। रघुवंश के स्वर्णपात्र में मेरे जीवन के श्रेष्ठ अनुभव संचित हैं। आदर्श नृपत्ति, आदर्श राज्य अंकित करने की अभिलाषा लेकर उस काव्य की रचना करने मैं बैठा था। मैंने दिखाने का प्रयत्न किया है कि किन–किन गुणों से उसी राजवंश का पतन होता है। यह काम बहुत कठिन था ऐसी बात नहीं– अपनी आंखों से ही श्रेष्ठ गुप्त सम्राटों को मैंने देखा है और फिर अपनी आंखों से ही उनके अयोग्य उत्तर पुरुषों को देखना पड़ा है जबकि उन्नति की चोटी से गुप्तवंश का रथ द्रुत गति से अधःपतन की राह पर जा रहा था। रघुवंश काव्य गुप्तवंश की कथा है।

रवीन्द्रनाथ – मैंने भी इसी दृष्टिकोण से आपके उस काव्य को देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास – इसीलिए तो तुम्हें मैंने अपनी कृतज्ञता जतायी और कहा कि तुम्हीं ने मुझे 'सम्भोग के कवि' के कलंक से उबार कर तत्वदर्शी महाकवि का सम्मान दिया।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन सिर्फ रघु में ही नहीं आपके सभी काव्यों में आदर्श राज–चरित्र–चित्रण का प्रयास है।

कालिदास– है तो अवश्य। अग्निमित्र चरित्र दूसरे का मुँह ताककर अंकित किया गया था। पुरूरवा महान् था इसमें सन्देह नहीं, लेकिन प्रेम के कैवल्य के कारण आदर्श नृप–चरित्र नहीं बन पाया। उसके बाद महादेव का चरित्र अंकन किया। वह आदर्श पुरुष हो सकते हैं लेकिन आदर्श मानव नहीं– वह देवता जो थे। उसके बाद आये दुष्यन्त। हां गुण–दोष, प्रेम त्याग, वीर्य–करुणा में वह हमारे आदर्श के आसपास पहुँच पाये। उसके बाद दिलीप, रघु,, अज, दशरथ, रामचन्द्र इत्यादि के चरित्र हम अंकित करते चले गये। लेकिन सच बात यह है कि रघुवंश के अन्त में मेरा ध्यान काव्य की ओर ज्यादा नहीं था, बहुत जगहों पर लेखनी चलती गयी है पर प्रतिभा प्रतिभा नहीं–और बहुत–सी जगहों पर मनुसंहिता सामने खोलकर लिखता चला गया हूँ।

रवीन्द्रनाथ – इस शिथिलता का क्या कारण था?

कालिदास – वार्द्धक्य और गुप्तवंश की दुरावस्था मन को पीड़ित कर रहे थे। इसके अलावा रामचन्द्र और सीता के अयोध्या लौट आने पर ही प्रकृतरूप से काव्य की समाप्ति हो गयी थी। बाकी तो नियम रक्षा करते रहे!

रवीन्द्रनाथ – लेकिन परित्यक्त अयोध्यापुरी के वर्णन में क्या प्रतिभा का चरम विकास नहीं हुआ?

कालिदास – अवश्य ही हुआ होगा। लेकिन वह तो मेरी आंखों से देखी हुई घटना थी। परित्यक्त अयोध्या तो हृतगौरव उज्जैन था।

रवीन्द्रनाथ – यह बात ठीक है।

कालिदास – लेकिन प्रारम्भिक प्रसंग का उत्तर अभी तक मुझे नहीं मिला। भारतवर्ष के बीच में मेरे काव्य ने तुम्हें किस तरह से मदत पहुंचायी है? जरा समझाकर बताओ।

रवीन्द्रनाथ–हमारे देश में समाज का जो महत्व है वह और किसी देश में नहीं है। दूसरे देशों में वह महत्व राष्ट्रों को मिला है इसलिए उन देशों में स्वाभाविक रूप से राजा का स्थान सबसे ऊपर है। यह देश समाज केंद्रित है, यहां पर प्रधानता नारी की है। तुम्हारे द्वारा अंकित औशीनरी धारिणी, उमा, शंकुतला वा सीता के सामने राजे–महाराजे फीके पड़ गये हैं।

कालिदास – यह विचार असत्य नहीं।

रवीन्द्रनाथ – लेकिन और भी बातें हैं। हमारा देश जैसा समाज केन्द्रित है, हमारा समाज भी वैसे ही नारी केंद्रित है। अब इन नारियों को तो केवल विलासिनी होना ही ठीक नहीं और न ही केवल प्रणयिनी, यहाँ तक कि केवल गृहिणी होना भी ठीक नहीं– उनके लिए जननी बनना परम आवश्यक है। इसलिए आपके काव्य में जननी बनना अनि–वार्य बन गया है। इसलिए आपके काव्य नाम से न होने पर भी वस्तुतः कुमार संभव जैसे ही हैं।

कालिदास – साधु–साधु ! भारतवर्ष के इस सत्य की व्याख्या तुम्हारे जैसे कवि के अतिरिक्त और कौन समझा सकता है?

रवीन्द्रनाथ – और भारतवर्ष की इस मर्मकथा को आप जैसे महाकवि के अतिरिक्त और कौन उद्घाटित कर सकता था?

कालिदास – इस उद्घाटन का महत्व स्वीकृत होने के लिए मुझे डेढ़ सहस्र वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैं स्रष्टा हूँ और तुम आविस्कारक विशेष समय पर सृजन के आविष्कार का मूल्य अधिक होता है।

रविन्द्रनाथ – आपकी यह प्रशंसा मैं अग्रज कवि से आशीर्वाद के रूप में ग्रहण करता हूँ।

कालिदास – कवि, स्वर्ग में अग्रज–अनुज नहीं होते। सभी यहाँ वहाँ पर समान हैं– सभी के आसन यहाँ पर समान हैं, सभी का आदर समान है, स्थान समान है और अवस्था भी समान है

(अनु : प्रबोध कुमार मजूमदार) ●

कालिदास–साधु–साधु! मालविका में मानव–कन्या की कथा सुनायी, पर शिशु न आ सका। विक्रम में मैंने शापभ्रष्ट अप्सरा की कथा सुनायी जो कि स्वर्ग की अधिवासिनी थी पर देवी नहीं। आया शिशु। लेकिन मन ने कहा–नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं हुआ। मैं मनुष्य के घर में मानव–पुत्र चाहता हूँ। कुमार में इस प्रयोग का श्रीगणेश हो गया। इस बार निसर्ग और देवता में जोड़ा बांधा गया, महादेव के साथ हिमालय कन्या उमा का विवाह। कुमार मांगा था, मिला, पर मानव कुमार ना मिला। प्रयोग की सफलता मिली शकुन्तला में, एकदम मानव के आलय में पूर्ण मानव का अभ्युदय हुआ, स्वर्ग मर्त्य–अन्तरिक्ष एक साथ बंध गये। तपोवन और जनपद, विश्वामित्र के शान्त तपस्या के समुद्र में संगता, अप्सरा मेनका की उच्छृह्वल–यौवन तरंगिणी के मुख पर कोमल अकलंक शकुन्तलारूपी कन्या–भूमि दीख पड़ी, इतने दिनों से जिसका सन्धान कर रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास के प्रति

■रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आज तुमि कवि शुधु, नह आर केह–
कोथा तब राजसभा, कोथा तब गेह,
कोथा सेइ उज्जयिनी, कोथा गेल आज
प्रभु तब, कालिदास,–रात अधिराज।
कोनो चिन्ह नाइ का रो आज मने हय
छिले तुमि चिरदिन चिरानन्दमय
अलकार अधिवासी। सन्ध्याभ्रशिखरे
ध्यान भाङ्गि' उमापति भूमानन्द–भरे
नृत्य करितेन यबे, जलद सजल
मर्ज्जित मृदङ्गरवे, तड़ित् चपल
छन्दे छन्दे दित ताल, तुमि सेइ क्षणो
गाहिते वन्दना गान,–गीतिसमापने
कर्ण ह'ते वर्ह खुजि' स्नेह हास्य भरे
पराये दितेन गौरी तब चूड़ापरे।

"हे कालिदास, आज तुम केवल कवि ही हो; और कोई नहीं। तुम्हारी राजसभा क्या हुई? और तुम्हारा घर क्या हुआ? वह उज्जयिनी क्या हुई? आज तुम्हारा प्रभु राजाधिराज कहाँ गया? किसी का भी कोई चिन्ह नहीं है। आज मालूम होता है कि तुम चिरकाल चिरानन्दमय अलकापुरी के अधिवासी थे। सन्ध्याकाश की चोटी पर ध्यान तोड़कर उमापति जब नाचते थे और सजल बादल धहरते हुये मृदंग–रब से चंचल चपला के साथ प्रत्येक छन्द पर ताल देता था, उसी समय हम वन्दना के गीत गाते थे और गान समाप्त होने पर गौरी स्नेह से मुस्कुराती हुई अपने कान से वर्ह (एक प्रकार का आभूषण) निकालकर तुम्हारी चूड़ा पर पहना देती थीं।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास

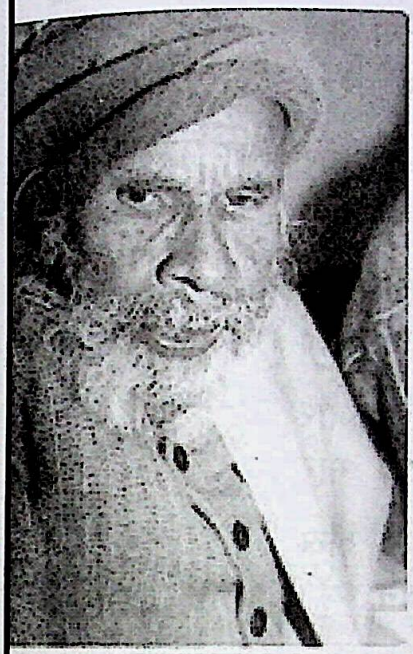

■ नागार्जुन

कालिदास, सच–सच बतलाना !
इन्दुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोये थे?
कालिदास, सच–सच बतलाना!

शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृतमिश्रित सूखी समिधा–सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोये थे?
कालिदास, सच–सच बतलाना
रति रोई या तुम रोये थे?

वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े–खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट के सुभग शिखर पर

उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच–सच बतलाना
पर पीड़ा से पूर–पूर हो
थक–थक कर औ' चूर–चूर हो
अमल–धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे?
कालिदास, सच–सच बतलाना!

Dr. Harish Shastri Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास के प्रति

■ ठाकुर प्रसाद सिंह

मधुर है रूप स्वयं ही कान्त, सभी स्वर मण्डन तेरा करें
प्रभा की तरल ज्योति के स्रोत धरा के आंगन–गृह–वन भरें।।

शोक जिनका बनता है श्लोक, हास जिनका प्रकाश–सम्भार
काल निरवधि है जिनके लिए, विपुल है धरती का विस्तार

गरुड़ के मुख से ज्यों जीमूत–उठें जो काल देश को चीर
वही देंगे जीवन की राह और सेयाञ्चा हम क्या करें।

कुसुम, फिर पल्लव आये नये उठी धन भ्रमरों की गुञ्जार
चित्रकों से कुरबक सज उठे वन–श्री की शोभा के भार

कुसुम सुरभित बन कोकिल बधू–बधू के अगम अटपटे बोल
किसलयी अधरों पर मुसकान मदिरे वंशी स्वर घर–वन भरें।

कमल–पत्रों पर आंसू लिखे दृगों के भीग गये सन्देश
आज आये हैं जग के पास छोड़ पीछे सुधियों के देश

सुनो ओ चक्रवाक की वधू विदा दो रजनी आयी पास
लौट जाओ तुम अपने देश, न जब तक पत्र सांझ के झरें।।

कालिदास–समारोह का वह प्रसंग नहीं भूलता

■ महादेवी वर्मा

एक बार मुझे कालिदास–समारोह में आमंत्रित किया गया। वहाँ कई मंत्रीगण भी आये हुये थे। मंत्री जी को भाषण देना था और भाषण तैयार था नहीं। वे मुझसे कालिदास–संबंधी जानकारी हासिल करने लगे। कालिदास कौन थे, कहाँ जन्मे, क्या–क्या लिखा, आदि–आदि। फिर उन्होंने पूछा–'क्या कालिदास ने कोई नाटक भी लिखा है?'

मैं आश्चर्य से मंत्री महोदय की ओर देख रही थीं। जो कवि नाटककार के रूप में ही जग–प्रसिद्ध हो, उसके जयंती–समारोह की अध्यक्षता करने आये मंत्री महोदय का साहित्य–ज्ञान कितना विशद् था, कम आश्चर्य की बात है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास

▪रामधारी सिंह दिनकर

समय-सिन्धु में डूब चुके हैं मुकुट, हर्म्य विक्रम के।
राजसिद्धि सोई कब जानें महागर्व में तम के।
समय सर्वभुक् लील चुका सब रूप अशोमन-शोभन,
लहरों में जीवित है कवि, केवल गीतों का गुंजन।

शिखा-लेख, मुद्रा के अंकन, सब हो चुके पुराने,
केवल गीत कमल-पत्रों के हैं जाने-पहचाने।
सब के गये, शेष हैं लेकिन कोमल प्राण तुम्हारे,
तिमिर-पुंज में गूंज रहे ज्योतिर्मय गान तुम्हारे।

काल-स्रोत पर नीराजन-सम ये बलते आये हैं,
दिनमणि बुझे, बुझे विधु पर, ये दीप न बुझ पाये हैं।
कवे! तुम्हारे चित्रालय के रंग अभी है गीले,
कली-कली है, फूल-फूल, फल ताजे और रसीले।

वाणी का रस-स्वप्न खिला था जो कि अवन्तीपुर में,
ज्यों-का-त्यों है जड़ा हुआ अब भी भारत के उर में।
उजयिनी के किसी फुल्ल-वन-शोभी रूप-विलय से,
विरह-मिलन के छन्द उड़े आते हैं मिले मलय से।

एक सिक्त-कुन्तला खोलकर मेघों का वातायन,
अब तक विकल रामगिरि-दिशि में हेर रही कुछ उन्मन।
रसिक-मेघ पथ का सुख लेता मन्द-मन्द जाता है,
अलका पहुँच संदेश यक्ष का सुना नहीं पाता है।

और हुताशनवती तपोवन की निर्धूम शिखाएँ,
लगती है सुरभित करती-सी मन की निखिल दिशाएँ।
एक तपोवन जीवित है अब तक भारत के मन में,
जहाँ अरुण आभा प्रदोष की विरम रही कानन में।

बँधे विटप से बैखानस के चीवर टँगे हुए हैं,
ऋषि-रजनीमुख-हवन-कर्म में निर्भय लगे हुए हैं।
मुनिबाला के पास दौड़ता मृगशावक आता है,
ज्यों-ज्यों दर्भजनित क्षत अपने मुख का दिखलाता है।

वह निसर्ग-कन्या अपने आश्रमवासी परिजन की,
लगा इंगुदी-तैल, गोद ले सुहलाती है तन को।
बहती है मालिनी कहीं अब भी भारत के मन में,
प्रेमी प्रथम मिला करते जिसके तट वेतस-वन में।

प्रथम स्पर्श से झंकृत होती वेपथुमती कुमारी,
एक मधुर चुम्बन से ही खिलकर हो जाती नारी।
दर्भांकुश खींचती चरण से झुकी अरालासन से,
देख रही रूपसी एक प्रिय को मधु-भरे नयन से।

इस रहस्य-कानन की अगणित निबिडोन्नतस्तनाएँ,
कान्तप्रभ शरदिन्दु-रचित छवि की सजीव प्रतिमाएँ।
हँसकर किसकी शमित अग्नि को जिला नहीं देती है?
किस पिपासु को सहज नयनमधु पिला नहीं देती है?

अमित युगों के अश्रु, अयुत जन्मों की बिरह-कथाएँ,
अमित जनों की हर्ष-शोक-उल्लासमयी गाथाएँ।
भूतल के दुःख और अलभ सुख जो कुछ थे अम्बर में,
सब मिल एकाकार हो गये कवे! तुम्हारे स्वर में।

किसका विरह नहीं बजता अलकावासिनि के मन में?
किसके अश्रु नहीं उड़ते हैं बनकर मेघ गगन में?
किसके मन की खिली चाँदनी परी न बन जाती है?
वनकन्या बन, लता-ओट छिप किसे न ललचाती है?

कम्पित रुधिर थिरकता किसका नहीं रणित नूपुर में?
मिलन-कल्पना से न दौड़ जाती विद्युत किस उर में?
गीत लिखे होंगे कविगुरु! तुमने तो अपने मन के,
झंकृत क्यों होते हैं स्वर इनमें त्रिकाल-त्रिभुवन के?

Dr. Umesh Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शकुन्तला की विदा

■ मैथिलीशरण गुप्त

(1)

त्यागी थे मुनि कण्व उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम–शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति–गिरा यों उसे सुनाई –

(2)

"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे–
तेरे भी कुल–दीप दिव्य औरस हो वैसे।।

(3)

गुरुओं की सम्मान–सहित शुश्रूषा करियो,
सखी–भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से।।

(4)

परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी–पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश–व्याधियाँ कहलाती हैं।।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास की कृतियों में संगीत : एक अध्ययन

डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में कालिदास विश्वविख्यात नाम है। 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' तथा 'मालविकाग्निमित्र' इनके सर्वप्रिय नाटक हैं। गीतकाव्यों में 'ऋतुसंहार' तथा 'मेघदूतम्' और इनके महाकव्यों में 'कुमारसंभवम्' तथा 'रघुवंशम्' लोकप्रिय हैं। इनके काल के बारे में बहुत मतभेद है परन्तु इस विषय की विवेचना में न जाते हुए कालिदास का समय चतुर्थ शतक विक्रमादित्य उपाधिधारी द्वितीय चन्द्रगुप्त के काल में मानते हैं।

कालिदास की शैली व्यंजनावृत्ति पर आधारित है। इनकी रचनाएं अद्वितीय हैं। प्रसादपूर्ण लालित्ययुक्त वैदर्भी शैली इनकी कृतियों को अधिक लोकप्रिय बनाती है–"वैदर्भी रीति सन्दर्भो कालिदास विशिष्यते।" भावों के चित्रण के लिए विषय को शब्दों में कहने की अपेक्षा व्यंजना वृत्ति से उस ओर संकेत मात्र कर थोड़े शब्दों में गम्भीर भावों की अभिव्यंजना करते हैं।

कालिदास रससिद्ध कवि हैं। इनकी रचनाओं में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग, दोनों रूपों का दर्शन होता है। इनका श्रृंगार मार्मिक है। हास्य, वात्सल्य, भयानक, वीर एवं अद्भुत रसों का भी चित्रण इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

प्रकृति–चित्रण कालिदास का सजीव एवं संवेदनशील है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' तो प्रकृति का ही चित्र है। इनके प्राकृतिक चित्र बिम्बग्रहण में पूर्णतः समर्थ हैं। कालिदास का भाषा पर असामान्य अधिकार है। जटिलता का सदा अभाव है। सर्वत्र सरलता, कोमलता, स्वाभाविकता, प्रवाह एवं प्रवाह है। इनकी शैली वैदर्भी है। महाकवि कालिदास और अलंकार, दोनों ही शोभायुक्त हैं। अलंकारों का प्रयोग इनके द्वारा भावों की अभिवृद्धि एवं रस–निष्पत्ति की दृष्टि से सर्वोचित है।

'उपमा कालिदासस्य' यह उक्ति जग प्रसिद्ध है। अन्यत्र दुर्लभ है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इन्हें मोनियर विलियम ने भारत का शेक्सपियर कहा–"कल्पनाशक्ति की प्रबलता रसना–चातुर्य आदि गुण कालिदास के इतने उन्नत थे कि उन्हें संसार का एकमात्र महापुरुष तथा भारत का शेक्सपीयर ही कहना चाहिए।"[1] साथ ही, कालिदास विद्वान् संगीत–मर्मज्ञ थे। उनकी रचनाओं में संगीत के तत्त्वों का उल्लेख कूट–कूट कर भरा हुआ है। गायन, वादन और नृत्य, इन तीनों के सम्मिश्रण को संगीत कहा गया है–

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते
नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च।।"[2]

इस मनोहारी संगीत का वर्णन कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य में इस प्रकार किया है–

"तस्यायमनृर्हितसौधभाजः
प्रसक्तसंगीत–मृदंगघोषः।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः
क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति।।"[3]

गायन, वादन एवं नृत्य की त्रयी 'संगीत' कहलाती है। कालिदास–साहित्य में गायन, वादन और नृत्य तीनों के ही प्रभूत उल्लेख उपलब्ध हैं। महाकवि कालिदास अन्य शास्त्रों की ही भाँति संगीत की इन विधाओं से सुपरिचित थे। तीनों के यथावसर प्रयोग ने कालिदास के साहित्य को एक अपूर्व रमणीयत्व एवं माधुर्य प्रदान किया है।[4]

कालिदास द्वारा प्रासंगिक रूप में ही संगीत अथवा अन्य कलाओं के सम्बन्ध में अपने बहुमुखी व्यक्तित्व द्वारा जो कुछ भी लिखा गया, वह आदर्श बन गया। संगीत के सम्बन्ध में उनके द्वारा किया गया अत्यल्प वर्णन भी महत्वपूर्ण बन गया। 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' में कुछ ऐसा ही दिखता है–"जब कोई श्रेष्ठ गीत सुनाई देता है, तो उसके प्रभाव से अन्वित हो जाने पर न किसी अन्य वस्तु की सुध रहती है, न कुछ और सुनाई देता है और न दिखाई देता है। राग के प्रभाव से श्रोता की कुछ ऐसी आकृति बन जाती है कि वही चित्रलिखित–सा हो जाता है। यह एक श्रेष्ठ गायक की श्रोता–मंडली में स्वीकृति या मान्यता का भी स्वरूप है। कालिदास की नटी ने कुछ ऐसा ही गीत गाया"–

"ईषदीषच्चुंबितानी भ्रमरैः
सुकुमारकेसरशिखानी।
अवतंसयंति दयमानः प्रमदाः
शिरीषकुसुमानि।।

अर्थात्–

हौले–हौले भौंरें आएँ
शिरीष के फूलों को चूम–चूम जाएँ
हौले–हौले.....!
तोड़–तोड़कर उन फूलों को,
हौले–हौले.....!
कोमल तन में, दयालु मन में,
श्रृंगार रचाएँ, मदमाती ललनाएँ !
हौले–हौले.....!"[5]

नायिका 'हँसपदिका' उच्चकोटि की गायिका है। उसके सधे स्वर रागों की अभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक हैं। उसकी गायकी में भावों की अभिव्यक्ति श्रोताओं के मन को व्याकुल कर देती। हँसपादिका की गायकी की व्याख्या के क्रम में महाकवि ने 'वर्ण–परिचय' शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द आधुनिक 'अभ्यास'

1. सक्सेना, डॉ. द्वारिका प्रसाद, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 103
2. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, 1/21
3. रघुवंशम्, अध्याय–13, श्लोक–40
4. कुलश्रेष्ठ, डॉ. जगदीश सहाय एवं डॉ. सुषमा, मेघदूत संगीत–पल्लवी, पृ.–10
5. कौर, श्रीमती अमृत, 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में संगीत और चित्रकला, संगीत, मई 1985, पृ.–41

Adhyayan Dharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा 'रियाज' के अर्थ में निहित है अर्थात् वर्ण का तात्पर्य 'स्वर' और 'परिचय' का तात्पर्य 'स्वरों' की अभिव्यक्ति है। राजमहल के संगीतशाला में हँसपादिका 'वर्ण–परिचय' करती है तब जो भी उधर से गुजरता है उसके स्वरों की ओर आकृष्ट होता है। यहाँ तक कि राजा दुष्यन्त भी उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहता। राजकीय कार्यों में व्यस्त रहने वाले दुष्यन्त के विरह में नायिका व्याकुल है। वह उसे बुलाए तो, कैसे बुलाए? नारी–सुलभ संकोच उसे बार–बार रोक देता है। आखिर वह एक गीत का सहारा लेती है–

"अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा
परिचुंब्य चूतमंजरीम्।
कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो मधुकर
विस्मृतोऽस्येनांकथम्।।"[1]

और, यह गीत दुष्यन्त के लिए हृदयस्पर्शी बन जाता है अर्थात् यहाँ संगीत ही सहायक है। भावों की अभिव्यक्ति में गीत सदा सहायक एवं प्रमुख साधन रहा है। इसे पुरुष एवं स्त्रियाँ, सभी गाते हैं। सीता–राम के पुत्र–द्वय लव–कुश को महर्षि वाल्मीकि ने संगीत शिक्षा दी थी। वे उनके द्वारा संगीतबद्ध रामायण को गीत रूप में गाते थे जिसकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी और जिसे राम ने भी सुना–

"रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली।।"[2]

कालिदास का युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था और संगीत भी चरमोत्कर्ष पर था। 'कुमारसम्भवम्' में कालिदास ने पार्वती के मधुर कण्ठ एवं स्वर का वर्णन करते हुए इसकी उपमा संगीत–सम्बन्धिनी से दिया है–

"स्वरेण तस्याममृतस्तुतेव
प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा
श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना।"[3]

कालिदास की शैली व्यंजनावृत्ति पर आधारित है। इनकी रचनाएं अद्वितीय हैं। प्रसादपूर्ण लालित्ययुक्त वैदर्भी शैली इनकी कृतियों को अधिक लोकप्रिय बनाती है–"वैदर्भी रीति सन्दर्भो कालिदास विशिष्यते।" भावों के चित्रण के लिए विषय को शब्दों में कहने की अपेक्षा व्यंजनावृत्ति से उस ओर संकेत मात्र कर थोड़े शब्दों में गम्भीर भावों की अभिव्यंजना करते हैं।

कालिदास रससिद्ध कवि हैं। इनकी रचनाओं में श्रृंगार के संयोग एवं वियोग, दोनों रूपों का दर्शन होता है। इनका श्रृंगार मार्मिक है। हास्य, वात्सल्य, भयानक, वीर एवं अद्भुत रसों का भी चित्रण इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है।

महाकवि कालिदास ने 'गन्धर्व संगीत' की चर्चा की है। गन्धर्व की गणना देवयोनि में की गई है। वे संगीत के ज्ञाता के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। कालिदास ने गन्धर्वों का उल्लेख कई स्थानों पर किया है।

"विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः।।"[4]

भारतीय संगीत में प्रयुक्त 'ग्रामों' का उल्लेख कालिदास ने किया है जिसमें उन्होंने षड्ज और मध्यम ग्राम को मानवों के लिए तथा गान्धार ग्राम को गन्धर्वों अर्थात् देवयोनि के लिए बताया है–

"षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवाः।
न तु गान्धारनामानं स लभ्यो देवयोनिभिः।।"[5]

संगीत–सम्बन्धी विभिन्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का उल्लेख कालिदास की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। मेघदूत की नायिका यक्षी की एक संगीतज्ञा है। विरहदग्धा वह नायिका अपने प्रियतम को उद्बोधित गीत को गान्धार ग्राम में गाना चाहती है पर वह अतीव पीड़ा–विरह वेदना के कारण स्वरचित मूर्च्छनाओं को भूल जाती है–

"उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारियित्वा कथंचिद्
भूयोभूयः स्वयमपि
कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।"[6]

मूर्च्छना का उल्लेख पुनः द्रष्टव्य है–

"स व्यबुध्यत बुधस्तवोचितः
शातकुम्भकमलाकरैः समम्।
मूर्च्छनापरिगृहीतकैशिकैः
किन्नरैरूषसि गीतमंगलः।।"[7]

कालिदास के महाकाव्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कालिदास के काल में राग–पद्धति स्थापित हो चुकी थी। उपर्युक्त पद से इस तथ्य की भी पुष्टि होती है।

इतना ही नहीं, पूर्व उल्लिखित संगीत–शास्त्रीय तत्त्वों के अतिरिक्त महाकवि की रचनाओं में जन–सामान्य में प्रचलित 'लोक संगीत' की भी विवेचना की गई है। आम जनता में प्रचलित परम्परागत रचनाएँ लोकगीत हैं। इसमें स्वाभाविकता होती है। इसमें सदैव कृत्रिमता का अभाव रहता है। इसमें लोक–जीवन की स्पष्ट छवि होती है। सरल एवं स्वाभाविक शब्दों में रचित होने के कारण यह सामान्य जन के अत्यन्त नजदीक है। प्रायः इसके रचयिता ज्ञात नहीं होते। लोकगीतों के कई रूप है, यथा– संस्कार गीत, धार्मिक गीत, ऋतु गीत, पर्व गीत, श्रम गीत, जाति गीत, कृषि गीत, प्रशस्ति गीत आदि।

कालिदास का जीवन जनसाधारण के अत्यन्त करीब बीता। अतः उनकी रचनाओं में उनके युग के लोक–मानस की स्पष्ट छाप हैं

1. कौर, श्रीमती अमृत, 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में संगीत और चित्रकला, संगीत, मई 1985, पृ.–42–43
2. रघुवंश महाकाव्यम्, अध्याय–15, श्लोक–65
3. कुमारसंभवम्, अध्याय–1, श्लोक–45
4. मेघदूतम्, अध्याय–1, श्लोक–1
5. मेघदूतम्, अध्याय–2, श्लोक–25
6. वही
7. कुमारसंभवम्, 8/85

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी रचनाओं में पुत्र–जन्म संस्कार, शुभविवाह संस्कार, प्रशस्ति गीतों आदि का उल्लेख है।[1] पुत्र–जन्म संस्कार किसी भी परिवार का अत्यन्त प्रसन्नता का अवसर होता है। शिव–पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के जन्मोत्सव पर शुभकामनाएँ देने वाले गन्धर्वों एवं गन्धर्व सुन्दरियों द्वारा मंगल गीत गाया–

"महोत्सवे तत्र समागतानां
गन्धर्वविद्याधरसुन्दरीणाम्।
संभावितानां गिरिराजपुत्र्या
गृहेऽभवन्मंगलगीतकानि।।"[2]

पार्वती के संग जब शिव बारातियों– ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव के गण आदि–के साथ जा रहे थे तब गन्धर्वों ने शिव का महिमा गान किया–

"विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः
संगीयमानत्रिपुरावदानः।"[3]

अपने पुत्र कार्तिकेय की वीरता का यशोगान करते हुए शिव ने पार्वती से कहा कि हमारा पुत्र देवों की विजय का कारण बनेगा और इसका वर्णन लोकगीतों में होगा जिसे महाकवि कालिदास ने इस प्रकार कहा है–

"देवि त्वमेवास्य निदानमास्से
सर्गे जगन्मंगलगानहेतोः।"[4]

इसके अतिरिक्त विभिन्न सांगीतिक क्रियाओं एवं तत्त्वों का उल्लेख महाकवि ने किया है। यद्यपि यह उल्लेख उनके द्वारा अपनी सांगीतिक विद्वता दर्शाने के लिए नहीं अपितु स्वाभाविक रूप में प्रसंगवश हुआ है। पुनरपि उनकी रचनाओं में संगीत को बहुधा प्रश्रय प्रदान किया गया है।

कालिदास कृत नाट्य कृतियों में भी संगीत द्रष्टव्य है। "मालविकाग्निमित्र" में चेटी की निम्नांकित उक्ति अवलोकनीय है– आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या। अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलितं राम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम् तत्तावत्संगीतशालां गच्छामि।[5]

ऋतु–गीत (वसन्त ऋतु) का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है–

"अग्रे स्त्रीनखापाटलं
कुरबकं श्यामं द्वयोर्भागयोः–
रक्ताशोकमुपोढरागसुभगं
भेदोन्मुख तिष्ठति।
ईषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मंजरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये
मधुश्रीः स्थिता।।"[6]

कामदेव का स्तुतिपरक यह गीत भी प्रस्तुत है–

"तुमंसि मए चूदंकुर दिण्णो
कामस्स गहीदधणुअस्स।
पहिअजणुजुवइलक्खो
पंचव्भहिओ सरो होहि।।"[7]

महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में विभिन्न वाद्यों का भी वर्णन किया है। वाद्यों के चारों प्रकारों–तत्, अवनद्ध, सुषिर एवं धन का उल्लेख उनके वाद्य विषयक ज्ञान का परिचायक है। तत् वाद्यों में वीणा सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण वाद्य है। कालिदास ने वीणा एवं वीणा–वादन के विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख किया है–

'उत्संगे वा मलिन वसने
सौम्य ! निक्षिप्य वीणां
महगोत्रांकं विरचितपदं
गेयमुहगातुकामा।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः
सारियित्वा कथंचिद्
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां
मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।"[8]

इस श्लोक का वर्णन पूर्व में भी किया गया है। परन्तु "प्रस्तुत पद्य के निम्नलिखित पद सांगीतिक महत्त्व के हैं–

1. वीणा, 2. तन्त्री, 3. सारयित्वा, 4. उत्संग, 5. मूर्च्छना, 6. मदंगोत्रांकंपदम् 7. गेयम्, 8. उहगातुकामा।

इनमें अन्तिम तीन पूर्णतः गायन से सम्बद्ध हैं, शेष सभी पद संगीत की द्वितीय विद्या–वाद्य–संगीत से सम्बद्ध हैं जिनके सम्यक् निष्पादन के बिना गायन संगीत का पक्ष पूर्ण नहीं माना जा सकता है।"[9]

यक्षिणी, देवर्षि नारद, विश्वावसु, सिद्ध–द्वन्द्व एवं राजा अग्निवर्ग तथा उनकी अन्तःपुर–प्रमदाएँ कालिदास की कृतियों में वीणावादक के रूप में वर्णित हैं।

अवनद्ध वाद्यों में पटह, पुष्कर (मृदंग, मुरज तथा मर्दल), दुन्दुभि, भेरी आदि का वर्णन कालिदास की कृतियों में उपलब्ध है। सभी अवनद्ध वाद्य 'पुष्कर' से ही अभिहित होते थे। पुष्कर वादन का उल्लेख यक्ष मेघ से अलकापुरी के प्रसंग में कर रहा है–

"यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।।"[10]

सुषिर वाद्यों का उल्लेख निम्नवत् हुआ है–"कालिदास ने अनेक स्थानों पर सुषिर वाद्यों

1. कौर, श्रीमती अमृत, कालिदास की कृतियों में लोकगीत, संगीत, अप्रैल 1986, पृ.–17
2. कुमारसंभवम्, 11/34
3. रघुवंशम्, 7/49
4. कुमारसंभवम्, 11/11
5. मालविकाग्निमित्रम् पृ.–२४ उद्धृत–कुलश्रेष्ठ, डॉ. सुषमा, कालिदास–साहित्य एवं संगीत कला, पृ.–266
6. विक्रमोर्वशीयम्, 2/7
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 6/3
8. मेघदूतम्–2/25
9. कुलश्रेष्ठ, डॉ. सुषमा, कालिदास–साहित्य एवं संगीत कला, पृ.–368
10. मेघदूतम्–2/5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रयोग किया है। इनका नामोल्लेख एवं संख्या इस प्रकार है–

1. तूर्य–इसका प्रयोग कवि ने बारह बार किया है।
2. अंक्य–इसका प्रयोग कवि ने एक बार किया है।
3. आलिंग्य–इस शब्द का प्रयोग कवि ने एक बार किया है।
4. ऊर्ध्वक–इस शब्द का प्रयोग कवि ने एक बार किया है।
5. वंश–इस शब्द का प्रयोग कवि ने दो बार किया है।
6. वेणु–इस शब्द का प्रयोग कवि ने एक बार किया है।
7. कीचक–इस शब्द का प्रयोग कवि ने तीन बार किया है।
8. शंख–इस शब्द का प्रयोग कवि ने नौ बार किया है।[1]

घन–वाद्यों की श्रृंखला में कालिदास की कृतियों में 'ताल' एवं 'घंटा' का वर्णन मिलता है। क्षुद्रघंटिका, नूपुर तथा काँची का भी उल्लेख है 'ताल' शब्द का एकमात्र उल्लेख निम्न श्लोक में मिलता है–

"तन्मध्ये च स्फटिकफलका
कांचनी वासयष्टि–
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढ़वंशप्रकाशैः।
तालैः शिंजावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृदः।।"[2]

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो कालिदास की रचनाओं में संगीत को पुष्ट करते है। परन्तु इसका सम्पूर्ण अध्ययन 'सीमा' के अन्दर असम्भव है। कालिदास–साहित्य में संगीत का अत्यधिक उल्लेख है जिसमें शास्त्रीय, लोक, नृत्य, नाट्यादि विभिन्न पहलुओं का स्पर्श किया गया है।

यहाँ इस तथ्य को अत्यधिक सम्पुष्ट करने के लिए महाकवि कालिदास कृत 'कुमारसंभवम्' के एक श्लोक की स्वरलिपि द्रष्टव्य है–

"उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः
सबाष्यकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।
अनेकशः किन्नरराजकन्यका
वनान्तसंगीतसखीररोदयत्।।"[3]

राग दरबारीकानड़ा–ताल मत्तताल[4]

कालिदास का पशु–पक्षी प्रेम सर्वविदित है। उनकी रचनाओं में पशु–पक्षियों के संगीत का जितना प्रचुर वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन उल्लेखों ने उनकी कृतियों को अत्यधिक रमणीय एवं मनोहर बनाने में सफलता प्रदान किया है। ऐसे कई उद्धरण हैं जो इन तथ्यों की पुष्टि करते हैं। स्वरोत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धान्तों के अनुसार संगीत के सात स्वरों–षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद की उत्पत्ति क्रमशः–मयूर, चातक, छाग, क्रौंच, पिक, दर्दुर एवं कुंजर द्वारा बताया गया है–

षड्जं वपति मयूरः पुनः स्वरमृषभं चातको ब्रूते।
गान्धाराख्यं छागो निगदति च
मध्यमं क्रौंचः।।
गदति पंचममंचितवाक्पिको
रटति धैवतमुन्मददर्दुरः।
श्रृणि समाहतमस्तककुंजरो गदति
नासिकया स्वरमन्तिकम्।।

उपरोक्त पक्षियों में से छाग तथा दर्दुर के अतिरिक्त पाँचों पशु-पक्षियों का संगीत कालिदास द्वारा उल्लिखित है। इनकी रचनाओं में जिन पशु– पक्षियों के संगीत का वर्णन मिलता है, वे है–"मयूर, भ्रमर, कोकिला, राजहंस, सारस, क्रौंच, चातक, शुक, सारिका, पारावत, कुंजर, अश्व, मृग तथा हरिणांगना"[5]

कोकिल संगीत का निपुण गायक होता है। बसन्त–ऋतु में उसका गायन अधिक मनोरम बन जाता है। इस श्लोक में सभी के लिए बसन्त सुखमय हो, ऐसी ही कामना है–

"मलयपवनविद्धः कोकिलालापरम्यः
सुरभिमधुनिषेकाल्लब्धगन्धप्रबन्धः।
विविधमधुपयूथैर्वेष्ट्यमानाः समन्ताद्भवतु तव
वसन्तश्रेष्ठकालः सुखाय।।"[6]

पशु–पक्षियों का संगीत सुनकर मानव प्रसन्न होता है। पशुओं में अश्वों को संगीत प्रिय है जिसका उल्लेख निम्नलिखित पद में किया गया है कि ऋषिगण सूर्यरथ के अश्वों को प्रिय लगने वाले सामगान द्वारा भगवान सूर्य की स्तुति कर रहे हैं–

"सामभिः सहचराः सहस्त्रशः
स्पन्दनाश्वहृदयंगमस्वनैः।
भानुमग्निपरिकीर्णतेजसं
संस्तुवन्ति किरणोष्मयायिनः।।"[7]

इस प्रकार, कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य में पशु–पक्षियों के संगीत की प्रचुरता है। सांगीतिक विभिन्न तत्त्वों–तथ्यों का उल्लेख कालिदास की कृतियों को रमणीय एवं मनोहारी बनाने में सहायक हैं। उन्हें संगीत से बहुत लगाव था और संगीत के अनेक रूप उनकी रचनाओं में उपलब्ध है जो प्रायः आनन्द की चरम परिणति को प्राप्त कराता है। ●

संपर्क : 09835296330

1. कौर, श्रीमती अमृत, कालिदास की कृतियों में सुषिर वाद्य, संगीत, सितम्बर 1985, पृ.–4
2. कुलश्रेष्ठ, डॉ. सुषमा, कालिदास–साहित्य एवं वादन–कला, पृ.–181
3. कुमारसंभवम्, 5/56
4. कुलश्रेष्ठ, प्रो. जगदीश सहाय एवं प्रो. सुषमा, संस्कृत–संगीत–रत्नशती, पृ. 237
5. कुलश्रेष्ठ, सुषमा, कालिदास साहित्य एवं पशु–पक्षी संगीत, पृ.–18
6. ऋतुसंहार–6/37
7. कुमारसंभवम्–8/41

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दैनंदिन संस्कृत संभाषण : कालिदास के आलोक में

डॉ. स्वरवन्दना शर्मा

देववाणी संस्कृत को सार्वभौम और सार्वकालिक प्रतिष्ठा दिलाने वाले कवियों में कालिदास का स्थान अन्यतम है। देववाणी संस्कृत सर्वजनोपयोगी लोकभाषा के रूप में प्रचलित थी अथवा नहीं थी–इन दोनों ही मान्यताओं के पक्ष–विपक्ष में विद्वानों के अपने–अपने तर्क हैं। यह सही है कि वर्तमान में वह प्रचलित लोकभाषा के रूप में नहीं जानी जाती किन्तु विद्वत्समाज में वह बोलचाल की भाषा है। संस्कृतज्ञों के कुछ परिवारों में वह घरेलू बातचीत की भाषा के रूप में अभी भी प्रयोग की जाती है और दक्षिण भारत के किसी स्थान में समस्त ग्रामवासी संस्कृत भाषा में ही अपने सारे काम करते हैं। ये तथ्य दैनंदिन जीवन यापन की स्वाभाविक गतिविधियों से संस्कृत के जुड़ाव के उदाहरण हैं। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में 'संस्कृतभारती' संस्था का प्रयास उल्लेखनीय है। इसी प्रकार वाराणसी स्थित सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थान का कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में प्रतिदिन के व्यावहारिक संभाषण में कालिदास की कृतियाँ किस प्रकार हमारा पथ आलोकित करती हैं, इसका कुछ संकेत इस लेख के माध्यम से करना चाहती हूँ। विशेषतः कालिदास के नाटकों के आधार पर, क्योंकि नाटक में वाचिक अभिनय की प्रधानता होती है। वाचिक अभिनय में प्रधानता संवादों की ही है और संभाषण के लिये इन संवादों का आधार मिलने पर उसका स्वरूप अत्यन्त सरस, सहज, ललित और प्रवाहपूर्ण हो जाता है।

किसी व्यक्ति से सर्वप्रथम भेंट के अवसर पर अभिवादन अथवा स्वागत के लिये निम्न वाक्यों का प्रयोग अत्यन्त उपयुक्त है–

'भगवन् ! अभिवादये' अथवा 'भगवन्! प्रणमामि' अथवा 'तात ! वन्दे' अथवा 'आर्य! वन्दे' अथवा 'भगवति ! पादवन्दनं करोमि' अथवा 'अम्ब ! अभिवादये' अथवा 'स्वागतम् आर्यस्य' अथवा 'स्वागतं देव्यै' अथवा 'स्वागतं प्रियसुहृदे' अथवा 'स्वागतं प्रियसख्योः'। (विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम्)

अभिवादन के उत्तर में आशीर्वादात्मक विविध वाक्यों के उदाहरण इस प्रकार है–

'स्वस्ति भवते', 'वर्धतां भवान्', 'वत्स ! आयुष्मान् भव', 'कुलधुरन्धरो भव', 'पितरम् आराधयिता भव', 'वत्से ! भर्तुर्बहुमता भव', 'वीरप्रसविनी भव', 'अविरहितौ दम्पती भूयास्ताम्'। इन वाक्यों को यथावसर सामान्य कार्यकलाप अथवा जन्मदिन या विशेष उपलब्धि के समय, विवाह के समय नववधू को, आसन्नप्रसवा स्त्री को अथवा वरवधू को मंगलकामना के रूप में कहने से देववाणी में दिये गये आशीर्वाद का स्वरूप अत्यन्त विशेष बन जाएगा।

स्वागत के प्रसंग में 'मेघदूतम्' का स्मरण हो आना अत्यन्त स्वाभाविक है। रामगिरि पर अकेला खड़ा अभिशप्त यक्ष पर्वत शिखर पर उमड़े–घुमड़ते बादलों को देख आशा और उल्लास के साथ उनका स्वागत करता है, क्योंकि उन्हीं के माध्यम से अपनी प्रिया को सान्त्वना और सन्देश भेजना है। कालिदास ने लिखा है–

'प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।'

यह ऐसा अद्भुत पद्यांश है जिसके आधार पर लिंग, वचन और लकार (काल) में यथोचित परिवर्तन करते हुए पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग तथा एकवचन, द्विवचन अथवा बहुवचन के उत्तम पुरुष प्रयोग के अनेक वाक्य बन जाते हैं और कालिदास की शब्दावली वक्ता की बनकर फूट पड़ती है। यथा–

प्रीतः	प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याहरामि।	(पुल्लिंग, एकवचन, लट्लकार)
प्रीता	प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याहरामि।	(स्त्रीलिंग, एकवचन, लट्लकार)
प्रीतौ/प्रीते	प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याहराव।	(पुल्लिंग/स्त्रीलिंग द्विवचन, लट्लकार)
प्रीताः/प्रीताः	प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याहराम।	(पुल्लिंग/स्त्रीलिंग, बहुवचन, लट्लकार)

'शाकुन्तलम्' में सूत्रधार–नटी संवाद के छोटे–छोटे वाक्यों के आधार पर अनेक नये वाक्य बन सकते हैं और दैनिक कार्यों में सहायक हो सकते हैं।

सूत्रधार–आर्ये ! यदि नेपथ्यविधानम् अवसितं तद् इह आगम्यताम्।

नटी– आर्य ! इयमस्मि। आज्ञापयतु आर्यः को नियोगः अनुष्ठीयताम् इति।

सूत्रधार के वाक्य पर आधारित निम्न वाक्यों को देखिये–

आर्ये/भद्रे/प्रिये/भवति ! यदि कार्यम् अवसितं/यदि भोजनं कृतं/यदि स्नानं विहितं/यदि पाठः पठितः तद् इह आगम्यताम्।

इनके उत्तर में 'आर्य/भद्र/प्रिय/महाभाग!' आदि यथोचित सम्बोधन के साथ नटी का उपर्युक्त वाक्य तथा एक और वाक्य 'अनन्तरकरणीयम् इदानीम् आज्ञापयतु आर्यः' बहुत सार्थक बैठ जाता है।

'विक्रमोर्वशीयम्' सूत्रधार द्वारा कहा गया 'मारिष! इतस्तावत्' किसी को पास बुलाने का सुन्दर प्रयोग है। यथा– वत्स/ वत्से/ वयस्य/ प्रिये ! इतस्तावत्।

इसी प्रकार चलते समय रास्ता दिखाने के लिये 'इत इतो भवान्', 'इत इतो भवती', किसी के साथ चलते हुए रास्ता पूछना हो तो 'गच्छ अग्रतः' अथवा 'मार्गम् आदेशयतु', कहाँ जा रही हो अथवा कहाँ जा रहे हो पूछने के लिये 'कुत्र प्रस्थितासि' अथवा 'कुत्र प्रस्थितोऽसि' या 'क्व इदानीं गम्यते' बिल्कुल कथोपकथन के लायक प्रयोग हैं। इसी प्रकार 'क्या तुमने देखा ?' क्या तुमने सुना ये प्रश्न और इन प्रश्नों के उत्तर 'जो देखना था, वह देख लिया, जो सुनना था, सो सुन लिया' को संस्कृत संवादों में देखिये–'सखि! दृष्टं त्वया ? अपि श्रुतं त्वया ?'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तर है–'दृष्टं यद् द्रष्टव्यम्, श्रुतं यत् श्रोतव्यम्'।

'शाकुन्तलम्' में दुष्यन्त और सखियों का संवाद है–

दुष्यन्त–अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः?

अनसूया–प्रियंवदा–इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलाम् अतिथिसत्काराय नियुज्य सोमतीर्थं गतः।

आज भी किसी विश्वविद्यालय में कुलपति से मिलना हो तो कालिदास की शब्दावली से अधिक उपयुक्त वाक्य रचना क्या होगी? इसके उत्तर में बहुत सारी स्थितियों की कल्पना की जा सकती है। एक–दो उदाहरण इस प्रकार के हो सकते हैं–

इदानीमेव कुलसचिवं कार्यसम्पादनाय नियुज्य राजधानीं गतः/विदेशं गतः।

इदानीमेव समितिं परिसमाप्य स्वगृहं गतः।

इसी आधार पर यह भी–

अपि सन्निहितात्र आचार्या/विभागाध्यक्षा? इदानीमेव अस्मान् अध्याप्य पुस्तकालयं गता।

शादी–विवाह का प्रसंग वधू की साजसज्जा का होता है। चाहे राजमहल की राजकन्या हो या कण्व के आश्रम की शकुन्तला। श्रृंगार, अलंकार और रेशमी वस्त्र तो आज भले ही ब्यूटी पार्लर की बाढ़ आ गई है, पर कुछ साल पहले तक सखियाँ ही वधू को सजाती थीं। शकुन्तला को पतिगृह भेजने से पूर्व प्रियंवदा और अनसूया कहतीं हैं–ज़रा सीधे बैठो, जब तक हम दोनों तुम्हारा मंगल श्रृंगार कर रही हैं। ऋषि कुमार वृक्ष लताओं से गहने ला कर देते हैं। पूरे श्रृंगार के उपरान्त पवित्र क्षौमवस्त्र पहनने की बारी है और शकुन्तला की वेदना सखियों द्वारा यह साज–श्रृंगार अब मेरे लिये दुर्लभ हो जाएगा–

सखी–हला ! ऋजुका भव, यावत् ते मंगलसमालंभनं कुर्वः।

ऋषिकुमार–इदम् अलङ्करणम्। अलङ्क्रियताम् अत्रभवती।

सखी–हला ! अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व साम्प्रतम् इदानीं पवित्रं क्षौमयुगलम्।

शकुन्तला–दुर्लभमिदानीं में सखीमण्डनं भविष्यति।

बड़े सहज, सरल अवसरोचित ये कथोपकथन हैं, आज भी सखी–सहेलियों में यही वार्तालाप होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत नाटकों के संवादों पर आधारित संस्कृत–संभाषण संस्कृत के अपने भाषागत वैशिष्ट्य के साथ–साथ सहज–सरल रूप में भाव संप्रेषित कर सकता है।

विदा देने और विदा लेने की भारतीय परम्परा के अनुरूप भिन्न–भिन्न पात्रों और अवसरों के ये वाक्यांश बहुत भाव भरे हैं–

अकातरा भूत्वा विसर्जय माम्।
मा खलु मां विस्मर।
गम्यतां पुनर्दर्शनाय।
स्मर्तव्यस्तु अयं जनः।

इन थोड़े से उदाहरणों के द्वारा प्रेरित होकर अन्य अनेक संवादों को निकालकर कालिदास की शब्दावली से अपने कथोपकथन को समृद्ध करने की इच्छा संस्कृत के विद्यार्थियों, संस्कृतानुरागियों संस्कृत सेवियों में बलवती हो उठेगी, ऐसा पूर्ण विश्वास है।●

देववाणी संस्कृत को सार्वभौम और सार्वकालिक प्रतिष्ठा दिलाने वाले कवियों में कालिदास का स्थान अन्यतम है। देववाणी संस्कृत सर्वजनोपयोगी लोकभाषा के रूप में प्रचलित थी अथवा नहीं थी–इन दोनों ही मान्यताओं के पक्ष–विपक्ष में विद्वानों के अपने–अपने तर्क हैं। यह सही है कि वर्तमान में वह प्रचलित लोकभाषा के रूप में नहीं जानी जाती किन्तु विद्वत्समाज में वह बोलचाल की भाषा है, संस्कृतज्ञों के कुछ परिवारों में वह घरेलू बातचीत की भाषा के रूप में अभी भी प्रयोग की जाती है और दक्षिण भारत के किसी स्थान में समस्त ग्रामवासी संस्कृत भाषा में ही अपने सारे काम करते हैं। ये तथ्य दैनंदिन जीवनयापन की स्वाभाविक गतिविधियों से संस्कृत के जुड़ाव के उदाहरण हैं। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में 'संस्कृतभारती' संस्था का प्रयास उल्लेखनीय है, इसी प्रकार वाराणसी स्थित सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थान का कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वर्तमान समय में प्रतिदिन के व्यावहारिक संभाषण में कालिदास की कृतियाँ किस प्रकार हमारा पथ आलोकित करती हैं, इसका कुछ संकेत इस लेख के माध्यम से करना चाहती हूँ। विशेषतः कालिदास के नाटकों के आधार पर, क्योंकि नाटक में वाचिक अभिनय की प्रधानता होती है।

संपर्क : रीडर–संगीत (गायन) वसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिदास प्रसंग (प्रथम) प्रतिक्रिया

'कलावसुधा' के कालिदास

कला शब्द प्राचीन काल से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शब्दकोष में 'कला' शब्द के अनेक अर्थ किये गये हैं कला शब्द का सामान्य सा अर्थ है वह प्रक्रिया या माध्यम, जिससे सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती हो और जीवन सुचारु रूप से चलता रहे। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ मन तथा आँखों को कितना सुख देती हैं, कौन कह सकता है। उधर शैवतंत्र में उल्लिखित चौसठ कलाएँ स्वस्थ एवं सुभूषित जीवन जीने के तरीके का सुन्दर विवेचन करती हैं। शायद ही जीवन का कोई अंग हो, जहाँ कला की आवश्यकता न पड़े। 'कला' के अन्तर्गत चित्रकला की गणना होती ही है। 'वसुधा' पृथ्वी को कहते हैं। क्योंकि यह 'वसु' को धारण करती है। वसु का अर्थ धन तो होता ही है, साथ में इसके अनेक मार्ग होते हैं–जो सब में निवास करता हो, जिसमें सबका निवास हो, शिव, कुबेर देवताओं का एक गण जिससे आठ देवता हैं आदि–आदि।

कुल मिलाकर 'कला–वसुधा' का आशय है–कला की वसुधा, सौन्दर्य का आधार सुजीवन का आधार। कालिदास के विषय में जितना भी कहा जायेगा कम ही रहेगा। महामति मल्लिनाथ ने ठीक ही कहा था कि कालिदास के शब्दार्थ को तीन ही लोग सटीक जानते हैं–एक तो कालिदास, दूसरे सरस्वती, तीसरे ब्रह्मा और मुझ जैसे लोग तो कदापि नहीं। मल्लिनाथ के पाण्डित्य के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि वे 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र महाप्राज्ञ थे। एक पाठक से नहीं रहा गया। उसने कहा कि जो स्थान पुष्पों में चम्पा का, नगरियों में कांची का, नदियों में गंगा का, नरश्रेष्ठों में राम का, नारियों में रम्भा का, पुरुषों (महा/दैवी) में विष्णु का, काव्य में माघ के शिशुपालवध का है, वही स्थान कवियों में कालिदास का है।

कालिदास के एक प्रशंसक और आगे बढ़ गये। उन्होंने कहा कि किसी वस्तु की प्रथम गणना कनिष्ठका अंगुली से प्रारम्भ होती है। जब कवियों की गणना हुई तब प्रथम नाम कनिष्ठका पर कालिदास का आया। उनके टक्कर का कोई दूसरा कवि मिला ही नहीं, जिसे अनामिका पर गणना करते समय रखा जा सके। अतएव अनामिका नाम सार्थक है। अनामिका, कनिष्ठिका के बाद की दूसरी ऊँगली है। जिस पर क्रमांक दो की गणना होती है। ऐसे में 'कला–वसुधा' के कालिदास का समाकलन कर पाना सामान्य श्रम एवं मेधा की बात नहीं है। 'कला–वसुधा' (जुलाई सितम्बर २०१७) का कालिदास प्रसंग (प्रथम) अंक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सम्पादक और लेखकों के अथक सारस्वत श्रम की जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम ही रहेगा।

कालिदास साहित्य सागर को 'कला–वसुधा' के गागर में समेटने का जो कला कौशल पूर्ण कार्य किया गया है, वह चिरस्थायी तथा मील का पत्थर है। कालिदास पर अगणित ग्रन्थ लिखे गये हैं, लिखे जा रहे हैं, लिखे भी जाते रहेंगे, पर क्या कालिदास की 'कला' का सम्पूर्ण मूल्यांकन ये सारे ग्रंथ कर पायेंगे, कहना कठिन है। फिर भी, आगत का स्वागत।

विदुषी नलिनी मिश्र द्वारा प्रस्तुत कला वसुधा के प्रकृत अंक में मनीषी पं. कमलापति मिश्र ने 'संस्कृत के अमरकवि कालिदास' नामक लेख में विजय की सारगर्भित तथा यथातथ्य परक विराट् विवेचना की है। उनका यह कथन भारत ही नहीं, विश्व के साहित्य में कालिदास की समानता का शायद ही कोई दूसरा रचनाकार हो। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्हें–साहित्य में असाधारण स्थान प्रदान करती है। उनकी कृतियों का वर्ण–वर्ण अमर अनुभूति का शब्दान्तर है। उस कथन में 'सर्वतोमुखी प्रतिभा' शब्द का प्रयोग वही विलक्षण विद्वान् कह सकता है, जिसे स्मृति–मति–मेधा–प्रतिभा आदि का समुचित संज्ञान हो तथा कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा के मर्म को समझता हो और सबसे अधिक चमत्कारी यह कथन है–'उनके सर्वांग सुन्दर ग्रन्थों में से किस स्थल का उदाहरण दिया जाय और किस स्थल का न दिया जाय, यह निर्णय करना ही कठिन है। अधिकारिक रूप से इस वाक्य का वही प्रयोग करेगा, जिसने कालिदास–वाङ्मय को विभिन्न टीकाकारों की समालोचनाओं के साथ स्वयं के विवेक का यथोचित प्रयोग किया हो। यह वाक्य कालिदास की सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचायक तो है ही साथ ही लेखक पं. कमला प्रसाद मिश्र के अगाध अमेय तलस्पर्शी अध्ययन/अध्याय चिन्तन एवं मनन का सुप्रमाण है।

उज्जैन के कालिदास जयन्ती समारोह का चित्र जो प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि से सुभूषित है, बहुत अच्छा लगा। स्वतन्त्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति, भारत के राष्ट्र कवि कालिदास की जयन्ती विषयक कार्यक्रम में सम्मिलित भारत का तथा कालिदास–साहित्य का सम्मान है। इस पत्रिका का सम्पाकीय कालिदास का सामाजिक दर्पण है, जिसमें कालिदास साहित्य का नीर–क्षीर विवेचन प्रतिभाषित ही नहीं, परिलक्षित भी हो रहा है। कालिदास के संगीत विषयक निपुणता की प्रामाणिक एवं तल स्पर्शी मीमांसा पाठकों को सुप्रभावित करने में सर्वथा समर्थ है।

यह कथन उद्धरणीय है–'कालिदास के कृतित्व में सभी कुछ ललित है, मधुर है स्निग्ध है, मनोरम है, सटीक है, भावमय है, अद्वितीय है, लावण्यमय है और किसी को आह्लादित करने में सक्षम हैं।" इस वाक्य के आधार पर कालिदास के साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विशालकाय ग्रन्थ लिखा सकता है। कला पारंगता उषा बनर्जी का सम्पादकीय 'कहना–सुनना' निश्चित ही कालिदास–साहित्य का प्रामाणिक दस्तावेज है।

साहित्य–मर्मज्ञ एवं ललित लेखक अरविन्द मिश्र ने 'कालिदास की कीर्ति अक्षय है' नामक लेख में गहन एवं विस्तृत अध्ययन के आधार पर प्रमाणित कर दिया है कि कालिदास कालजयी विश्व कवि हैं। मिश्र जी ने देश–विदेश के अनेक नये–पुराने मनीषियों के विचारों के आलोक में प्रमाणित कर दिया है कि कालिदास भारत की सांस्कृतिक पहचान है। आपने अलबरूनी, अरविन्द घोष, मैकडॉनल, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र कुमार, बलदेव उपाध्याय, सीताराम चतुर्वेदी आदि अनेक विद्वानों के कालिदास विषयक विचार प्रस्तुत किये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस संदर्भ में 209 विद्वानों के विचार कालिदास, 49 कालिदास के स्थिति काल 87 के मेघदूतम् तथा 119 के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' पर हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रकरण को तैयार करने में मिश्र जी ने कितना परिश्रम किया होगा? इस संदर्भ में मिश्र जी ने भारत सरकार के दो डाक टिकटों की छायाप्रति भी उपलब्ध कराई है, जिनमें से एक का संबंध 'मेघदूत' से तथा दूसरे का 'शाकुन्तलम्' से है। इससे लेख की गंभीरता और बढ़ गयी है।

कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में कहा कि जब तक विद्वान् किसी कला/रचना/प्रस्तुति को उत्तम न कह दें, उसे उत्तम नहीं कहा जाना चाहिए (सूत्रधार प्रथम अंक) इस लेख निकष पर तो यह लेख शत–प्रतिशत खरा उतरता है। इस लेख के विषय में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–'प्रियवर, कालिदास पर आपने थोड़े में बहुत अच्छा लेख लिखा है। 5–11,–59 : चिरगाँव' इस पत्र की छायाप्रति भी पत्रिका में प्रकाशित है। इस अमूल्य सारस्वत धरोहर को पाठकों तक पहुँचाने के लिए पं. अरविन्द मिश्र के प्रति कालिदास प्रेमी सदैव आभारी रहेंगे।

पत्रिका के अन्य लेखों में भी कालिदास विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, जो शोधार्थियों, विद्वानों तथा पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। डॉ. कमला पाण्डेय ने कविता कामिनी के हास 'भास' तथा विलास 'कालिदास' की गवेषणापूर्ण विवेचना कर मौलिक चिन्तन के क्षेत्र में नवीन अध्याय का अनावरण किया है। डॉ. नन्दिनी वर्मा ने 'कालिदास की ऐतिहासिक' पृष्ठभूमि की नीरक्षीर विवेचना कर यह मन्तव्य स्थापित किया–'कालिदास को गुप्त काल में अविभूर्त मानना ही तर्क संगत है'। आद्याचरण झा (हिन्दी अनुवाद डॉ. उषा बनर्जी का लेख) 'कालिदास का जन्म स्थान' मिथिला की संस्कृति का कालिदास के साहित्य पर प्रभाव' विषय को प्रामाणिकता से प्रस्तुत करता है।

भारतीय विशेषतः मैथिल संस्कृति की स्पष्ट छाया कालिदास साहित्य पर है। लेखक द्वारा सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है। उनका कालिदास संस्कृति विषयक ज्ञान प्रशंसनीय है। व्यौहार राजेन्द्र सिंह का आलेख कालिदास तथा तुलसी दास के राजनीतिक विचार तुलनात्मक साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जनार्दन भट्ट का आलेख कालिदास की नीति शिक्षा स्वर्ण विहग और विश्व गुरु भारत का प्रत्यक्ष प्रमाण है। डॉ. भगवत शरण उपाध्याय के आलेख 'कालिदास और ललित कलाएँ' ने इस पत्रिका का गौरव वैसे ही बढ़ाया, जैसा मणि कंचन संयोग होने पर होता है या सोने में सुगंध पैदा हो जाये, यह होता है।

प्रो. रमेश तिवारी का लेख 'प्रकृति के प्रांगण में जीवन का उद्‌गीथ' सुललित एवं सुविचारित लेख है, जिसमें कालिदास के प्रकृतिगत लालित्य की सोची समझी महायोजना का समास है। अर्चना अग्रवाल का लेख कालिदास का सांस्कृतिक परिवेश आज के भारत को सुपथ का प्रदर्शन करने में सर्वथा सक्षम है। जर्नादन दास के लेख 'कालिदास की कृतियों में राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना' में भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने के अनेक सूत्र एवं स्रोत उपलब्ध हैं।

वीना सिंह का लेख 'कालिदास का नाट्यजगत् और नाट्यशास्त्र परम्परा', डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय का लेख 'कालिदास वाङ्मय में संगीत तत्त्व' अपने विशिष्ट शीर्षकों पर लिखे गये सुविचारित मौलिक आलेख हैं जो लेखिका/लेखक की विद्वत्ता के सुपरिचायक तथा कालिदास की बहुज्ञता के प्रत्यक्ष प्रमाण है। डॉ. आर.के. वर्मा ने भारतीय सिनेमा के धुंधले पृष्ठों को उजागर किया है, जिनमें कालिदास पर चलचित्र बनाये गये थे। डॉ. विधि नागर का आलेख 'कालिदास कृत साहित्य में नायिकाः संदर्भ अभिज्ञान शाकुन्तल' नारी के विभिन्न प्रकार का सोदाहरण उपस्थापक है। साहित्य शास्त्र की दृष्टि में नारी (शकुन्तला) का मनोरम निदर्शन है।

इस पत्रिका के रेखा–चित्र अत्यन्त मनोरम तथा प्रभावी हैं। प्रायः प्रतिपृष्ठ पर कालिदास के चित्र की पृष्ठभूमि विस्मयादिबोधक आनन्ददायक है। कुल मिलाकर कालिदास विषयक साहित्य–संगीत और कला पर केन्द्रित 'कला–वसुधा' का यह अंक कलाधर की भाँति शांति प्रदायक और वसुधा की तरह लोकोपकारी है। विश्वास है कि कालिदास के विषय में और भी महत्वपूर्ण जानकारियाँ अगले अंक में मिलेगी।●

डा. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'

संपर्क : पटेलनगर कादीपुर
सुलतानपुर–228145
मो. : 9532006900

अनूठा रंग–ढंग

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका 'कला–वसुधा' (जुलाई–सितम्बर 2017) ने कालिदास–प्रसंग (प्रथम) के माध्यम से महाकवि कालिदास के जीवन, साहित्य, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक विचार, नीति–शिक्षा, ललित–कलाएँ, सांस्कृतिक परिवेश, राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना, नाट्यशास्त्र–परंपरा, संगीत–तत्व प्रकृति–चित्रण आदि से परिचित कराते हुए कालिदास की अक्षय कीर्ति–पताका को फहराया है। यह अंक महाकवि कालिदास के जीवन और साहित्य के अनछुए प्रसंगों को पाठकों तक पहुँचाने में पूर्णतया सफल हैं। इससे जन–सामान्य में महाकवि कालिदास की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है। आज जबकि भारतीय संस्कृति को तरह–तरह से आघात पहुँचाया जा रहा है, ऐसे में 'कला–वसुधा' का यह अंक बड़ा ही जनहितकारी कहा जायेगा। इस अंक में प्रकाशित समस्त लेख भाषा और शैली दृष्टि से स्तरीय हैं। इनके लेखक भी काफी ख्याति–प्राप्त हैं, जिनकी लेखनी महाकवि कालिदास पर अपने विचार व्यक्त कर धन्य हो गई है। अनेक ऐसे विश्व–प्रसिद्ध विद्वानों ने भी महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है, जो अब स्मृतिशेष हैं। विविध क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों के कालिदास विषयक अमर विचार हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार और सूचना एवं जन–सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के सेवा–निवृत्त सहायक निदेशक पंडित अरविन्द मिश्र के 'कालिदास की कीर्ति अक्षय है'–शीर्षक लेख में संकलित हैं। यह लेख प्रत्येक दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट है, यह प्रमाणित संदर्भ ग्रंथ बनाने में पूरी तरह सक्षम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, इससे पठनीयता को गति मिली है और इसके लेखन–संकलन में चार चाँद लगने के दर्शन होते हैं। महाकवि कालिदास के संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व को निखारने वाले पंडित अरविन्द मिश्र के इस गरिमामंडित शोधपूर्ण लेख की जितनी सराहना की जाय, कम है।

'कला–वसुधा' के कालिदास–प्रसंग (प्रथम) की सम्पादक डॉ. उषा बनर्जी के अग्रलेख 'कहना–सुनना' और संस्कृत–हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार, स्वतंत्रता–सेनानी और आकाशवाणी, लखनऊ के प्रोड्यूसर स्वर्गीय पंडित कमलापति मिश्र के लेख 'संस्कृत के अमर कवि–कालिदास' में महाकवि कालिदास बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी के रूप में लिपिबद्ध किये गये हैं। इसके अतिरिक्त उज्जैन के कालिदास–जयन्ती–समारोह विषयक प्रकाशित चित्र एक अमूल्य निधि है, जिसमें स्वतंत्र–भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ इस लेख के लेखक पंडित कमलापति मिश्र भी हैं। ज्ञातव्य है, पंडित कमलापति मिश्र के लेख और उज्जैन कालिदास–जयन्ती–समारोह विषयक चित्र की प्रस्तुति नलिनी मिश्र की है, जो साहित्य, कला, शिक्षा और संगीत–सेविका के रूप में चर्चित हैं।

'कला–वसुधा' के कालिदास–प्रसंग (प्रथम) में दिखा है–अनूठा रंग–ढंग। कालिदास–प्रसंग (प्रथम) एक प्रेरणादायक, ज्ञानवर्द्धक, सार्थक और जिज्ञासुओं के लिए अति महत्वपूर्ण संग्रहणीय अंक है। इसके साहसिक प्रकाशन के लिए 'कला–वसुधा'–परिवार को कोटिशः शुभ कामनाएँ।●

शरद पांडेय 'शशांक'

संपर्क : कार्यकारी सम्पादक,
'महिला संरक्षण'–हिन्दी–साप्ताहिक,
20, कवि कुमुदेश–भवन,नालबंदी टोला,
ड्योढ़ी आगामीर, लखनऊ–226003

सुरक्षणीय अंक

कला वसुधा का जुलाई–सितम्बर २०१७ अंक बहुत अच्छा लगा। महाकवि कालिदास पर उपयोगी सामग्री आपने सँजोयी है, जिससे यह अंक सुरक्षणीय हो गया है। आपके प्रति हार्दिक साधुवाद!

"कालिदास की कीर्ति अक्षय है" में लेख में श्री अरविन्द मिश्रा ने श्रमपूर्वक कई विद्वानों की टिप्पणियाँ संचित कर ली हैं, विशेषतः कालिदास के महत्व, मेघदूत, आभिज्ञान शाकुन्तलम और उनके स्थितिकाल को लेकर। प्रायः सबने उन्हें विक्रमादित्य का समकालीन (छठीं शती का माना है) इससे स्थितिकाल, जन्म/वर्ष स्थल का विवाद समाप्त हो सकता है, वशर्ते इसे सम्बर्द्धित करके पुस्तकाकार छपवा दें।

इस प्रयास का ऐतिहासिक महत्व होगा।

डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
संपर्क : साहित्यिकी
डी–54, निरालानगर, लखनऊ

कला वसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035
ISSN-2348-3660

आगामी अंक
हिन्दी सिनेमा के अप्रतिम शिल्पी
बलराज साहनी
पर केन्द्रित
रचनायें आमंत्रित हैं।

आप अपनी रचनायें कुर्तीदेव १० फाण्ट पर टाइप कराकर ई–मेल : kalavasudha01@gmail.com पर भेज कर अपना रचनात्मक एवं सृजनात्मक भावना को गौरव प्रदान करने का कष्ट करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलावसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक

लखनऊ

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035
ISSN-2348-3660

ग्राहक/सदस्यता संबंधी प्रारूप

मैं कला वसुधा (त्रैमासिक) पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करना चाहता हूँ (लखनऊ से बाहर के सदस्य 25 रु0 अतिरिक्त भेजें)

वार्षिक	रु.	200/–
द्विवार्षिक	रु.	400/–
त्रैमासिक	रु.	600/–.
आजीवान सदस्य	रु.	3000/–

(कृपया सदस्यता अवधि चिन्हित करें)

डी.डी./म.आ.नं. : ..... तिथि : .....

नाम : .....

ग्राहक का विवरण : छात्र ☐ विद्वत्जन ☐ संस्था ☐ अन्य ☐

पत्र व्यवहार का पता : .....

.....

ईमेल : ..... दूरभाष/मोबाईल.....

पिन कोड नं0 ☐☐☐☐☐☐

सदस्य के हस्ताक्षर

नोटः–कृपया बैंक ड्राफ्ट/धनादेश 'कला वसुधा' 'सांझी–प्रिया', बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग लखनऊ – 226 029

कृपया प्रारूप की फोटो कापी करवा कर सदस्यता प्राप्त कर सकते हैं।

विज्ञापनदाताओं से अनुरोध

'कला वसुधा' में उदारता से विज्ञापन सहयोग देकर अपनी रचनात्मक और सृजनात्मक भावना को गौरव प्रदान करें। आपके अप्रतिम योग से ही हम वृहद् पाठक वर्ग तक पहुँचने में सफल होंगे। आपकी साझेदारी से हमें इस रचनात्मक अनुष्ठान में बल मिलेगा।

विज्ञापन दरें –

आवरण पृष्ठ रंगीन 4	: 50,000/–	सामान्य पृष्ठ	: 10,000/–
आवरण पृष्ठ रंगीन 2, 3 प्रति	: 40,000/–	आधा पृष्ठ	: 5,000/
सामान्य पृष्ठ रंगीन	: 30,000/–	चौथाई पृष्ठ	: 2,500/–

आपके सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

विज्ञापन राशि युनियन बैंक ऑफ इण्डिया यू०पी० स्टेट एग्रो इन्डस्ट्रियल कारपोरेशन विधान सभा मार्ग लखनऊ–226001 शाखा के कला वसुधा (Kala Vasudha) A/c No. 586502010002889 में जमा कर सकते हैं। बैंक शाखा का IFC/NEFT/RTGS का कोड UBIN-0558656

आप चेक/ड्राफ्ट द्वारा भी भेज सकते हैं। आपके सहयोग के लिए आभारी रहेंगे।

संपर्क : कला वसुधा 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – 226 029

दूरभाष : 0522–2440435 ई–मेल : kalavasudha01@gmail.com मो0 : 8852557608, 9889835202

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबका साथ-सबका विकास

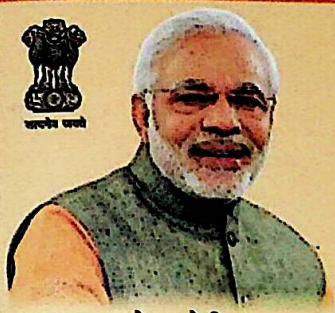

नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

धान खरीद

2017-18

25 सितम्बर, 2017 से शुभारम्भ

योगी आदित्यनाथ
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

किसान भाईयों के लिये खुशखबरी

पंजीयन करायें, समर्थन मूल्य का लाभ उठायें

- किसान बन्धुओं से सीधी की जा रही है धान खरीद।
- धान खरीद के लिए ऑनलाइन होगा किसान भाईयों का पंजीयन।
- किसी भी जन सुविधा केन्द्र या साईबर कैफे से करा सकते हैं पंजीयन।
- विभाग के पोर्टल **fcs.up.nic.in** से होगा पंजीयन।
- बिचौलियों से बचने के लिए अवश्य करायें पंजीयन।
- धान विक्रय के समय पंजीयन प्रपत्र के साथ जोत बही/खतौनी, फोटोयुक्त पहचान पत्र, बैंक के पासबुक के प्रथम पृष्ठ की छायाप्रति एवं यथासंभव आधार कार्ड साथ लायें।
- रु. 1550 प्रति कुंतल (कामन) एवं रु. 1590 प्रति कुंतल (ग्रेड ए) मिलेगा समर्थन मूल्य।
- समर्थन मूल्य के अतिरिक्त किसानों को उतराई, छनाई/सफाई के लिए रु. 15/ प्रति कुंतल की दर से सरकार करेगी ऑनलाइन भुगतान।

धान क्रय की अवधि	
	• पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं बुन्देलखण्ड में दिनांक 25.09.2017 से 31.01.2018 तक।
	• पूर्वी उत्तर प्रदेश में दिनांक 01.11.2017 से 28.02.2018 तक।

पंजीयन प्रारम्भ

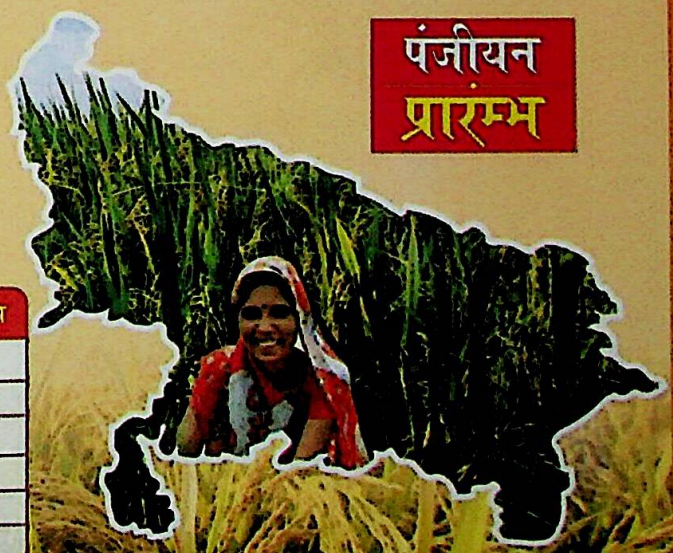

धान की विशिष्टियाँ		अधिकतम सीमा
1. विजातीय तत्व	(क) अकार्बनिक	1.00%
	(ख) कार्बनिक	1.00%
2. क्षतिग्रस्त, बदरंग, अंकुरित और घुने हुए दाने		5.00%
3. अपरिपक्व, संकुचित और सिकुड़े हुए दाने		3.00%
4. निम्न वर्गों का अधिमिश्रण (ग्रेड 'ए' हेतु)		6.00%
5. नमी		17.00%

किसी भी सहायता के लिए टोल फ्री नम्बर

1800-1800-150

या सम्बन्धित जनपद के जिला खाद्य विपणन अधिकारी, तहसील के क्षेत्रीय विपणन अधिकारी या ब्लॉक के विपणन निरीक्षक से सम्पर्क कर सकते हैं।

खाद्य एवं रसद विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

Omni Media Ad 26 x 33 Final Approved by Department

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Z Axis Exhibition Design Pvt. Ltd.

An ISO 9001:2000 Company

सोच नई
कीमत वही
सौर ऊर्जा सहित घर बनवायें
भारी बिलो से छुटकारा पायें

घर बनवाते समय योजनाबद्ध तरीके से खिड़कियां बाथरूम आदि लगवाये जाय तो सौर ऊर्जा से आपका घर जगमगायेगा।

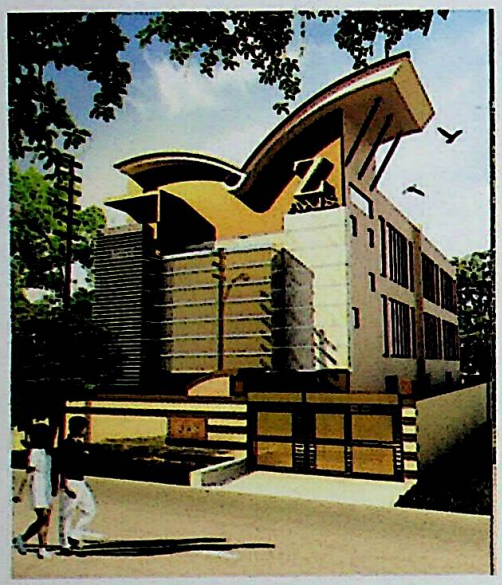

Z-AXIS OFFICE BUILDING, NOIDA

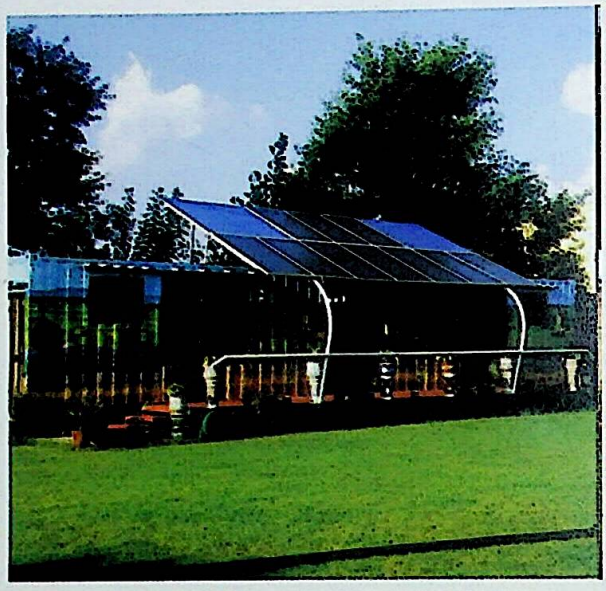

SOLAR POWER CONTAINER HOUSE

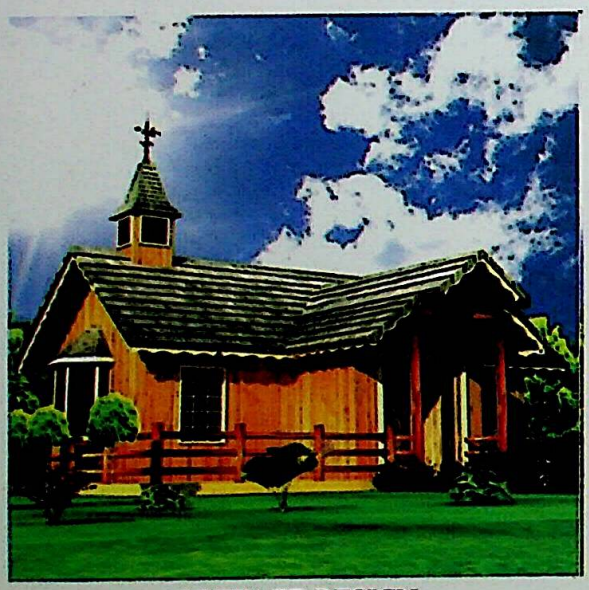

COTTAGE DESIGN

OFFICE BUILDING, COCHIN

Contact Us:
www.z-axis.co.uk
P +44 208 0904451(London), P +91 11 41402258 (Delhi), M +91 9312222762

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035 अक्टूबर–दिसम्बर 2017 ISSN-2348-3660

janahitha
PUBLICITIES PVT LTD
ADVERTISING & IEC PROGRAMMES

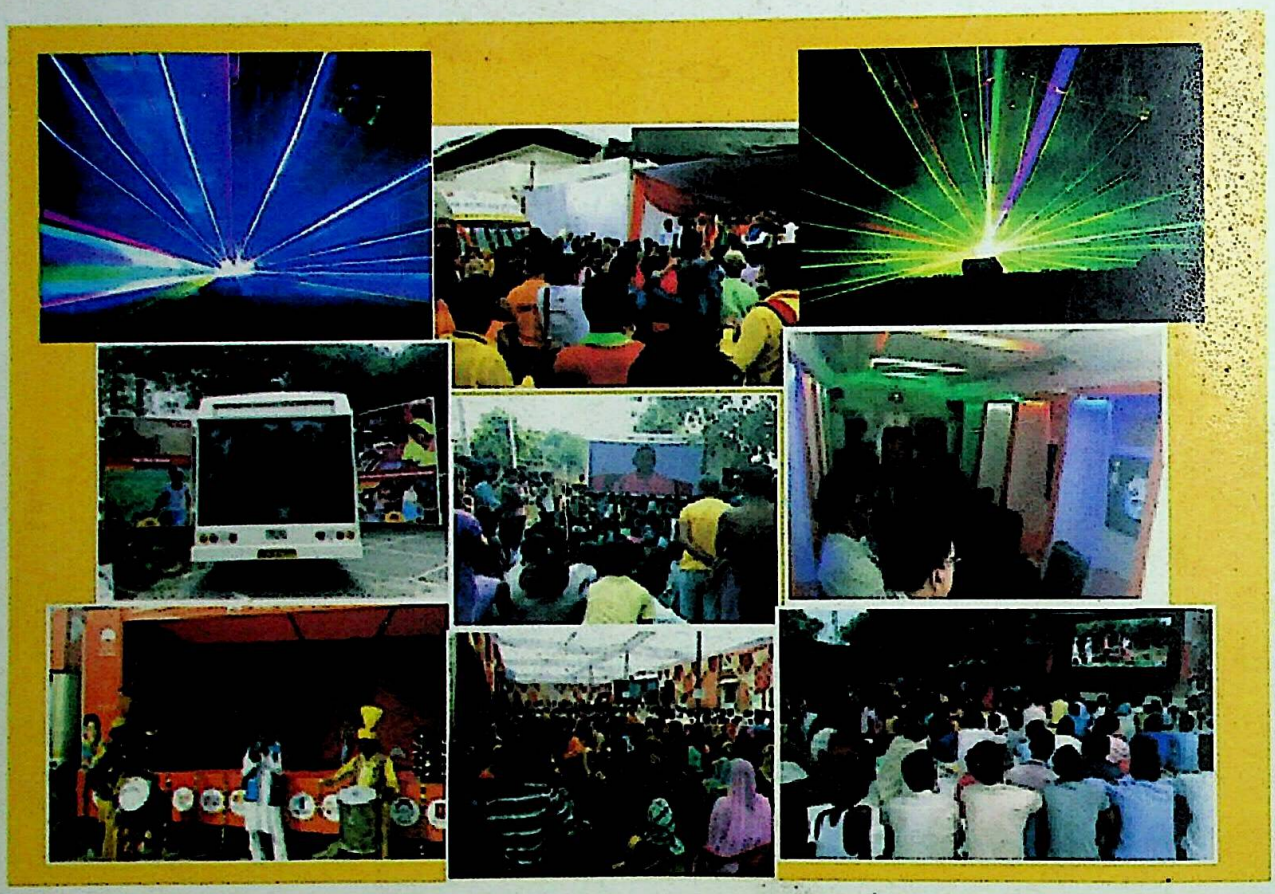

Lucknow Office Adress: G.F.29&30,Tej Kumar Plaza,Hajratgunj,Lucknow.

Head Office: B-14,F-2,P.S.Nagar,Vijayanagar colony,Hyderabad-500057

Branches: Andhra Pradesh,Karnataka,Maharashtra,Rajasthan.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi